क्रमाङ्क	विषय				पृष्ठ

औज़ारों का एक बक्स खुला हुआ रक्खा था। कामता-प्रसाद उसमें की एक-एक वस्तु उठा-उठा कर बड़े ध्यान-पूर्वक देख रहे थे। इसी समय उनके मित्र रेवतीशङ्कर आ गए। रेवतीशङ्कर ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा—क्या हो रहा है?

कामताप्रसाद मुस्करा कर बोले—कुछ नहीं, कुछ सर्जरी का सामान मँगाया था। वह आज आया है, वही देख रहा था।

रेवतीशङ्कर भी उन वस्तुओं को देखने लगे। तीन-चार बड़े-बड़े चाकुओं को देख कर रेवतीशङ्कर बोले, यह चाक़ू तो यार बड़े सुन्दर हैं। जी चाहता है, इनमें से एक मैं ले लूँ।

कामताप्रसाद हँस कर बोले—तुम क्या करोगे?

"करूँगा क्या, रक्खे रहूँगा।"

"यह तो चीर-फाड़ के काम के हैं।"

"हाँ-हाँ, और नहीं क्या, इनसे साग-भाजी थोड़े ही कतरी जायगी।"

"मैंने सोचा कदाचित् तुम इसीलिए चाहते हो।"—कामताप्रसाद ने हँस कर कहा।

"अरे नहीं, ऐसा बेवक़ूफ़ मत समझो। मुझे अच्छे मालूम हो रहे हैं, इससे जी ललचा रहा है।"

"तो एक ले लो।"

"तुम्हारा सेट तो ख़राब न होगा?"

"नहीं, सेट ख़राब न होगा। मैंने एक चाक़ू अधिक मँगा लिया था।"

"तब ठीक है!"—कह कर रेवतीशङ्कर ने एक चाक़ू ले लिया।

"बड़े तेज़ चाक़ू हैं!"—रेवतीशङ्कर ने उक्त चाक़ू की धार पर उँगली फेर कर कहा।

"सर्जरी में तेज़ ही की आवश्यकता होती है। जितना ही तेज़ औज़ार होगा, ऑपरेशन उतना ही शीघ्र तथा अच्छा होगा।"

रेवतीशङ्कर चाक़ू को एक कागज़ में लपेट कर जेब में रखते हुए बोले—यदि मुड़ने वाला होता तो बड़ा ही सुन्दर होता।

"सर्जरी के चाक़ू मुड़ने वाले बहुत कम होते हैं, इतना बड़ा चाक़ू तो कभी भी मुड़ने वाला नहीं होता।"

"ख़ैर! कुछ रोगी-ओगी आने लगे या नहीं?"

"अभी बैठते हुए दिन ही कितने हुए?"

"एक महीने से अधिक तो हो गया होगा।"

"तो फिर? क्या बहुत दिन हो गए?"

"साल-छः महीने में कुछ प्रेक्टिस चमकेगी, अभी तो केवल हाज़िरी है।"

"कुछ हर्ज न हो तो आओ चलें घूम आवें!"

"मुझे काम ही कौन है, चलो चलें। किधर चलोगे?"

"चलो इधर बाज़ार की ओर चलें।"

"बाज़ार की तरफ़ चल के क्या लोगे? चलना है तो इधर बाहर की ओर चलो। सन्ध्या का समय है, खुली वायु का आनन्द लें।"

"बस, तुम तो वही डॉक्टरी की बातें करने लगे। कौन हम रोगी या दुर्बल हैं। यह शिक्षा आप रोगियों के लिए ही सुरक्षित रखिए।"

"खुली वायु तो सबके लिए लाभदायक है, इसमें रोगी-निरोगी की कौन सी बात है?"

"ख़ैर, इस समय तो बाज़ार की ओर चलो, फ़िर देखा जायगा।"

"अच्छी बात है, जैसी तुम्हारी इच्छा।"

कामताप्रसाद ने औज़ारों को बक्स में बन्द करके अलमारी में रख दिया और नौकर से बोले—"रामधन, हम घूमने जाते हैं। तुम साढ़े सात बजे बन्द करके चाबी घर पहुँचा देना।"—यह कह कर कामताप्रसाद ने अपनी टोपी उठाई और रेवतीशङ्कर से बोले—चलो!

दोनों व्यक्ति चले और घूमते-फिरते चौक पहुँचे। चौक में प्रविष्ट होते ही रेवतीशङ्कर ने कहा—देखिए कितनी रौनक़ है। जङ्गल में यह आनन्द कहाँ?

कामताप्रसाद मुस्करा कर बोले—निस्सन्देह, जङ्गल में तो यह भीड़-भाड़ नहीं मिलेगी।

"आदमियों ही की तो रौनक़ होती है; जहाँ आदमी नहीं, वहाँ क्या रौनक़ हो सकती है।"

"अपनी-अपनी रुचि की बात है। किसी को यह पसन्द है, किसी को वह।"

इसी प्रकार की बातें करते हुए ये दोनों व्यक्ति मन्द गति से जा रहे थे। हठात् रेवतीशङ्कर ने कामताप्रसाद का हाथ दबा कर कहा—ज़रा ऊपर तो देखो!

कामताप्रसाद ने ऊपर दृष्टि उठाई। एक छज्जे पर एक वेश्या बैठी हुई थी। वेश्या युवती तथा अत्यन्त सुन्दर थी।

कामताप्रसाद बोले—यह कौन है? पहले तो इसे कभी नहीं देखा।

"जान पड़ता है कहीं बाहर से आई है।"

"अच्छा सौन्दर्य है।"

"क्या बात है! हज़ारों में एक है!"

"परन्तु किस काम का?"

"क्यों?"

"वेश्या का सौन्दर्य तो उस पुष्प के समान है, जो देखने में तो बड़ा सुन्दर है, परन्तु नीरस तथा निर्गन्ध है।"

"अब लगे फ़िलॉसफ़ी बघारने, इन्हीं बातों से मुझे नफ़रत है।"

"झूठ थोड़े ही कहता हूँ।"

"रहने दीजिए, बड़े तत्ववक्ता की दुम बने हैं।"

"अच्छा न सही।"

"बोलो, चलते हो! पाँच मिनट बैठ कर चले आवेंगे, परिचय हो जायगा।"

"अजी बस रहने भी दो।"

"तुम्हें हमारी क़सम, केवल पाँच मिनट के लिए।"

"इस समय जाने दो, फिर किसी दिन सही।"

रेवतीशङ्कर समझ गए कि कामताप्रसाद की इच्छा तो है, पर ऊपर से साधुता दिखाने के लिए अस्वीकार कर रहे हैं। अतएव उन्होंने कहा—फिर-फिर का झगड़ा मैं नहीं पालता। तुम जानते हो, मेरे जी में जो आता है वह मैं तत्काल करता हूँ।

कामताप्रसाद ने कहा—तो यह कौन अच्छी बात है?

"न सही, पर स्वभाव तो है।"

"कहा मानो, इस समय टाल जाओ।"

"टालने वाले पर लानत है!"

"ओफ़ ओह! इतने मुग्ध हो गए। अच्छा लौटते हुए सही, तब तक ज़रा और अँधेरा हो जायगा।"

"हाँ, यह मानी।"

दोनों व्यक्ति आगे बढ़ गए और आध घण्टे तक इधर-उधर फिरने के पश्चात् लौटे। इस समय सात बज

चुके थे और यथेष्ट अँधेरा हो चुका था। जब ये दोनों उक्त मकान के नीचे आए तो ठिठक गए। रेवतीशङ्कर ने एक बार इधर-उधर देखा और खट से ज़ीने पर चढ़ गए। कामताप्रसाद ने भी उनका अनुकरण किया!

२

उपरोक्त घटना के पश्चात् एक मास व्यतीत हो गया। रेवतीशङ्कर उक्त वेश्या के यहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक आने-जाने लगे। उनके साथ कामताप्रसाद भी कभी-कभी चले जाते थे।

एक दिन सन्ध्या-समय रेवतीशङ्कर वेश्या के यहाँ पहुँचे। वेश्या ने, जिसका नाम सुन्दरबाई था, रेवतीशङ्कर से पूछा—डॉक्टर साहब नहीं आए?

"हाँ, नहीं आए।"

"वह बहुत कम आते हैं, इसका क्या कारण है?"

"वह मेरे साथ के कारण चले आते हैं। वैसे वह वेश्याओं के यहाँ बहुत कम आते-जाते हैं।"

सुन्दरबाई म्लान मुख होकर मौन हो गई। रेवतीशङ्कर ने पूछा—क्यों, डॉक्टर साहब की याद क्यों आई?

"डॉक्टर साहब बड़े भले आदमी हैं, मुझे वह बड़े अच्छे लगते हैं।"

रेवतीशङ्कर के हृदय में ईर्ष्या का एक बवण्डर उठा।

उन्होंने पूछा—क्या उनके आने से तुम्हें कुछ प्रसन्नता होती है?

"हाँ, अवश्य होती है।"

"और मेरे आने से?"

"आपके आने से भी होती है।"

रेवतीशङ्कर ने सुन्दरबाई के मुख का भाव देख कर समझ लिया कि वह मिथ्या बोल रही है। उन्होंने कहा—नहीं, मेरे आने से नहीं होती।

"क्यों, आप मेरा कुछ छीन लेते हैं क्या?"—सुन्दरबाई ने किञ्चित् मुस्करा कर कहा।

रेवतीशङ्कर सुन्दरबाई से एक प्रेमपूर्ण उत्तर सुनना चाहते थे, परन्तु जब उसने केवल उपरोक्त बात कहकर मौन धारण कर लिया तो उन्हें बड़ी निराशा हुई। उनके मन में यह शङ्का उत्पन्न हुई कि कदाचित् सुन्दरबाई डॉक्टर साहब से प्रेम करती है। इस शङ्का के उत्पन्न होते ही कामताप्रसाद के प्रति उनके हृदय में द्वेष उत्पन्न हुआ। रेवतीशङ्कर ने उसी समय निश्चय किया कि इस बात की जाँच करनी चाहिए।

उस दिन वह थोड़ी ही देर बैठ कर चले आए। दूसरे दिन वह कामताप्रसाद के पास पहुँचे। उनसे उन्होंने कहा—कल सुन्दरबाई तुम्हें याद कर रही थी।

कामताप्रसाद नेत्र विस्फारित करके मुस्कराते हुए बोले—मुझे याद कर रही थी ?

"जी हाँ।"

"भला मुझे वह क्यों याद करने लगी ? तुम्हारे होते हुए उसका मुझे याद करना आश्चर्य की बात है।"

रेवतीशङ्कर शुष्क हँसी के साथ बोले—क्यों ? मुझमें कौन लाल टँके हैं ?

"लाल क्यों नहीं टँके हैं ? तुमसे उसे चार पैसे की आमदनी है, मेरे पास क्या धरा है ? तुमने अभी तक उसे सौ दो सौ दे ही दिए होंगे, मैंने क्या दिया ?"

"फिर भी वह तुम्हें याद करती थी।"

"इसीलिए याद करती होगी कि उनसे कुछ नहीं मिला, कुछ वसूल करना चाहिए। सो यहाँ वह गुड़ ही नहीं जिसे चींटियाँ खायँ।"

"ख़ैर, जो कुछ हो, आज तुम मेरे साथ चलो।"

"क्षमा करो।"

"नहीं, आज तो चलना पड़ेगा।"

"भाई साहब, मेरी इतनी हैसियत नहीं जो वेश्याओं के यहाँ जाऊँ, मैं ग़रीब आदमी हूँ। यह काम तो आप-जैसे धनी लोगों का है।"

"तो वह कौन तुमसे रोकड़ माँगती है।"

"माँगे कैसे, जब कुछ गुञ्जायश पावे तब तो माँगे।

आपकी तरह मैं भी रोज़ आने-जाने लगूँ तो मुझसे भी सवाल करे।"

"अजी नहीं, यह बात नहीं। अच्छा ख़ैर, आज तो चले चलो।"

"माफ़ करो।"

"अरे तो कुछ आज के जाने से वह तुम्हारी कुर्की न करा लेगी।"

"नहीं, यह बात नहीं।"

"तो फिर ?"

"वैसे ही, जहाँ तक बचूँ, अच्छा ही है।"

"आज तो चलना ही पड़ेगा।"

"ख़ैर, तुम ज़िद करते हो तो चला चलूँगा।"

दोनों सुन्दरबाई के मकान पर पहुँचे। डॉक्टर साहब को देखते ही सुन्दरबाई का मुख खिल उठा। उसने बड़े प्रेमपूर्वक उनका स्वागत किया। रेवतीशङ्कर सुन्दरबाई के व्यवहार को बड़े ध्यानपूर्वक देख रहे थे।

सुन्दरबाई ने पूछा—डॉक्टर साहब, आप हमसे कुछ नाराज़ हैं क्या ?

डॉक्टर साहब ने मुस्करा कर कहा—नहीं, नाराज़ होने की कौन सी बात है ?

"तो फिर आते क्यों नहीं ?"

"एक तो फ़ुरसत नहीं मिलती, दूसरे हम ग़रीबों की पूछ आपके यहाँ कहाँ ?"

सुन्दरबाई कुछ लज्जित होकर बोली—नहीं, आपका यह भ्रम है। हम भी आदमी पहचानते हैं। हर एक आदमी से रण्डीपन का व्यवहार काम नहीं देता।

"आप में यह विशेषता हो तो मैं कह नहीं सकता, अन्यथा साधारणतया वेश्याओं की यही दशा है कि उनके यहाँ धनी आदमी ही पूछे जाते हैं!"

"नहीं, मेरे सम्बन्ध में आप ऐसी बात कभी न सोचिएगा।"

"ख़ैर, मुझे यह सुन कर प्रसन्नता हुई कि आप में यह दोष नहीं है।"

जब तक कामताप्रसाद बैठे रहे, तब तक सुन्दरबाई उन्हीं से बातचीत करती रही। रेवतीशङ्कर को उसका यह व्यवहार बहुत ही बुरा लगा। एक घण्टे पश्चात् कामताप्रसाद बोले—अब मुझे आज्ञा दीजिए।

सुन्दरबाई ने कहा—आया कीजिए।

"हाँ, आया करूँगा।"—यह कह कर रेवतीशङ्कर से बोले—चलते हो?

"तुम जाओ, मैं तो ज़रा देर बैठूँगा।"

"अच्छी बात है।" कह कर कामताप्रसाद चल दिए।

1952

उनके जाने के पश्चात् सुन्दरबाई रेवतीशङ्कर से बोली—बड़े शरीफ़ आदमी हैं।

रेवतीशङ्कर रुखाई से बोले—हाँ, क्यों नहीं?

इसके पश्चात् दोनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे। तदुपरान्त रेवतीशङ्कर सुन्दरबाई के कुछ निकट खिसक कर बोले—सुन्दरबाई, मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ, यह शायद अभी तुम्हें मालूम नहीं हुआ।

सुन्दरबाई ने कहा—यह आपकी कृपा है।

रेवतीशङ्कर ने मुँह बनाकर कहा—केवल इसके कहने से मुझे सन्तोष नहीं हो सकता; प्रेम सदैव प्रेम का प्रतिदान चाहता है।

"चाहता होगा, मुझे तो अभी तक इसका अनुभव नहीं हुआ।"

"अब होना चाहिए।"

"अपने बस की बात थोड़े ही है।"

"मैं तुम्हारी प्रत्येक अभिलाषा, प्रत्येक इच्छा पूरी करने को तत्पर रहता हूँ, फिर भी तुम्हें मेरे प्रेम पर सन्देह है?"

"न मुझे सन्देह है और न विश्वास है। आप मेरी ख़ातिर करते हैं तो मैं भी आपकी ख़ातिर करती हूँ।"

"केवल ख़ातिर से मुझे सन्तोष नहीं हो सकता। मैं

चाहता हूँ कि जैसे मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, वैसे ही तुम भी मुझसे प्रेम करो ।"

"यह तो मेरे बस की बात नहीं है ।"

"होना चाहिए !"

"चाहिए तो सब कुछ, पर जब हो तब न ! वैसे यदि हमारे पेशे की बात पूछिए तो हम हर एक आदमी से यही कहती हैं कि हम जितना तुमसे प्रेम करती हैं उतना किसी से भी नहीं ; परन्तु मेरा यह दस्तूर नहीं है—मैं तो साफ़ बात कहती हूँ । आप हमारे ऊपर रुपए ख़र्च करते हैं, हम उसका बदला दूसरे रूप में चुका देती हैं । झगड़ा तय है । रही प्रेम और मुहब्बत की बात, सो यह बात हृदय से सम्बन्ध रखती है । आपका ज़ोर हमारे शरीर पर है, हृदय पर नहीं ।"

रेवतीशङ्कर चुप हो गए । उन्होंने मन में सोचा—यह निश्चय कामताप्रसाद से प्रेम करती है तभी ऐसी स्पष्ट बातें करती है । यह विचार आते ही उनके हृदय में कामताप्रसाद के प्रति हिंसा का भाव उत्पन्न हुआ । उन्होंने कुछ देर पश्चात् कहा—शायद तुम्हें आज तक किसी से प्रेम नहीं हुआ ।

सुन्दर हँस कर बोली—यदि प्रेम हुआ होता तो हम इस तरह बाज़ार में बैठी होतीं ? आप बच्चों की सी बातें करते हैं । हमारे पेशे से और प्रेम से बैर है । जो जिससे प्रेम करता है, वह उसी का होकर रहता है ।

रेवतीशङ्कर को सुन्दरबाई के इस उत्तर पर यद्यपि विश्वास नहीं हुआ, परन्तु कुछ सान्त्वना अवश्य मिली। उन्होंने कहा—ख़ैर, मुझसे तो तुम्हें प्रेम करना ही पड़ेगा। सुन्दरबाई ने मुस्करा कर कहा—यदि करना पड़ेगा तो करूँगी; पर जब करूँगी तब हृदय की प्रेरणा से—ज़बरदस्ती कोई किसी से प्रेम नहीं करा सकता।

३

एक दिन सुन्दरबाई की माता को हैज़ा हो गया। सुन्दरबाई ने कामताप्रसाद को बुलवाया। कामताप्रसाद ने बड़े परिश्रम से उसे अच्छा किया। चलते समय सुन्दरबाई ने उन्हें फ़ीस देनी चाही। कामताप्रसाद ने फ़ीस लेना अस्वीकार करते हुए कहा—मैं इतनी बार तुम्हारे यहाँ आया, पान-इलायची खाता रहा, गाना सुनता रहा; मैंने तुम्हें क्या दिया? इसलिए मैं तुमसे फ़ीस नहीं ले सकता।

उस दिन से कामताप्रसाद का आदर और भी अधिक होने लगा। इधर ज्यों-ज्यों कामताप्रसाद का आदर-सम्मान बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों रेवतीशङ्कर जल-भुन कर राख होते जा रहे थे। वह सोचते थे, मैं इतना रुपया-पैसा ख़र्च करता हूँ, पर मेरा इतना आदर नहीं होता, जितना कामताप्रसाद का होता है। कामताप्रसाद को देख कर

सुन्दरबाई प्रसन्न हो जाती है। मेरे जाने पर भी यद्यपि वह मुस्करा कर मेरा स्वागत करती है, पर वह बात नहीं रहती। मुझसे वह कुछ खिंची-सी रहती है।

यह बात वास्तव में सत्य थी। सुन्दरबाई रेवतीशङ्कर से खिंची रहती थी। इसके दो कारण थे—एक तो रेवतीशङ्कर उसे पसन्द नहीं था, इस कारण स्वाभाविक खिंचाव था; दूसरे व्यवसाय-नीति के कारण भी कुछ खिंचाव था। सुन्दरबाई को अपने रूप-यौवन पर इतना गर्व तथा विश्वास था कि वह उन लोगों से, जो उस पर मुग्ध होते थे, कुछ खिंचे रहने में ही अधिक लाभ समझती थी। रेवतीशङ्कर के सम्बन्ध में उसकी यह नीति सर्वथा लाभप्रद निकली। रेवतीशङ्कर उसे प्रसन्न करने तथा उसको अपने ऊपर कृपालु बनाने के लिए—केवल कृपालु बनाने के लिए ही नहीं, वरन् अपने प्रति उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न करने के लिए, उसकी प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य करने के लिए प्रस्तुत रहते थे। इसके परिणाम-स्वरूप सुन्दरबाई को उनसे यथेष्ट आय थी।

कामताप्रसाद के प्रति सुन्दरबाई का व्यवहार इसके सर्वथा प्रतिकूल था। सुन्दरबाई तो पहले ही से कामताप्रसाद के सरल स्वभाव, मजमनसाहत, व्यवहार-कुशलता, स्पष्टवादिता आदि गुणों पर मुग्ध थी। कामताप्रसाद सुन्दर भी यथेष्ट थे, उनका पुरुष-सौन्दर्य रेवतीशङ्कर से

सैकड़ों गुना अच्छा था। परन्तु सबसे अधिक जिस बात ने सुन्दरबाई पर प्रभाव डाला, वह उसके रूप-यौवन के प्रति कामताप्रसाद की निस्पृहता थी। कामताप्रसाद के किसी हाव-भाव से यह कभी प्रकट न हुआ कि वह सुन्दर-बाई पर मुग्ध हैं। सुन्दरबाई के लिए यह एक नवीन और अद्भुत बात थी। आज तक जितने पुरुष उसके पास आए, वे सब उसकी रूप-ज्योति पर पतङ्ग की भाँति गिरे; परन्तु कामताप्रसाद पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्य पुरुषों के समक्ष वह अपनी श्रेष्ठता अनुभव करती थी, परन्तु कामताप्रसाद के समक्ष उसे अपनी श्रेष्ठता का अनुभव न होकर, उन्हीं की श्रेष्ठता का अनुभव होता था। श्रेष्ठता सदैव प्रशंसा तथा आदर प्राप्त करती है। यही कारण था कि सुन्दरबाई का व्यवहार कामताप्रसाद के साथ निष्कपट तथा स्नेहपूर्ण था।

इधर रेवतीशङ्कर सुन्दरबाई के प्रेम में प्रेमोन्मत्त-से हो रहे थे। वह यह चाहते थे कि उनके होते हुए सुन्दरबाई किसी भी पुरुष की ओर न देखे। इधर सुन्दरबाई की यह दशा थी कि जब कभी कामताप्रसाद कई दिनों तक उसके यहाँ न पहुँचते, तो वह अस्वस्थ होने का बहाना करके उन्हें बुलवाती थी। उस समय कामताप्रसाद को केवल अपने व्यवसाय की दृष्टि से उसके यहाँ जाना ही पड़ता था।

एक दिन रेवतीशङ्कर सन्ध्या के पश्चात् जब सुन्दरबाई के यहाँ पहुँचे तो उन्होंने देखा कि सुन्दरबाई कामताप्रसाद के घुटने पर सिर रक्खे लेटी है और कामताप्रसाद उसके सिर पर हाथ फेर रहे हैं। यह देखते ही कुछ क्षणों के लिए रेवतीशङ्कर की आँखों के नीचे अँधेरा छा गया।

इधर उन्हें देखते ही कामताप्रसाद ने शीघ्रतापूर्वक उसका सिर अपने घुटने पर से हटा दिया और रेवती-शङ्कर की ओर देखकर कुछ झेंपते हुए से बोले—इनके सिर में बड़े ज़ोर का दर्द था, अतएव इन्होंने मुझे बुलवाया। मैंने दवा लगाई है, अब कुछ कम है।

रेवतीशङ्कर कामताप्रसाद को सिटपिटाते देख ही चुके थे, अतएव उन्होंने समझा कि कामताप्रसाद केवल बात बना रहे हैं। उन्होंने एक शुष्क मुस्कान के साथ कहा—आपके हाथ लगे और दर्द कम न हो—यह तो एक अन-होनी बात है।

यह कह कर रेवतीशङ्कर ने सुन्दरबाई पर एक तीव्र दृष्टि डाली। सुन्दरबाई उस दृष्टि को सहन न कर सकी, उसने अपनी आँखें नीची कर लीं।

कामताप्रसाद खड़े होकर सुन्दरबाई से बोले—तो अब मैं जाता हूँ, तुम थोड़ी देर बाद दवा एक बार और लगा लेना।

"बैठिए-बैठिए, आपकी उपस्थिति दर्द को दूर करने

में बहुत बड़ी सहायता देगी।"—रेवतीशङ्कर ने स्पष्ट-व्यङ्ग के साथ यह बात कही।

कामताप्रसाद रेवतीशङ्कर के इस व्यङ्ग से कुछ व्यथित होकर बोले—निस्सन्देह! डॉक्टर से लोग ऐसी ही आशा रखते हैं, यह कोई नई बात नहीं है। इतना कह कर कामता-प्रसाद चल दिए।

उनके चले जाने के पश्चात् रेवतीशङ्कर ने सुन्दरबाई से कहा—अब तो साधारण सी बातों में भी डॉक्टर बुलाए जाने लगे।

सुन्दरबाई ने कहा—तो फिर! क्या आप यह चाहते हैं कि जब कोई मृत्यु-शय्या पर पड़ा हो तभी डॉक्टर बुलाया जाय?

"नहीं-नहीं, आप जब चाहिए बुलाइए। मना कौन करता है?"

"मना कर ही कौन सकता है? मेरा जो जा चाहेगा, करूँगी। मैं किसी की लौंडी-बाँदी तो हूँ नहीं।"

रेवतीशङ्कर ओंठ चबाते हुए बोले—ठीक है, कौन मना कर सकता है।

इस वाक्य को रेवतीशङ्कर ने दो-तीन बार कहा।

सहसा रेवतीशङ्कर का मुख रक्तवर्ण हो गया, आँखें उबल आईं। उन्होंने हाथ बढ़ाकर सुन्दरबाई की कलाई पकड़ ली और दाँत पीसते हुए बोले—कौन मना कर

सकता है ? मैं मना कर सकता हूँ, जिसने अपना तन, मन, धन तुम्हारे चरणों पर डाल दिया है।

सुन्दरबाई अपनी कलाई छुड़ाने की चेष्टा करते हुए बोली—अजी बस जाइए, ऐसे यहाँ दिन भर में न जाने कितने आते हैं।

"आते होंगे, परन्तु मैं तुम्हें बता दूँगा कि मैं उन लोगों में नहीं हूँ।"

सुन्दरबाई ने एक झटका देकर अपनी कलाई छुड़ा ली और कर्कश स्वर में बोली—तुम बेचारे क्या दिखा दोगे। ऐसी धमकी में मैं नहीं आ सकती। चले वहाँ से बड़े वारिस ख़ाँ बनकर। तुम होते कौन हो ? वही कहावत है—'मुँह लगाई डोमनी गावे ताल-बेताल।'

रेवतीशङ्कर ने कुछ नम्र होकर कहा—देखो सुन्दरबाई, यह बातें छोड़ दो, इसका परिणाम बुरा होगा।

"क्या बुरा होगा ? तुम कर क्या लोगे ? ख़ैरियत इसी में है कि चुपचाप यहाँ से चले जाइए, और आज से यहाँ पैर न धरिएगा, नहीं तो पछताइएगा।"

रेवतीशङ्कर अप्रतिभ होकर बोले—अच्छा ! यह बात है !

"जी हाँ, यही बात है। मैं आपकी विवाहिता नहीं हूँ। ये बातें वही सहेगी, मैं नहीं सह सकती। हुँह ! अच्छे आए ! हम लोग ऐसे एक की होकर रहें तो बस हो चुका।"

रेवतीशङ्कर कुछ क्षणों तक चुपचाप बैठे ओठ चबाते रहे, तत्पश्चात् एक दम से उठ कर खड़े हो गए और बोले—अच्छी बात है, देखा जायगा !

इतना कह कर रेवतीशङ्कर चल दिए !

४

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात् एक दिन प्रातः-काल शौचादि से निवृत्त होकर कामताप्रसाद चाय पी रहे थे, उसी समय सहसा पुलिस ने उनका घर घेर लिया। एक सब-इन्सपेक्टर उनके कमरे में घुस आया। उसने आते ही कामताप्रसाद से पूछा—डॉक्टर कामताप्रसाद आप ही हैं ?

कामताप्रसाद ने विस्मित होकर कहा—हाँ, मैं ही हूँ, कहिए ?

सब-इन्सपेक्टर ने कहा—मैं आपको सुन्दरबाई का ख़ून करने के जुर्म में गिरफ़्तार करता हूँ।

कामताप्रसाद हतबुद्धि होकर बोले—सुन्दरबाई का ख़ून !

कामताप्रसाद केवल इतना ही कह पाए, आगे उनके मुँह से एक शब्द भी न निकला।

सब-इन्सपेक्टर ने एक कॉन्सटेबिल से कहा—लगाओ हथकड़ी !

इसके पश्चात् इन्सपेक्टर ने उस कमरे की तलाशी ली और एक कोट तथा क़मीज़ बरामद की। क़मीज़ के दाहिने कफ़ में ख़ून का दाग़ लगा हुआ था। इन्सपेक्टर ने उसे देख कर सिर हिलाया। इसके पश्चात् उसने कोट को देखा। कोट के दो बटन ग़ायब थे। इन्सपेक्टर ने अपनी जेब से एक डिबिया निकाली। डिबिया खोल कर दो बटन निकाले उन बटनों को कोट के अन्य बटनों से मिला कर देखा, दोनों बटन अन्य बटनों से आकार-प्रकार में पूर्णतया मिल गए। इन्सपेक्टर ने कहा, ठीक है!

उसने क़मीज़ तथा कोट अपने अधिकार में किया। इसी समय कामताप्रसाद के पिता भी आ गए। उन्होंने जो पुत्र के हाथों में हथकड़ी लगी देखी तो घबरा कर पूछा—क्यों-क्यों, क्या बात है?

इन्सपेक्टर ने कहा—कल रात में सुन्दरबाई नाम्नी तवायफ़ का क़त्ल हो गया है। वहाँ कुछ ऐसी चीज़ें पाई गई हैं, जिनसे यह साबित होता है कि सुन्दरबाई का ख़ून कामताप्रसाद ने किया है। इसलिए इनकी गिरफ़्तारी की गई है।

कामताप्रसाद के पिता कम्पित स्वर से बोले—नहीं-नहीं, यह असम्भव है। ऐसा कभी नहीं हो सकता। आप ग़लती कर रहे हैं।

सब-इन्सपेक्टर—हमारी ग़लती साबित करने के लिए आपको काफ़ी मौक़ा मिलेगा, घबराइए नहीं!

कामताप्रसाद बोले—निस्सन्देह पिता जी ! आप घबराइए नहीं, इसमें कोई विकट रहस्य है। हमें अदालत के सामने काफ़ी मौक़ा मिलेगा।

सब-इन्सपेक्टर ने अधिक बात करने का अवसर न दिया। कामताप्रसाद को साथ लेकर सीधा उनके दवाख़ाने पहुँचा।

कामताप्रसाद ने देखा कि उनके दवाख़ाने पर भी पुलिस का पहरा है।

दवाख़ाने की चाबी सब-इन्सपेक्टर कामताप्रसाद के घर से ले आया था। अतएव दवाख़ाना खोला गया। उसकी तलाशी लेकर वह बक्स निकाला गया, जिसमें सर्जरी के औज़ार थे। वह बक्स भी इन्सपेक्टर ने अपने अधिकार में कर लिया।

*

नियत समय पर कामताप्रसाद का मुक़दमा आरम्भ हुआ। पुलिस की ओर से चार वस्तुएँ पेश की गईं। एक तो वह चाक़ू जिससे ख़ून किया गया था; कामताप्रसाद का कोट, क़मीज़ तथा एक रूमाल जिसके कोने पर उनका नाम कढ़ा हुआ था। यह रूमाल, ख़ून से रँगा हुआ था। सरकारी वकील ने अदालत को वे दोनों बटन दिखाए। ये बटन जिस कमरे में ख़ून हुआ था उसमें पाए गए थे और दोनों कामताप्रसाद के कोट के बटनों से

पूर्णतया मिलते-जुलते थे। रूमाल पर उनका नाम ही कढ़ा हुआ था। क़मीज़ के कफ़ पर ख़ून का दाग़ था। वह चाक़ू, जिससे हत्या की गई थी, कामताप्रसाद के सर्जरी के औज़ारों में के अन्य दो चाक़ुओं से पूर्णतया मेल खाता था।

इसके अतिरिक्त पुलिस की ओर से चार गवाह पेश हुए थे, दो मुसलमान दूकानदार, जिनकी दूकानें सुन्दर-बाई के मकान के नीचे ही थीं, सुन्दरबाई की माता, उनकी एक दासी!

नौकरानी ने बयान दिया—जिस दिन यह वारदात हुई, उस दिन शाम को साढ़े छै बजे के लगभग सुन्दरबाई की माँ नौकर के साथ कहीं गई हुई थीं। मकान पर केवल सुन्दरबाई और मैं रह गई थीं। साढ़े आठ बजे के लगभग डॉक्टर साहब आए। सुन्दरबाई और वह दोनों भीतरी कमरे में बैठे। मैं उस समय भोजन बना रही थी। आध घण्टे बाद मैंने ऐसा शब्द सुना जैसे दो आदमी आपस में लपटा-झपटी कर रहे हों। बीच में एकाध दफ़े मैंने डॉक्टर साहब की आवाज़ सुनी। ऐसा जान पड़ता था कि डॉक्टर साहब सुन्दरबाई को डाँट रहे हैं। इसके थोड़ी देर बाद डॉक्टर साहब बड़ी तेज़ी के साथ कमरे से निकले और ज़ीने से नीचे उतर कर चले गए। मैं खाना बनाती रही। इसके एक घण्टा बाद सुन्दरबाई की माता

लौटीं। वह पहले तो अन्दर आईं और मुझसे पूछा—"खाना तैयार है?" मेरे 'हाँ' कहने पर वह सुन्दरबाई के कमरे की ओर चली गईं। वहाँ जाते ही उन्होंने हल्ला मचाया, तब मैं दौड़ कर गई। नौकर भी दौड़ा। वहाँ जाकर देखा कि सुन्दरबाई का कोई ख़ून कर गया है। मैंने उसी समय सुन्दरबाई की माँ से वह सब कहा, जो मैंने देखा-सुना था।

कामताप्रसाद के वकील के जिरह करने पर उसने कहा—मैं जहाँ खाना बना रही थी वह जगह सुन्दरबाई के कमरे से थोड़ी ही दूर है। मैं जहाँ बैठी थी वहाँ से ज़ीने से कमरे में जाता हुआ आदमी दिखाई नहीं पड़ता था। मैंने केवल आवाज़ से समझा था कि अब डॉक्टर साहब जा रहे हैं। उनकी तेज़ी का अनुमान भी मैंने उनके पैरों के शब्द से तथा ज़ीने में उतरने के शब्द से किया था। जिस समय डॉक्टर साहब आए थे उस समय मैंने उन्हें देखा था। मैं उस समय उधर गई थी। सुन्दरबाई ने एक गिलास पानी माँगा था, वही देने गई थी। डॉक्टर साहब से झगड़ा होने का शब्द सुनकर मैं उधर नहीं गई। हम लोगों को बिना बुलाए जाने की इजाज़त नहीं है। डॉक्टर से लपटा-झपटी और झगड़ा होने का शब्द कोई ऐसी बात नहीं थी, जिससे मैं यह आवश्यक समझती कि मैं जाकर देखूँ कि क्या हो रहा है। वेश्याओं के यहाँ ऐसी

बातें बहुधा हुआ करती हैं, मेरे लिए वह एक साधारण बात थी। डॉक्टर साहब के जाने के पश्चात् सुन्दरबाई की माँ के आने के समय तक मैं खाना बनाने में इतनी मग्न रही कि मुझे और किसी बात का कोई ध्यान न रहा।

दोनों मुसलमान-दूकानदारों ने अपने बयान में कहा—हम लोग दूकान बन्द कर रहे थे। उसी वक़्त ज़ीने में ऐसी आवाज़ हुई जैसे कोई बड़ी तेज़ी से उतरता चला आता हो। इसके बाद हमने डॉक्टर को निकलते देखा। यह बड़ी तेज़ी से एक तरफ़ चले गए। इनके कपड़े भी तितर-बितर-से थे। इसके बाद हम लोग दूकान बन्द करके अपने-अपने घर चले गए।

जिरह में दोनों दूकानदारों ने कहा—हम डॉक्टर को अच्छी तरह पहचानते हैं। यह अक्सर सुन्दरबाई के यहाँ आया-जाया करते थे। बाज़ार की रोशनी इनके ऊपर काफ़ी पड़ रही थी। उसमें हमने इन्हें अच्छी तरह देखा था। इसमें किसी शक व शुबह की गुञ्जायश नहीं है।

सुन्दरबाई की माता ने अपने बयान में कहा—मैं जिस समय लौट कर आई उस समय दस बज चुके थे। मैं एक दूसरी वेश्या को, जिससे मेरी मित्रता है, देखने गई थी। वह कई दिन से बीमार थी। मैंने कमरे में जाकर देखा कि सुन्दर चित पड़ी है और उसकी छाती में चाकू

घुसा हुआ है। इतना ही देखकर मैं एकदम चिल्ला उठी। घर के नौकर तथा नौकरानी दौड़ पड़े। उन्होंने भी देख कर हल्ला मचाया। बाज़ार में सन्नाटा हो गया था। दो-चार दूकानें खुली थीं। वह भी उस समय बन्द हो रही थीं। हल्ला मचाने के आध घण्टा बाद एक कॉन्सटेबिल आया। वह सब देखकर चला गया। उसके एक घण्टा बाद कोई बारह बजे के लगभग दारोग़ा साहब आए थे।

जिरह में उसने कहा—डॉक्टर साहब पहले-पहल हमारे यहाँ अपने एक दोस्त के साथ आए थे। उनका नाम रेवतीशङ्कर है। वह बड़े आदमी हैं। वह बहुत दिनों हमारे यहाँ आते-जाते रहे। इसके बाद उन्होंने आना-जाना बन्द कर दिया। उन्होंने आना-जाना डॉक्टर के कारण बन्द किया था। हमारे यहाँ उनमें और डॉक्टर में कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ। सुन्दरबाई ने एक दिन गुस्से में उनसे कह दिया था कि हमारे यहाँ मत आया करो। इसका कारण यह था कि सुन्दरबाई डॉक्टर को कुछ चाहती थीं। मेरा विचार है कि डॉक्टर ने ही उससे कहा होगा कि रेवतीशङ्कर को मत आने दो। एक दफ़े डॉक्टर साहब ने मुझे हैज़े से बचाया था, तब से हम लोग उन्हीं को बुलाया करते थे। एक बार सुन्दरबाई ने मुझसे कहा था कि डॉक्टर साहब का हृदय बड़ा कठोर है—उनके जी में ज़रा भी रहम नहीं है। मैंने उससे पूछा

कि तुझे कैसे मालूम हुआ, तो इसका उत्तर उसने कुछ नहीं दिया था।

कामताप्रसाद ने अपने बयान में कहा—मैं बहुधा सुन्दरबाई के यहाँ जाया करता था। पहले मैं केवल मनो-रञ्जन के लिए जाता था, परन्तु बाद को सुन्दरबाई की माता को हैज़े से आराम करने पर मैं उनका फ़ैमिली डॉक्टर हो गया, तब से मैं बहुधा जाता था। कुछ दिनों के बाद मुझे सुन्दरबाई के व्यवहार से यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि वह मुझसे प्रेम करती है। तब मैंने आना-जाना कुछ कम कर दिया था। जब मैं उनका फ़ैमिली डॉक्टर हो गया तब मैं बहुधा बुलाया जाता था। उस दशा में मैं जाने के लिए विवश था। बहुधा सुन्दरबाई झूठमूठ अस्वस्थ बन जाती थी और मुझे बुला भेजती थी! इससे मेरा यह सन्देह पक्का हो गया कि सुन्दरबाई मुझसे प्रेम करती है।

जिस दिन की यह घटना है उस दिन मैं आठ बजे के बाद दवाख़ाना बन्द करके घर जाने लगा तो मेरी इच्छा हुई कि सुन्दरबाई के यहाँ होता चलूँ। मैं उसके यहाँ गया। हम दोनों भीतरी कमरे में बैठे। पहले तो थोड़ी देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। इसके पश्चात् सुन्दरबाई ने मुझसे प्रेम की बातें करनी आरम्भ कीं। मैंने उससे कहा, मुझसे ऐसी बातें मत करो, परन्तु वह न मानी। मैंने उसे फिर समझाया। मैंने उससे कहा—'मैं

अपनी पत्नी से प्रेम करता हूँ। उसके अतिरिक्त मैं किसी अन्य स्त्री से प्रेम नहीं कर सकता।' यह कहकर मैं उठकर चलने लगा। सुन्दरबाई मुझसे लिपट गई। मैंने उससे डाँटकर छोड़ देने के लिए कहा, पर वह न मानी। उसने उसी समय मेरी पत्नी के सम्बन्ध में कुछ अनुचित शब्द कहे। उन्हें सुन कर मुझे क्रोध आ गया। मैंने उसे अपने से अलग करके ज़ोर से ढकेल दिया। वह पलँग पर गिरी। उसका सिर पलँग के काठ के तकिए से टकरा गया, जिससे उसके सिर से ख़ून बहने लगा। यह देखकर मेरा डॉक्टरी स्वभाव जाग्रत हो उठा। मैंने झट जेब से रूमाल निकाल कर ख़ून पोंछा और घाव को देखा। देखने पर मालूम हुआ कि वह बहुत ही साधारण था, केवल चमड़ा फट गया था। जिस समय मैं घाव पोंछ रहा था, उसी समय सुन्दरबाई पुनः मुझसे लिपट गई। तब मैंने वहाँ ठहरना उचित न समझा और अपने को उससे छुड़ाकर मैं तेज़ी के साथ नीचे सड़क पर आ गया और अपने घर की ओर चला गया।

चाक़ू की बाबत प्रश्न किए जाने पर कामताप्रसाद ने कहा—चाक़ू मेरे चाकुओं जैसा अवश्य है, परन्तु वह मेरा नहीं है। मैं उसकी बाबत कुछ नहीं जानता। जितने चाक़ू मेरे बक्स में इस समय मौजूद हैं उतने ही मेरे पास थे, उससे एक भी अधिक नहीं था।

कामताप्रसाद के इतना कहने पर सरकारी वकील ने अदालत के सामने एक काग़ज़ पेश करते हुए कहा—यह उस कम्पनी का इनवायस (बीजक) है, जहाँ से अभियुक्त ने सर्जरी का बक्स मँगाया था। इनवायस में तीन चाकू लिखे हुए हैं। अभियुक्त केवल दो का होना स्वीकार करता है। यह तीसरा चाक़ू कहाँ गया ? बक्स में इस समय दो ही चाक़ू मौजूद हैं।

अदालत ने इनवायस, बक्स तथा जिस चाक़ू से हत्या की गई थी, उसे देखकर कामताप्रसाद से पूछा—इनवायस में लिखा हुआ तीसरा चाक़ू कहाँ है ?

कामताप्रसाद का मुँह बन्द हो गया। उन्हें स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं आया था कि पुलिस ने दूकान की तलाशी लेते समय इनवायस भी हथिया लिया होगा।

कामताप्रसाद के मुख से केवल इतना निकला—मैं निरपराध हूँ, मैंने हत्या नहीं की।

५

कामताप्रसाद सेशन सुपुर्द कर दिए गए। उनके पिता ने उन्हें छुड़ाने की बहुत-कुछ चेष्टा की। एकलौता बेटा फाँसी पर चढ़ा जाता है, यह विचार उन्हें अपना सर्वस्व तक दे देने के लिए बाध्य किए हुए था। अच्छे से अच्छे वकील जुटाए, परन्तु कोई फल न हुआ।

कामताप्रसाद के विरुद्ध ऐसे दृढ़ प्रमाण थे कि वकीलों की बहस और खींचातानी ने कोई लाभ नहीं पहुँचाया। सेशन से कामताप्रसाद को फाँसी का हुक्म हो गया।

हाईकोर्ट में अपील की गई; परन्तु वहाँ से भी फाँसी का हुक्म बहाल रहा। इस समय कामताप्रसाद के माता-पिता की दशा का क्या वर्णन किया जाय? जिसके ऊपर असंख्य आशाएँ निर्भर थीं, जो उनके बुढ़ापे का स्तम्भ था, वह आज उनसे छिना जा रहा है—और सदैव के लिए! उनका घर इस समय श्मशान-तुल्य हो रहा था। कामता-प्रसाद की युवती पत्नी, जिसने यौवन में पदार्पण ही किया था, रोते-रोते विक्षिप्त हो गई थी। और क्यों न होती? ऐसे योग्य, सुन्दर, कमाऊ और प्राणों से अधिक प्यारे पति को आँखों के सामने, असमय और ज़बरदस्ती मौत के मुख में ढकेला जाता हुआ देख कर कौन पत्नी अपने हृदय को वश में रख सकती है?

फाँसी होने के दो दिवस पहले कामताप्रसाद के माता-पिता तथा उनकी पत्नी उनसे मिलने गई थीं। उस समय का वर्णन करना असम्भव है। चारों में से प्रत्येक यह चाहता था कि एक-दूसरे की मूर्त्ति सदैव के लिए हृदय में धारण कर ले, परन्तु आँसुओं की झड़ी ने आँखों पर ऐसा निष्ठुर पर्दा डाल रक्खा था कि परस्पर एक दूसरे को भली-भाँति देख भी न सके। हृदय की प्यास

हृदय में हिम-शिला की भाँति जमकर रह गई। माता पुत्र को छाती से लगा कर इतना रोई कि बेहोश सी हो गई। उसके बैन सुनकर पाषाण की छाती भी फटती थी—"हाय मेरे लाल, मैंने कैसे-कैसे दुःख उठा कर तुझे पाला था! हाय, क्या इसी दिन के लिए पाला था? अरे चाहे मुझे फाँसी दे दो, पर मेरे लाल को छोड़ दो। हाय, मेरा एकलौता बच्चा है, यह मेरी आँखों का तारा, बुढ़ापे का सहारा है। क्या सरकार के घर में दया नहीं है, क्या लाट साहब के कोई बाल-बच्चा नहीं है? अरे कोई मुझे उनके सामने पहुँचा दो। मैं अपने आँसुओं से उनका कलेजा पसीज डालूँगी। अरे मेरा हाथी-सा बच्चा क़साई लिए जाते हैं। अरे कोई ईश्वर के लिए इसे छुड़ाओ। हाय, मेरा बच्चा जवानी का कोई सुख न देख पाया! हाय जैसा आया था वैसा ही जाता है। हाय, इस अभागी बच्ची (पुत्रवधू) की उमर कैसे तेर होगी? अरे राम! तुम इतने क्यों रूठ गए? मैंने पाप किए थे तो मुझे नरक में भेज देते, मेरा बच्चा क्यों छीने लेते हो? अरे कलेजे में आग लगी है, इसे कोई बुझाओ!"

कहाँ तक लिखा जाय, वह इसी प्रकार की बातों से सुनने वालों का हृदय विदीर्ण कर रही थी। जेलर भी रूमाल से आँखें पोंछ रहा था। पिता सिर झुकाए हुए चुपचाप खड़े थे, परन्तु जिस स्थान पर खड़े थे, वह

स्थान आँसुओं से तर हो गया था, और कामताप्रसाद की पत्नी? वह बेचारी लज्जा के मारे कुछ बोल नहीं सकती थी। उसके हृदय की आग ऊपर फूट निकलने का मार्ग न पाकर, भीतर ही भीतर कलेजे में फैलकर तन-मन भस्म किए डाल रही थी। अन्त में जब न रहा गया, जब भीतरी आग की गर्मी सहनशक्ति की सीमा उल्लङ्घन कर गई, तो लज्जा को तिलाञ्जलि देकर वह एकदम दौड़ पड़ी और पति की छाती से चिपक गई। "हाय मेरे प्राण, मुझे छोड़ कर कहाँ जाते हो?" केवल यह वाक्य उसके मुख से निकला, इसके पश्चात् वह बेहोश हो गई। उसी बेहोशी की दशा में उसे वहाँ से हटा दिया गया। कामताप्रसाद की आँखों से भी आँसुओं की धारा बह रही थी, परन्तु मुँह बन्द था। मुँह से कोई शब्द न निकले, इसके लिए उन्होंने अपने नीचे के ओंठ इतने ज़ोर से दाबे कि खून बहने लगा।

समय अधिक हो जाने के कारण जेलर ने भेंट की समाप्ति चाही, परन्तु कामताप्रसाद के पिता ने कहा—कृपा कर पाँच मिनट तो और दीजिए, अब तो सदैव के लिए अलग होते हैं।

जेलर ने कहा—मेरा वश चले तो मैं आप लोगों को कभी भी अलग न करूँ; पर क्या करूँ, नियम से विवश हूँ! ख़ैर, पाँच मिनट और सही।

कामताप्रसाद की माता और पत्नी दोनों बेहोश हो

जाने के कारण हटा दी गई थीं, केवल उनके पिता रह गए थे। कामताप्रसाद ने उनसे कहा—पिता जी, यह तो आपको विश्वास ही है कि मैं निर्दोष हूँ।

पिता ने कहा—क्या कहूँ बेटा, मेरे लिए तू सदैव निर्दोष था।

कामताप्रसाद—मैं केवल कुसङ्गत का शिकार हो गया। कुसङ्गत में पड़कर न मैं वेश्या के घर जाता, न यह नौबत पहुँचती। .खैर, भाग्य में यही बदा था। परन्तु इतना मुझे विश्वास हो गया कि समाज न्याय की ओट में अन्याय भी करता रहता है। न्याय के नियमों को इतना अधिक महत्व दिया जाता है कि वह अन्याय की सीमा तक पहुँच जाता है। उन नियमों के लिए एक मनुष्य की सज्जनता, सच्चरित्रता, उसकी नेकनीयती का कोई मूल्य नहीं। बड़े से बड़े आदमी, अच्छे से अच्छे मनुष्य के साथ वे उसकी क्षणिक कमज़ोरी के लिए भी वैसा ही व्यवहार करते हैं, जैसा कि एक अभ्यस्त अपराधी के साथ। यह न्याय है। यह वह न्याय है, जिसके आँखें और कान हैं, पर मस्तिष्क नहीं है। केवल दो-चार आदमियों के कह देने से और मेरी कुछ वस्तुओं को हत्या-स्थल पर देख कर ही न्याय के ठेकेदार मुझे फाँसी पर लटकाए दे रहे हैं। ईश्वर ऐसे न्याय से समाज की रक्षा करे। ख़ैर! अब एक प्रार्थना यह है कि ज़रा रेवतीशङ्कर को मेरे पास भेज देना, उससे

भी मिल लूँ। यदि उससे भेंट न होगी तो मेरी आत्मा को शान्ति न मिलेगी।

दूसरे दिन रेवतीशङ्कर भी पहुँचा। रेवतीशङ्कर से बात करते समय कामताप्रसाद ने सबको हटा दिया। जब एकान्त हुआ तो कामताप्रसाद ने रेवतीशङ्कर की आँखों से आँखें मिला कर कहा—रेवतीशङ्कर, जानते हो मैं किस लिए फाँसी पर चढ़ रहा हूँ?

इतना सुनते ही रेवतीशङ्कर का शरीर काँपने लगा, वह आँखें नीची करके बोला ही नहीं।

कामताप्रसाद ने उसका मुँह ऊपर करके कहा—मेरी ओर देखो, घबराओ नहीं। मैं केवल इसलिए फाँसी पर चढ़ रहा हूँ कि मैंने तुम्हें बचाने की चेष्टा की थी। मैंने अदालत में यह नहीं कहा कि वह तीसरा चाक़ू कहाँ गया। यद्यपि मुझे याद था कि वह चाक़ू तुम ले गए थे। मैंने यह भी नहीं कहा कि सुन्दरबाई से मेरे कारण तुम्हारा कई बार झगड़ा हुआ। तुमने उसे धमकी भी दी थी। रेवतीशङ्कर, मैंने तुम्हें फँसा कर या तुम्हारे ऊपर सन्देह उत्पन्न कराके अपने प्राण बचाना कायरता और मित्रता के प्रति विश्वासघात समझा। यदि मैं पहले ही कह देता कि तीसरा चाक़ू तुम ले गए थे, तो वह इनवायस की शहादत, जो मेरे लिए मौत का फन्दा हो गई, कभी उत्पन्न न होती। यह मैं मानता हूँ कि मेरे केवल इतना कह देने

से कि चाक़ू तुम ले गए थे, मैं मुक्त न हो जाता। मेरे विरुद्ध अन्य बातें भी थीं; परन्तु फिर भी मैं एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर सकता था, जिससे कि यह सम्भव था कि मैं छूट जाता। परन्तु मेरे छूटने का अर्थ था तुम्हारा फँसना। न्याय तो एक बलिदान लेता ही, मेरा न लेता तुम्हारा लेता। हम दो के अतिरिक्त तीसरे की कोई गुञ्जाइश नहीं थी। इसलिए मैं तुम्हारे सम्बन्ध में मौन ही रहा। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ; पर अब इतना तो बता दो कि मेरा विचार ठीक है या नहीं?

रेवतीशङ्कर कुछ क्षणों तक कामताप्रसाद की ओर देखता रहा, तत्पश्चात् उसने आँखें नीची कर लीं और गर्दन झुकाए हुए, काँपते हुए पैरों से, पिटे हुए कुत्ते की भाँति कामताप्रसाद के सामने से हट आया। कामताप्रसाद ने किञ्चित् मुस्कराते हुए उस पर जो दृष्टि डाली वह, वह दृष्टि थी जो एक महात्मा दया के योग्य एक पापी पर डालता है।

कामताप्रसाद को फाँसी दे दी गई। फाँसी के एक सप्ताह पश्चात् रेवतीशङ्कर ने विष खाकर आत्महत्या कर ली। उसके कमरे में एक बन्द लिफ़ाफ़ा पाया गया।

उस लिफ़ाफ़े में से एक पत्र निकला। यह पत्र किसी के नाम नहीं था, केवल साधारण रूप से लिखा गया था। इस पत्र में लिखा था :—

"सुन्दरबाई की हत्या कामताप्रसाद ने नहीं, मैंने की थी। सुन्दरबाई ने मेरे प्रेम को ठुकराया था, मेरा हृदय छीनकर मुझे दुतकारा था। इसके लिए मैं उसे कभी क्षमा नहीं कर सकता था। मैं उसके प्रेम में पागल था। उसके बिना संसार मेरे लिए शून्य था। जिस दिन उसने मुझे अपने घर आने से रोक दिया, उस दिन से मैं विक्षिप्त-सा हो गया। मैं इस चिन्ता में रहने लगा कि या तो उसे अपनी बना कर छोड़ूँ या फिर उसे दूसरे के लिए इस संसार में न रहने दूँ। मैं उसके मकान का चक्कर काटता रहता था। पर उस दशा में भी मुझमें इतना आत्म-गौरव था कि मैं उसके मकान पर नहीं गया। जिस दिन मैंने उसकी हत्या की, उस दिन रात को नौ बजे के लग-भग मैं टहलता हुआ उसके मकान के नीचे से निकला— इस अभिप्राय से कि कदाचित् उसकी एक झलक देखने को मिल जाय। मैं उसके मकान के सामने ज़रा हट कर खड़ा हो गया। मुझे खड़े कुछ ही क्षण हुए थे कि कामता-प्रसाद उसके मकान से उतरे। उनका वेष देख कर मेरी आँखों में ख़ून उतर आया। उनके अस्त-व्यस्त कपड़ों से मैंने कुछ और ही समझा। उस विचार के आते ही मेरे

शरीर में आग लग गई। मुझे कामताप्रसाद पर ज़रा भी क्रोध नहीं आया; क्योंकि मैं जानता था कि उन्हें सुन्दर-बाई की ज़रा भी परवा नहीं। मुझे क्रोध सुन्दरबाई पर आया, वही उनसे प्रेम करती थी। मैं अपने को सँभाल न सका और बिना परिणाम सोचे मैं चुपचाप चोर की तरह, दबे पैरों सुन्दरबाई के कोठे पर चढ़ गया। ऊपर जाकर मैं बहुत ही दबे पैरों सुन्दरबाई के कमरे में पहुँचा। सुन्दरबाई उस समय अपने पलँग पर लेटी हुई थी। उसके शरीर के वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। यह देख कर मैं क्रोधोन्मत्त हो गया। मैंने जाते ही एकदम से उसका मुँह दाब लिया जिससे वह हल्ला न मचा सके। मेरे पास एक चाक़ू था, यह मैंने कामताप्रसाद से उस समय माँग लिया था, जब कि उनका सर्जरी का सेट आया था। उस सेट का एक चाक़ू मुझे बहुत पसन्द आया था, वह मैंने उनसे माँग लिया। वह चाक़ू मुझे इतना पसन्द था कि मैं उसे हर समय अपने पास रखता था। वह चाक़ू निकाल कर मैंने उसकी छाती में घुसेड़ दिया। मैं उसका मुँह दाबे था, इससे वह चिल्ला न सकी। जब वह ठण्ढी हो गई तो मैं उसी प्रकार चुपचाप उतर कर अपने घर चला आया। मुझे किसी ने नहीं देखा था। बाज़ार की अधिकांश दूकानें उस समय बन्द हो चुकी थीं। मैंने घर आकर अपने ख़ून से भरे कपड़े तुरन्त जला दिए और निश्चिन्त हो गया।

"जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि कामताप्रसाद फँस गए तो मुझे बड़ा दुख हुआ। मैंने उस समय यह नहीं सोचा था कि हत्या का सन्देह किस पर पड़ेगा। मित्र के फँसने पर मुझे कितना पश्चात्ताप और कितना दुःख हुआ, उसे मैं ही जानता हूँ। परन्तु मृत्यु का भय, फाँसी पर लटकने के भयानक विचार ने मुझे इतना कायर बना दिया कि मैं अपना अपराध स्वीकार करके कामताप्रसाद को न बचा सका। मैंने कई बार चेष्टा की कि अदालत में जाकर सब बात कह दूँ, पर फाँसी के तख़्ते ने मुझे प्रत्येक बार पीछे ढकेल दिया। यदि मुझे यह विश्वास हो जाता कि मैं फाँसी न पाऊँगा, तो मैं निश्चय ही अपना पाप खोल देता। उसके लिए फाँसी के अतिरिक्त आजन्म कारावास अथवा कालेपानी की सज़ा भोगने के लिए मैं सहर्ष प्रस्तुत था, परन्तु मृत्यु! ओफ़! उसके लिए उस समय मैं प्रस्तुत नहीं था। कामताप्रसाद को फाँसी हो गई। मैंने एक हत्या नहीं, दो हत्याएँ कीं।

"कामताप्रसाद को यह रहस्य मालूम था। जेल में अन्तिम भेंट होने पर मुझे यह बात मालूम हुई। उस समय भी मैं इसी फाँसी के भय से अपने मित्र से अपने इस गुरु-तर पाप के लिए क्षमा न माँग सका। भय ने उस समय भी मेरा मुख बन्द कर दिया था।

"अब मेरे लिए संसार शून्य है। मेरी सबसे प्यारी

चीज़ सुन्दरबाई भी नहीं रही। दो-दो हत्याओं का मेरे सिर पर भार है। पश्चात्ताप की ज्वाला से तन-मन भस्म हुआ जा रहा है। इस घोर यन्त्रणापूर्ण जीवन से अब मुझे मृत्यु ही भली प्रतीत हो रही है, इसलिए मैं आत्महत्या करता हूँ। ईश्वर मेरे अपराधों को क्षमा करके मेरी आत्मा को शान्ति देगा या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है। परन्तु फिर भी जीवन से मृत्यु अधिक प्रिय मालूम होती है।

—रेवतीशङ्कर"

जिस समय कामताप्रसाद के पिता को यह बात मालूम हुई कि कामताप्रसाद निरपराध फाँसी पर चढ़ा, उस समय उन्होंने कहा—उसके भाग्य में यही लिखा था ; परन्तु इसके साथ ही यह बात भी है कि न्याय का यह दण्ड-विधान हत्या-विधान है। यदि मेरे लड़के को फाँसी न देकर, आजन्म जेल हुई होती तो वह आज छूट आता। न्यायी को ऐसा कार्य करने का क्या अधिकार है, जिसमें यदि भूल हो तो उसका सुधार उसके वश की बात न रहे। अब यदि न्याय उसे जिला नहीं सकता तो उसे फाँसी देने का क्या अधिकार था ? यह न्याय नहीं, बर्बरता है, जङ्गलीपन है, हत्याकाण्ड है। ऐसे न्याय का जितना शीघ्र नाश हो जाय, अच्छा है।

दुखी वृद्ध अपने शोकोन्माद में बैठा बक रहा था; परन्तु वहाँ ईश्वर के अतिरिक्त उसकी बात सुनने वाला और कौन था?

सुप्रबन्ध

सुप्रबन्ध

बाबू किशोरीलाल की वयस इस समय पचास वर्ष के लगभग है। यद्यपि उनके केश तथा दाढ़ी-मूँछें बहुत-कुछ श्वेत होगई हैं, तथापि उनका शरीर यथेष्ट शक्तिपूर्ण है। बाबू साहब के दो पुत्र हैं। एक की अवस्था २५ वर्ष के लगभग है और दूसरे की २२ वर्ष की है। बड़े का नाम तपेश्वरीप्रसाद और छोटे का नाम दुर्गाप्रसाद है। तपेश्वरीप्रसाद वकालत करते हैं और दुर्गाप्रसाद ने इसी वर्ष एल० एम० एस० की परीक्षा पास करके डॉक्टरी की दूकान खोली है।

तपेश्वरीप्रसाद का विवाह हुए बहुत दिन हो गए और उनके एक पुत्र भी है। दुर्गाप्रसाद की स्त्री का गौना अभी हाल ही में हुआ है। इन दो स्त्रियों के अतिरिक्त घर में और कोई स्त्री नहीं है। बाबू किशोरीलाल की धर्मपत्नी का देहान्त हुए पाँच वर्ष से अधिक हो चुके हैं।

एक दिन रात में दुर्गाप्रसाद की पत्नी ने उनसे कहा—तुम्हारी डॉक्टरी कुछ चलने लगे तो अलग रहेंगे।

दुर्गाप्रसाद ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—यह क्यों, अलग रहने की क्या आवश्यकता ?

पत्नी ने उत्तर दिया—जेठानी जी से पटेगी नहीं।

"क्यों नहीं पटेगी ?"

"वह अभी से हुक्म चलाती हैं—बड़प्पन दिखाती हैं।"

"तो इसमें हर्ज क्या है ? बड़ी तो वह हैं भी।"

"लाख बड़ी हों, पर ऐसा नहीं होता है। कोई उनका दिया तो खाता ही नहीं।"

"तो क्या जिसका दिया खाय उसी की बात माने ?"

"उसकी तो मजबूरी से माननी पड़ती है।"

"यह अच्छा सिद्धान्त है।"—दुर्गाप्रसाद ने हँस कर कहा।

पत्नी उनकी बात पर कुछ ध्यान न देकर बोली—अभी उस दिन की बात है, कहीं से आम आए थे। सो जेठानी जी ने अच्छे-अच्छे तो अपने और जेठ जी के लिए छाँट कर धर लिए और हमें-तुम्हें सड़े-गले दे दिए।

"हाँ, आम तो वास्तव में बड़े ख़राब थे।"

"सब ख़राब नहीं थे—हमें-तुम्हें छाँट कर ख़राब दिए गए थे।"

"ऐसी बात है ?"

"हाँ, ऐसी बात है।"

"मैंने यह समझा था कि शायद ख़राब ही आए

हों। मैंने भाभी से पूछा भी था कि क्या सब ऐसे ही हैं। उन्होंने कहा—हाँ, सब ऐसे ही हैं। यह सुन कर मैं चुप हो रहा।"

"भला कोई किसी के यहाँ ख़राब चीज़ भेजता है। तुमने इतना भी न सोचा।"—पत्नी ने चिबुक पर उँगली रख कर कहा।

"मैंने यह नहीं सोचा। मैंने समझा कि सम्भव है, ख़राब ही आगए हों।"

"इन्हीं बातों को देख-देख कर कलेजा जलता है।"

"ख़ैर, तुम इन बातों की परवा मत करो।"

"एक-दो बात हो तो परवा न करूँ। उनकी तो सभी बातें ऐसी हैं। तुम तो दूकान से इधर ग्यारह बजे आते हो, उधर रात को ८ बजे आते हो। जेठ जी दस बजे कचहरी जाते हैं और शाम को चार बजे आ जाते हैं। सो सवेरे भी वह पहले खाते हैं और शाम को भी तुमसे पहले खा लेते हैं। इस कारण जेठानी जी की बन आती है। उन्हें ख़ूब अच्छी तरह खिलाती हैं—बचा-खुचा तुम्हारे लिए धर दिया जाता है। परसों शाम को हलवा बना था। उसमें थोड़ा सा बाबू जी (श्वशुर) को तो मिला था, बाक़ी सब लापता हो गया—न तुम्हें मिला न मुझे। जेठ जी को खिला दिया और अपने आप गप कर गईं। मैं जब

खाने बैठी तो मैंने देखा कि मेरी थाली में हलवा नहीं है। मैं कुछ नहीं बोली। खाने-पीने की चीज़ में कुछ कहते मुझे तो लाज लगती है। थोड़ी देर में अपने ही आप बोलीं—हलवा थोड़ा ही बनाया था—बचा नहीं। मैं चुपकी हो रही कि कौन लड़ाई मोल ले, नहीं कह देती थोड़ा क्यों, सेर भर तो बनाया था। बाबू जी और जेठ जी सब तो खा न गए होंगे।"

दुर्गाप्रसाद ने किञ्चित् घृणायुक्त मुस्कान के साथ कहा—होगा भी, इन छोटी-छोटी बातों पर दृष्टि मत डालो।

"जब रोज़ यही बातें होती हैं, तो कहाँ तक दृष्टि न डाली जाय। उन्हें तो बड़प्पन के कारण ऐसी बातें करने का अवसर मिलता है। मुझे रसोई में घुसने नहीं देतीं। कल मैंने कहा—लाओ, आज रसोई मैं बनाऊँ, इस पर कहती क्या हैं—'तो फिर रोज़ तुम्हीं बनानी पड़ेगी।' लो बताओ यह भी कोई बात है?"

"तो तुमने क्या कहा?"—दुर्गाप्रसाद ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा।

"मैंने कहा, रोज़ बना लिया करूँगी। इस पर बोलीं—'हूँ बना लिया करेगी। अभी जुम्मा-जुम्मा आठ दिन गौने आए हुए। माँ-बाप कहेंगे कि जाते ही लड़की को बैल की तरह जोत दिया। मेरा नाम बदनाम होगा कि जो श्री यह

सब करती है। सास जीती होती तो ऐसा कभी न होने पाता।' सो इसका कारण क्या है? रसोई क्या, वह तो मुझसे न जाने क्या-क्या करावें। इसका कारण यही है कि अपने हाथ से रसोई बनाने में मनमानी चीज़ बनाने-खाने की सुविधा रहती है।"

"तो होगा, खाने-पीने दो, अपना कौन हर्ज है?"

"हर्ज क्यों नहीं है? खाने के लिए ही आदमी सारी मुसीबतें उठाता है। जो खाने को ही अच्छा न मिला तो कमाना-धमाना सब बेकार है।"

"खाना तो कुछ गड़बड़ नहीं मिलता।"

"किसी दिन जब तुम यह देखो कि जेठ जी और जेठानी जी कैसा खाना खाती हैं तो तुम्हें पता लगे। वैसे तो सब अच्छा है ही, समय पर सूखी रोटी भी मिल जाय, वह भी अच्छी है।"

"होगा, उनका दीन-ईमान जाने।"

"ख़ैर, दीन-ईमान चाहे जाने या न जाने, पहला प्रबन्ध तो यह होना चाहिए कि भोजन बनाने के लिए कोई ब्राह्मणी रक्खी जाय। न वह बनावें न मैं बनाऊँ।"

"यह तो होना कठिन है।"—दुर्गाप्रसाद ने मुँह बना कर कहा।

"क्यों?"

"पिता जी कहेंगे कि घर में दो-दो स्त्रियाँ बैठी हैं, तब

ब्राह्मणी की क्या आवश्यकता है? और फिर ऐसी दशा में, जब कि भाभी बनाने के लिए तैयार हैं। सबसे पहले तो वही आपत्ति करेंगी।"

"हाँ, यह बात तो ज़रूर है—वह ब्राह्मणी रखना कभी स्वीकार न करेंगी।"

"तब फिर ब्राह्मणी रखने का प्रश्न ही व्यर्थ है।"

"ब्राह्मणी न रक्खी जायगी तो यही दशा रहेगी।"

"ख़ैर, अभी दो-चार महीने तो इसी तरह चलने दो। आगे जैसा मौक़ा देखेंगे वैसा करेंगे।"

"अच्छी बात है, देख लो, पर इस प्रकार निभेगा नहीं।"

"जब तक निभेगी तब तक निभाएँगे, जब न निभेगी तो कोई इन्तज़ाम करेंगे।"

२

एक दिन देवरानी-जेठानी में ख़ूब कहा-सुनी हो गई। कारण यह था कि बाबू किशोरीलाल ज़नाने धोती-जोड़े लाए थे। उनमें से उन्होंने दोनों से आधे-आधे बाँट लेने के लिए कह दिया था। जेठानी ने चार जोड़े तो स्वयं रख लिए और चार देवरानी को दे दिए। देवरानी ने कहा—सब धोती जोड़ा लाकर यहाँ रक्खो, उनमें से हिस्सा-बाँट होगा। यह नहीं हो सकता कि तुम तो अच्छे-अच्छे रख लो और मुझे ख़राब दे दो।

जेठानी नाक-भौं सिकोड़ कर बोली—ऐसे ही तो मेरे भी हैं, मेरे में कुछ लाल नहीं टँके हैं।

"लाल नहीं टँके हैं तो यहाँ लाकर धरो न!"

"क्यों लाकर धरूँ, जो मुझे अच्छे लगे वह मैंने रख लिए।"

देवरानी ने जोड़े उठा कर जेठानी की ओर फेंक दिए और बोली—तो इन्हें भी धर लो, मुझे ऐसे जोड़े नहीं चाहिए!

"ओफ़ ओह! यह नख़रे! अभी तो ख़सम ने कुछ कमाया-धमाया भी नहीं है।"

"न कमाया हो, पर तुम्हारा दिया भी नहीं खाते हैं।"

"हमारा पैसा खाना सहज नहीं है—बड़ी मेहनत का पैसा है।"

"क्या ठीक हैं इस मेहनत के! दुनिया भर का सच-झूठ बोल कर, लोगों को लड़वा कर, ग़रीबों का रक्त चूस कर धन बटोरते हैं—हम तो ऐसे पैसे को छुएँ भी नहीं।"

इस बात पर जेठानी बहुत बिगड़ीं—नाक पर उँगली रख कर बोलीं—तुम्हारे यहाँ बड़ी पुन्न (पुण्य) की कमाई आती है। सवेरे उठ कर यही मनाते हैं कि कोई बीमार हो, शहर में हैज़ा फैले, प्लेग फैले—रात-दिन दूसरों का बुरा ही मनाते हैं। आग लगे ऐसी कमाई

को। ओफ़ ओह! आते देर नहीं, और आकाश में पेवन्द लगाने को तैयार! अभी से यह हाल है तो आगे क्या होगा?

"आगे जब होगा तब पता लगेगा। अभी जितनी चाहो, मनमानी कर लो, खूब घर काट-काट कर मौज उड़ाए जाओ।"

"हाँ-हाँ, घर काटते हैं, किसी के बाप का इजारा है। अपना ही घर तो काटते हैं—किसी दूसरे का तो नहीं काटते?"

"घर जितना तुम्हारा है, उतना ही हमारा भी है। मैं अभी तक बड़ी समझ के तरह देती रही, पर अब चुप नहीं रहूँगी। एक कहोगी तो चार सुनाऊँगी। अच्छी आई—हमें उल्लु समझ लिया है। हमारे आँख-कान थोड़े ही हैं।"

"आँख-कान हैं तो कर क्या लोगी?"

"अच्छी बात है, देखा जायगा।"

इसी प्रकार दोनों में खूब वाद-विवाद हुआ। सन्ध्या-समय सबसे पहले वकील साहब आए। वकील साहब की पत्नी उनसे बोलीं—बस, अब इस घर में रहना नहीं होगा। या तो दुर्गा और उसकी बहू ही रहेगी और या हम ही रहेंगे।

वकील साहब ने घबरा कर पूछा—क्यों, क्यों, ऐसी क्या बात है?

"बस यही बात है।"

"तो आखिर कुछ मालूम भी तो हो।"

"वह दुर्गा की बहू बड़ी छत्तीसी है, उससे मेरी एक मिनट नहीं पटेगी। वह अभी से हमारा खाना-पहनना देख कर कुढ़ने लगी। हमारे मुनुवा को देख कर जलती है।"

वकील साहब विस्मित होकर बोले—यह तुमने कैसे जाना?

"तुम तो हिन्दी की चिन्दी निकालते हो। अब तुम्हें कैसे बताऊँ। आज घण्टा भर लड़ाई होती रही!"

"अच्छा! बाबू जी कहाँ थे?"

"बाबू जी घर पर नहीं थे—कहीं गए हुए थे। मैं तुमसे क्या कहूँ—ऐसी-ऐसी सुनाई है कि भगवान् बचावे। यहाँ तक तो कह डाला कि तुम्हारे यहाँ पाप की कमाई आती है—झूठ-सच बोल कर, लोगों को लड़वा कर पैसा कमाते हैं और न जाने क्या-क्या कहा।"

वकील साहब के मुख पर कुछ झेंप के चिन्ह प्रस्फुटित हुए, तत्पश्चात् मुख तमतमा उठा। उन्होंने कहा—तो उनके यहाँ कौन बड़ा अच्छा पैसा आता है। सवेरे से उठ कर तमाम दुनिया भर का मल-मूत्र सूँघते हैं और यही तका करते हैं कि कब किसे हैज़ा हो, प्लेग हो। राम-राम! ऐसा निषिद्ध पेशा तो देखा ही नहीं। हम तो न

जाने कितनों को जेल से बचाते हैं, कितनों की इज़्ज़त की रक्षा करते हैं और कितनों का धन-दौलत दिलवाते हैं।

"मैंने तो उसे यही उत्तर दिया था।"

"दिया था! शाबाश, ख़ूब किया।"

"और नहीं क्या—मैं क्या कुछ दबैल हूँ?"

"परन्तु देखो तो चार दिन आए हुए और अभी से यह भावना उत्पन्न होगई—वाह रे संसार!"

"मैंने तो ऐसी स्त्री ही नहीं देखी—भगवान् जाने, माँ के पेट में कैसे रही होगी।"

"दाँत और नाख़ून नहीं थे, इसलिए पड़ी रही—अन्यथा पेट फाड़ कर बाहर निकल आती।"

इस पर पत्नी बहुत हँसी। बोली—ठीक कहते हो, है वह ऐसी ही। अच्छा, अब यह बताओ कि क्या सलाह है—मैं तो इसके साथ कदापि नहीं रहूँगी।

"ऐसी हालत में कैसे रह सकती हो। अच्छा, सोच कर बताऊँगा।"

इधर तो यह खिचड़ी पक रही थी, उधर सन्ध्या-समय जब डॉक्टर साहब आए, तो उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी बैठी रो रही है। उन्होंने घबरा कर पूछा—क्यों, क्यों, रो क्यों रही हो, क्या मामला है?

"मामला क्या है—अब मुझसे जेठानी जी के जूते

नहीं खाए जाते। या तो मुझे अलग लेकर रहो या मायके भेज दो। मैं इस घर में नहीं रहूँगी।"

"आज फिर कोई बात हुई क्या?"—डॉक्टर साहब ने भृकुटी चढ़ा कर पूछा।

"आज क्या, इस घर में रहने से रोज़ ही ये बातें होंगी।"

"मैं रोज़ की बात नहीं पूछता—आज क्या हुआ, यह बताओ?"

"आज यह हुआ कि बाबू जी आठ धोती जोड़े लाए थे और उन्होंने यह कह कर भीतर भिजवा दिए कि दोनों बहुवें बाँट लें। उनकी आदत जानते ही हो। बड़प्पन के बहाने हर एक चीज़ पहले अपने अधिकार में कर लेती हैं। सोई आज भी किया, धोती जोड़े लेकर अपने कमरे में चली गईं। वहाँ से आध घण्टे बाद चार जोड़े लाकर मेरे सामने डाल दिए। मैंने जो वह जोड़े देखे तो मामूली थे। मैंने कहा कि सब जोड़े लाकर यहाँ रक्खो, उसमें से हम-तुम आधे-आधे बाँट लें। बस, मेरा इतना कहना था कि आकाश सिर पर उठा लिया। न जाने क्या-क्या बक डाला। मैं चुपकी सुनती रही। जब वह बहुत बढ़ीं—बोलीं, तुम्हारे तो सवेरे से उठ कर यही मनाया जाता है कि कहीं हैज़ा फैले, कहीं प्लेग फैले, कोई मालदार बीमार हो—तब मुझसे भी न रहा गया।"

वकील साहब की तरह डॉक्टर साहब भी अपने पेशे के अन्धकारपूर्ण पहलू का उल्लेख किए जाने पर पहले कुछ झेंपे, तत्पश्चात् क्रुद्ध होकर बोले—ठीक है, वह बड़ा पुण्य कमाते हैं। सवेरे से उठ कर झूठ का पुश्तारा बाँधते हैं तो शाम कर देते हैं। ग़रीब किसानों को लड़वा-लड़वा कर अपना उल्लू सीधा करते हैं—झूठ को सच और सच को झूठ बनाते हैं। हम तो लोगों की जान बचाते हैं, उनका रोग और क्लेश दूर करते हैं!

पत्नी ने कहा—यही बात मैंने भी कही थी।

"अच्छा! कही थी! बड़ा अच्छा किया। ऐसे अवसर पर तो चूकना ही न चाहिए!"

"आख़िर करती क्या—जब वह बढ़ती ही चली गईं तो मेरा भी मुँह खुला।"

"वाह री भाभी! हम तो सदा अपनी बड़ी समझ के उनका आदर-सम्मान करते रहे और उनकी यह दशा! वाह रे संसार!"

"तो तुमने क्या करना विचारा है?"

"देखो, सोच कर बताऊँगा।"

"मेरा गुज़ारा इस तरह नहीं होगा, यह मैं बताए देती हूँ।"

"मैं स्वयम् इस दशा में नहीं रह सकता।"

"तो जो कुछ करना हो, जल्दी करो।"

"यह ठीक नहीं है। पिता जी बीच में न होते तो मैं इसी दम अलग हो जाता, परन्तु पिता जी के कारण एक-दम से ऐसा होना कठिन है। इस कारण कोई दूसरा रास्ता निकालना पड़ेगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल जब दोनों भाई अपने-अपने कमरे से निकले तो दोनों ने एक दूसरे को घूर कर देखा। यद्यपि दोनों एक दूसरे से मुँह से नहीं बोले, तथापि दोनों ने मौन भाषा से परस्पर यह प्रकट कर दिया कि आज से हमारी-तुम्हारी बोल-चाल बन्द है।

३

डॉक्टर साहब सवेरे ही अपने दवाख़ाने चले गए। उनके चले जाने के पश्चात् वकील साहब पिता के पास पहुँचे और बोले—पिता जी, दुर्गाप्रसाद के साथ अब मेरा रहना नहीं होगा।

पिता ने आश्चर्यपूर्ण नेत्रों से पुत्र को देखकर पूछा—क्यों, ऐसी कौन सी बात उत्पन्न हुई?

"एक बात हो तो बताऊँ, न जाने कितनी बातें हैं। अभी तक मैंने आप से इस कारण कुछ नहीं कहा कि घर में फूट होना अच्छा नहीं; परन्तु जब मामला तूल पकड़ गया, तब विवश होकर आज कह रहा हूँ।"

"तो आख़िर बात क्या है—यह तो बताओ?"

"बात यह है कि दुर्गा की बहू का मिज़ाज बहुत ही ख़राब है। वह हमें और हमारे बाल-बच्चों को नहीं देख सकती। ज़रा-ज़रा सी बात पर लड़ने को आमादा हो जाती है। कल आप जो धोती जोड़े लाए थे उनके पीछे उसने वह महनामथ मचाया कि आपसे क्या कहूँ। जो कुछ मुँह में आया वह कहा। उसे छोटे-बड़े तक का कोई लिहाज़ नहीं।"

"धोती जोड़ों के पीछे झगड़ा कैसे हुआ? मैं तो दोनों के लिए लाया था।"

"जी हाँ, उसमें छोटी बहू ने बड़ी पर यह दोषारोपण किया कि उसने अच्छे-अच्छे स्वयम् रख लिए और ख़राब उसे दे दिए।"

"उनमें अच्छे-ख़राब तो कोई नहीं थे। सबका कपड़ा एक ही तरह का था—हाँ, किनारियों में निस्सन्देह अन्तर था। कुछ की किनारी अच्छी थी और कुछ की साधारण।"

"ख़ैर, यह तो मैं जानता नहीं कि उनमें क्या अन्तर था—मैंने उन्हें नहीं देखा। परन्तु बात चाहे जो कुछ हो, छोटी बहू का व्यवहार असहनीय था। जिनका उसे आदर तथा सम्मान करना चाहिए, उनके सम्बन्ध में वह ऐसे अपशब्द कहती है कि कोई आत्माभिमानी आदमी उन्हें नहीं सुन सकता। इससे मेरी समझ में तो यही उचित है कि हम दोनों अलग-अलग रहें।"

"और मैं कहाँ जाऊँगा ?"

"आपकी इच्छा हो तो मेरे साथ रहिए और इच्छा हो तो दुर्गा के साथ रहिए।"

"और इस मकान को क्या करूँ, आग लगा दूँ ?"

"आग क्यों लगा दीजिएगा। इसमें एक आदमी रहेगा—या तो दुर्गा रहे या मैं रहूँ। जिसे आप कह दें वह इसमें रहे और दूसरा अपने लिए किराए का मकान ले ले।"

"यह मुझसे न होगा कि तुम्हें या उसे इस घर में रहने को कहूँ और दूसरे को निकाल दूँ—मेरे लिए दोनों बराबर हैं।"

"तो हम दोनों इसे छोड़ दें, यह मकान किराए पर उठा दिया जाय।"

"यह भी अनुचित है। लोग क्या कहेंगे ?"

"जो कहेंगे उन्हें जवाब भी दिया जायगा; परन्तु इस परिस्थिति में रहना असम्भव-सा है।"

"बड़े आश्चर्य की बात है ! अभी कल तक तो कोई शिकायत नहीं थी और आज ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होगई कि एक घर में रहना दूभर होगया।"

"बात थी क्यों नहीं—बात तो बहुत दिनों से है। परन्तु आप पर आज प्रकट की गई है।"

पिता ने कुछ क्षणों तक मौन रह कर कहा—यह विचार त्याग दो—यह विचार अच्छा नहीं है। मेरे जीते

जी तुम दोनों हिल-मिल कर रहो। मेरे मरे पीछे तुम्हारी जो इच्छा हो, करना। तुम पढ़े-लिखे हो, समझदार हो, अतएव स्त्री के सिखाए-पढ़ाए में मत आओ। दुर्गा को तुम्हारी ओर से कोई शिकायत नहीं है; फिर न जाने तुम उसके विरुद्ध क्यों हो?

"दुर्गा को शिकायत न हो, परन्तु मुझे तो बहुत बड़ी शिकायत है। रही स्त्री के सिखाए-पढ़ाए में आने की बात, सो आपका यह विचार भ्रमपूर्ण है। मैं किसी के सिखाए-पढ़ाए में आने वाला आदमी नहीं हूँ।"

"अच्छा ख़ैर, अब कोई ऐसी बात होगी तो मैं उस पर विचार करूँगा। अभी जैसा चलता है वैसा चलने दो।"—यह कह कर पिता ने पुत्र को बिदा किया।

दोपहर को डॉक्टर साहब जब घर आए तो भोजन करने के पश्चात् सीधे पिता के पास पहुँचे और बोले—पिता जी, आप से एक आवश्यक बात करना है।

पिता ने पूछा—क्या?

"बात यह है कि अब मैं इस घर में नहीं रह सकता।"

बाबू किशोरीलाल की यह धारणा थी कि जो कुछ शिकायत है, वह तपेश्वरी को है, दुर्गा को कोई शिकायत नहीं; परन्तु इस समय दुर्गा की बात सुन कर उनका

कलेजा धक् से हुआ। उन्होंने घबरा कर पूछा—क्यों, क्या तुम्हें भी तपेश्वरी के विरुद्ध कुछ कहना है ?

"अच्छा, तो आपकी बात से प्रकट होता है कि भाई साहब ने आप से कुछ कहा है।"

पिता ने शुष्क मुस्कान के साथ कहा—ख़ैर, उसने कुछ कहा हो या न कहा हो—तुम कहो, क्या कहते हो ?

"मैं यही कहता हूँ कि मैं भाई साहब के साथ एक घर में नहीं रह सकता ?"

"कारण ?"

"कारण यह है कि भाभी साहबा का व्यवहार असहनीय होता जा रहा है। वह अपने बड़प्पन का इतना दुरुपयोग करती हैं कि मैं आप से क्या कहूँ। अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा, सब अपने लिए रखती हैं और हमें रद्दी चीज़ें भेड़ती हैं। कल आप जो धोती जोड़े लाए थे, उनमें से अच्छे-अच्छे तो स्वयं रख लिए और रद्दी छोटी बहू को पकड़ाने लगीं। उसने कहा कि सब जोड़े यहाँ लाओ, उसमें से बराबर-बराबर बाँट लें। इस पर आग-बबूला हो गईं और उसे सैकड़ों सुनाईं और मेरे सम्बन्ध में भी अपशब्दों का व्यवहार किया।"

"धोती जोड़े तो सब एक से थे, उनमें अच्छे-बुरे तो कोई थे नहीं, मैं ऐसी ग़लती नहीं कर सकता कि दो प्रकार

की चीज़ लाऊँ। मैं तो दोनों के लिए एक प्रकार की चीज़ लाता हूँ, हाँ किनारियों में अन्तर अवश्य था।"

"ख़ैर, यह तो मैं जानता नहीं कि उनमें क्या अन्तर था, मैंने उन्हें नहीं देखा। परन्तु छोटी ऐसी नहीं है कि अकारण झगड़ा मोल ले।"

पिता ने सिर हिलाया और मन में सोचा, दोनों गधे हैं। दोनों में से तथ्य की बात जानने का प्रयत्न किसी ने नहीं किया—जो स्त्रियों ने कह दिया उसे वेद-वाक्य समझ लिया। यह सोच कर बाबू साहब किञ्चित् मुस्करा दिए। दुर्गाप्रसाद उत्तेजित होकर बोले—यह हँसने की बात नहीं है, इस पर गम्भीरता-पूर्वक विचार कीजिए। मैं ऐसी परिस्थिति में भाई साहब के साथ एक घर में नहीं रह सकता। एक आदमी केवल इसलिए दबाया जाय कि वह छोटा है और दूसरा बड़प्पन की आड़ लेकर मौज करे—यह कदापि सहन नहीं हो सकता।

"तपेश्वरी में और तुममें इस सम्बन्ध में कोई वार्त्तालाप हुआ है?"

"मुझे उनसे बात करने की आवश्यकता क्या है? मेरा जो कुछ कथन है, वह आप से है। इसका नियन्त्रण आपको करना चाहिए।"

"अच्छी बात है।"

"यह मैं आपको जतलाए देता हूँ कि इस बार यदि

पुनः कोई ऐसी घटना हुई, तो फिर चाहे आप मुझसे रुष्ट भले ही हो जायँ, परन्तु मैं इस घर में कदापि न रहूँगा।"

४

उपर्युक्त घटना के पन्द्रह दिवस पश्चात् एक दिन देवरानी-जेठानी में पुनः झगड़ा हुआ और उसके फल-स्वरूप तपेश्वरी और दुर्गा में भी कहा-सुनी हुई। इस बार दोनों ने बड़े ज़ोरों के साथ पिता से एक दूसरे की शिकायत की। बाबू किशोरीलाल ने संसार देखा था—वह समझ गए कि जब तक स्त्रियों का झगड़ा बन्द न होगा, तब तक घर की कलह शान्त न होगी। अतएव उन्होंने पहला काम तो यह किया कि घर का सारा प्रबन्ध अपने हाथ में कर लिया—स्त्रियों को गृहस्थी के प्रबन्ध-विभाग से एकदम निकाल बाहर किया। इस पर दोनों स्त्रियों ने आपत्ति की। परन्तु बाबू किशोरीलाल ने एक न सुनी। उन्होंने कहा कि जब तुम दोनों हिल-मिल कर गृहस्थी का प्रबन्ध नहीं कर सकतीं तो तुम दोनों इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य के लिए अयोग्य हो, इसलिए तुमको इससे अलग किया जाता है।

बाबू किशोरीलाल को कोई कार्य तो रहता नहीं था। उन्हें डेढ़ सौ रुपए मासिक पेनशन मिलती थी, अतएव

दिन भर घर में पड़े रहते थे; अथवा इधर-उधर मित्रों में घूमा करते थे।

अब बाबू किशोरीलाल ने घूमना छोड़ दिया। भोजन बनाने के लिए एक ब्राह्मणी रख ली थी। सवेरे उसके आने पर अपने सामने उसे सब जिनिस निकलवा कर देते थे। ब्राह्मणी भोजन पकाती थी। देवरानी-जेठानी में से किसी को भी रसोई-गृह में पैर रखने की आज्ञा न थी। जब भोजन तैयार हो जाता था, तो बाबू साहब स्वयम् खड़े होकर सबकी थाली परोसवाते थे और सबको भोजन कराते थे। सबके पश्चात् स्वयम् भोजन करते थे। बाहर से जो चीज़ आती थी, उसका भी हिस्सा-बाँट स्वयम् ही करते थे। इस प्रकार दोनों स्त्रियों के लिए अपने-अपने कमरे में पड़े रहने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं रह गया।

एक दिन छोटी बहू की एक सहेली उससे मिलने आई। दोपहर का समय था। सहेली के साथ उसके दो बच्चे भी थे। छोटी बहू ने सहेली और उसके बच्चों को कुछ खिलाना चाहा। अतएव वह बाज़ार से मिठाई मँगाने लगी। सहेली ने कहा—बाज़ार की तो कोई चीज़ मैं खाऊँगी नहीं—आजकल बीमारी चल रही है। हाँ, घर में ही कुछ बना लो तो खा लूँगी।

बहू ने कहा—अच्छा! उन्होंने नियमानुसार बाः

किशोरीलाल से कहलाया कि भण्डार-गृह से अमुक-अमुक जिनिस निकलवा कर भिजवा दें। भण्डार-गृह की ताली बाबू साहब के ही पास रहती थी। दुर्भाग्य से या यों कहिए कि सौभाग्य से उस समय बाबू साहब घर में नहीं थे। अब छोटी बहू बड़े असमञ्जस में पड़ीं। उन्होंने सहेली से कहा—बनाने में तो बड़ा झगड़ा है, बाज़ार से ही ठीक रहेगा।

सहेली बोली—हे भगवान्, ज़रा सी चीज़ बनाने में झगड़ा। अभी से यह हाल है। जो रात-बिरात चार-छः मेहमान घर में आ जायँ तो वे बेचारे भूखों ही मर जायँ, तुम तो झगड़ा समझ कर हाथ ही न लगाओ। वाह भई वाह! जो हम स्त्रियाँ इसे झगड़ा समझने लगीं तो बस फिर हो चुका।

छोटी बहू लज्जित होकर बोली—नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। मैंने कहा कि क्यों हैरानी उठावें। बनाने को तो मैं दस आदमियों का भोजन बना सकती हूँ।

"जब तुम दो-तीन आदमियों का बनाने में हैरानी समझ रही हो तो दस का क्या बनाओगी। अच्छा तुम न बनाओ—चलो मुझे सामान दो, मैं बनाऊँगी। देखो कैसी चीज़ बना कर खिलाती हूँ कि तुम जन्म-भर याद करो।"

सहेली की बात सुनकर छोटी बहू का कलेजा धड़कने

लगा। बाबू जी घर में नहीं हैं—सहेली सामान माँग रही है। क्या किया जाय? अन्य युक्ति न देख उसने नौकर द्वारा घी, मैदा इत्यादि बाज़ार से मँगवाया।

छोटी बहू ने नौकर को समझा दिया था कि सामान लाकर चुपके से रसोई-घर में रख देना। नौकर ने सामान तो उसी प्रकार चुपके से लाकर यथास्थान रख दिया। इसके पश्चात् बहू के पास आकर बोला—"बहू, यह लो चार आने। दो रुपए दिए थे, उसमें से आध सेर तो घी है एक रुपए का, और चार आने का मैदा है × × ×।" वह इतना ही कह पाया था कि छोटी बहू ने उसको इस प्रकार घूरा मानों कच्चा चबा जायँगी। नौकर को अपनी ग़लती मालुम होगई, उसने घबरा कर चुपचाप पैसे बहू के हाथ में रख दिए। परन्तु जितना कहा गया था, उतने ही से सहेली ने सब समझ लिया। उसने विस्मय का भाव दिखाते हुए पूछा—क्या जिनिस बाज़ार से मँगवाई है?

छोटी बहू का मुँह धुआँ हो गया। बोली—नहीं तो, एकाध चीज़ ख़तम हो गई थी, सो मँगा ली है। रसोईघर में पहुँच कर सहेली ने जिनिस देखी। देखते ही वह बोल उठी—ये तो सब बाज़ार से मँगाई गई हैं। क्या अब तुम्हारे यहाँ जिनिस समय पर बाज़ार ही से आती है? पहले तो यह बात नहीं थी?

छोटी बहू लज्जा के मारे पसीने-पसीने हो गई। उसने

कहा—जिनिस तो सब मौजूद है, परन्तु भण्डारघर की ताली हमारे ससुर जी के पास है।

"क्यों, उनके पास क्यों है ?"

"अब क्या बताऊँ, यह सब जेठानी जी के कारण हुआ।" इतना कह कर छोटी बहू ने सारा वृत्तान्त इस ढङ्ग से वर्णन किया, जिसमें सारा दोष जेठानी के मत्थे मढ़ा गया था। सहेली ने सब सुन कर कहा—यह नई बात देखी। बहू, तू चाहे बुरा मान चाहे भला, मैं तो यह कहूँगी कि हम स्त्रियों के लिए यह डूब मरने की बात है। हमारा काम पुरुष करें और इस कारण कि हममें उसके करने की योग्यता नहीं—इससे अधिक अपमानजनक बात और क्या होगी ? जेठानी में ऐब है तो तुम्हीं ग़म खातीं—यह नौबत तो न आती।

छोटी बहू ने लज्जित होकर मौन धारण करना ही उचित समझा।

बड़ी बहू के साथ भी इसी प्रकार की एक घटना हुई। एक दिन उनका छोटा भाई आया। उसने जो यह लीला देखी कि बाबू किशोरीलाल ही सब करते-धरते हैं तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अपनी भगिनी से इसका कारण पूछा। उसने छोटी बहू के ऊपर दोषारोपण करते हुए सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

उसने सब सुन कर बाबू किशोरीलाल से पूछा—आप यह सब अपने ऊपर क्यों लिए हुए हैं?

"क्या करूँ, बहुओं में कोई इस योग्य नहीं जो घर का काम-काज योग्यतापूर्वक और सबको सन्तुष्ट रख कर कर सके, इस कारण मैंने सब अपने हाथ में ले लिया।"

"परन्तु इसमें सारा दोष तो छोटी बहू का है।"

"यह मैं कैसे कहूँ। छोटी बहू बड़ी का दोष बताती है, बड़ी छोटी का। इससे मैंने यह नतीजा निकाला कि दोनों का दोष है। ताली दोनों हाथ से बजती है। दोनों में से यदि एक भी समझदार हो, तो झगड़ा न हो।"

"हाँ, यह कथन तो आपका यथार्थ ही है।" तपेश्वरी-प्रसाद के साले ने अपनी भगिनी को बहुत फटकारा। उसने कहा—तुम घर की बड़ी हो, तुम्हें इस तरह चलना चाहिए और ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे किसी को शिकायत पैदा न हो। यह बड़े शर्म की बात है कि केवल तुम दोनों के मिल कर न रह सकने के कारण यह अपमानजनक व्यवहार किया गया।

बड़ी बहू बोली—ख़ैर, अब जो हुआ सो हुआ। अब यदि पूर्ववत् ही सब प्रबन्ध रक्खें तो मैं इस बात का वादा कर सकती हूँ कि मैं अपनी ओर से कभी कोई झगड़े का कारण उत्पन्न न करूँगी।

बड़ी बहू के भ्राता ने यह बात बाबू किशोरीलाल

से कही। बाबू साहब ने कहा—मैं ज़बानी जमा-ख़र्च का विश्वास नहीं करता। यदि दोनों बहुएँ पूर्ववत् प्रबन्ध चाहती हैं तो मैं एक काग़ज़ लिख कर तुम्हें देता हूँ—उस पर तुम उन दोनों के हस्ताक्षर कराओ और उनके पतियों की गवाही, तब मैं मानूँगा।

दोनों बहुएँ तो अपनी अपमानजनक स्थिति से ऊबी ही हुई थीं—उन्होंने स्वीकार कर लिया और बाबू साहब के लिखे हुए काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दिए। बहुओं के कहने से पतियों ने भी अपनी-अपनी गवाहियाँ कर दीं।

अब आजकल बाबू किशोरीलाल के घर में सब काम सुचारु रूप से चलता है। भोजन पकाने का कार्य ब्राह्मणी करती है। अन्य सब प्रबन्ध बड़ी तथा छोटी बहू के सहयोग से होता है। यदि आपस में कभी कोई मतभेद होता है, तो वे अपने श्वसुर से उसका निर्णय करा लेती हैं—अपने इक़रारनामे के अनुसार उन्हें यह अधिकार नहीं है कि वे अपने-अपने पति से एक दूसरे की शिकायत करें।

निराश-प्रेमी

ठीक साढ़े नौ बजे ड्रॉपसीन उठा और 'निराश-प्रेमी' नाटक आरम्भ हुआ। 'आदर्श नाटक-मण्डली' का यह एक बड़ा प्रसिद्ध तमाशा था। इसको देखने के लिए जनता टूट पड़ती थी। इसमें नायिका का पार्ट मण्डली की प्रसिद्ध अभिनेत्री सुभद्रा करती थी और नायक का पार्ट जटाशङ्कर। सुभद्रा नवयुवती तथा सुन्दरी थी, और जटाशङ्कर भी नवयुवक और नाट्यकला में दक्ष था। ये दोनों नाटक-मण्डली के प्राण थे। इन्हीं के कारण उसका 'निराश-प्रेमी' नामक नाटक इतना प्रसिद्ध हो गया था।

सुभद्रा नाटकीय शृङ्गार किए हुए पखवाई के निकट एक कुर्सी पर बैठी थी और अपने पार्ट की प्रतीक्षा कर रही थी। उसके निकट ही कुर्सी की पीठ पर हाथ रक्खे खेल का विदूषक खड़ा था। अन्य अभिनायकों में से कुछ थोड़ी ही दूर पर एक दूसरी पखवाई की आड़ में खड़े स्टेज की ओर देख रहे थे। स्टेज पर इस समय जटाशङ्कर अपना पार्ट कर रहा था। सब लोग उसके पार्ट को बड़े ध्यानपूर्वक देख रहे थे। परन्तु विदूषक का ध्यान रङ्गमञ्च

की तरफ़ किञ्चिन्मात्र भी न था। वह सुभद्रा के मुख की तरफ़ निर्निमेष दृष्टि से ताक रहा था, मानो वह उसकी रूप-माधुरी को आँखों द्वारा पान कर रहा हो। कुछ देर पश्चात् जटाशङ्कर का कार्य समाप्त हुआ और वह भीतर आया। उसने देखा, सुभद्रा कुर्सी पर बैठी हुई है और उसके पीछे विदूषक खड़ा हुआ है। उसकी भौंहें तन गईं। ज़रा कड़ी आवाज़ कर बोला—क्यों जी, तुम यहाँ मुँह बाए क्यों खड़े हो ? अगले सीन में तुम्हारा काम है। तुम्हारा प्रवेश इधर से नहीं, उधर से है—उधर जाकर खड़े हो !

विदूषक ने कहा—जाता हूँ, अभी तो देर है।

जटाशङ्कर—देर क्या है; यह सीन तीन-चार मिनट में समाप्त हो जायगा, इसके पश्चात् तुम निकलोगे।

विदूषक ने इसका कोई उत्तर न दिया और चुपचाप वहाँ से हट गया।

जटाशङ्कर ने सुभद्रा से पूछा—यह यहाँ क्यों खड़ा था ?

सुभद्रा—मैं क्या जानूँ; मुझे तो यह भी पता नहीं था कि यह यहाँ खड़ा है, मेरा तो ध्यान स्टेज की ओर था।

जटाशङ्कर—वह तुम्हारी कुर्सी पर हाथ रक्खे खड़ा था और तुम्हें पता नहीं ?

सुभद्रा—मैं सत्य कहती हूँ, मुझे ज़रा भी पता नहीं था।

जटाशङ्कर—यह जब देखो तब तुम्हारे ही इर्द-गिर्द रहता है। यह तुमसे प्रेम करता है क्या?

सुभद्रा—हुँः! यह बेचारा क्या खाकर मुझसे प्रेम करेगा? पहले अपना मुँह तो देख ले!

जटाशङ्कर—नहीं, अवश्य करता है। इसकी दृष्टि से, हाव-भाव से, यह स्पष्ट प्रकट होता है कि यह तुमसे प्रेम करता है।

सुभद्रा—तो करता होगा। प्रेम करने से होता क्या है? ऐसे चपरक़नाती सैकड़ों फिरा करते हैं? इन्हें पूछता कौन है?

जटाशङ्कर—किसी दिन इससे मेरा झगड़ा न हो जाय। मैं यह सहन नहीं कर सकता कि कोई तुम्हें प्रेम की दृष्टि से देखे।

सुभद्रा—तुम तो तिल का ताड़ बनाते हो।

जटाशङ्कर—तिल का ताड़ नहीं, सच्ची बात है।

इसी समय स्टेज पर पट-परिवर्त्तन हुआ और विदूषक प्रविष्ट होकर अपना पार्ट करने लगा।

जटाशङ्कर तथा सुभद्रा दोनों कुछ क्षणों तक चुपचाप उसका अभिनय देखते रहे। हठात् सुभद्रा बोल उठी—अच्छा काम करता है।

जटाशङ्कर ने सुभद्रा पर एक तीव्र दृष्टि डाली और कहा—काम अपनी खोपड़ी करता है। उसे तमीज़ क्या है। न जाने इसे मालिक लोग क्यों रक्खे हैं। मेरा बस चले तो मैं आज ही निकलवा दूँ।

सुभद्रा ने किञ्चित् मुस्करा कर कहा—तुम ईर्षा-वश ऐसा कहते हो।

जटाशङ्कर—ईर्षा! इस बेचारे के पास है क्या, जो मैं ईर्षा करूँगा।

सुभद्रा—देखो-देखो, दर्शक लोग कितने ज़ोर से हँस रहे हैं।

जटाशङ्कर—गधे को देख कर सब हँसते हैं। उसे साधारण में देखने से ख़्वामख़्वाह हँसी आती है। इस समय तो वह स्टेज पर है।

सुभद्रा—वैसे देखने में तो बड़ा ग़रीब मालूम होता है और है भी सीधा।

जटाशङ्कर—बेवक़ूफ़ है न! बेवक़ूफ़ बहुधा सीधे ही होते हैं।

सुभद्रा हँस पड़ी। इसी समय दृश्य समाप्त हुआ। विदूषक उछलता हुआ अन्दर आया और जटाशङ्कर की ओर मुँह बनाता हुआ शृङ्गार-गृह की तरफ़ चला गया।

जटाशङ्कर के माथे पर बल पड़ गए। उसने उसकी ओर कुछ क्षणों तक देखा और फिर घृणा से मुस्करा कर

दृष्टि फेर ली। इसी बीच में सुभद्रा स्टेज पर चली गई थी।

जटाशङ्कर कुछ क्षणों तक खड़ा हुआ सुभद्रा का अभिनय देखता रहा, तत्पश्चात् मन्द गति से शृङ्गार-गृह की ओर चल दिया। वह शृङ्गार-गृह के दरवाज़े तक ही पहुँचा था कि उसके कान में आवाज़ पड़ी—यदि जटाशङ्कर का पार्ट मुझे मिले तो मैं दिखा दूँ कि पार्ट किस तरह किया जाता है।

जटाशङ्कर द्वार पर रुक गया और खड़ा होकर विदूषक की बातें सुनने लगा। एक ऐक्टर ने विदूषक से पूछा—निराश-प्रेमी का पार्ट तुम कर सकते हो?

विदूषक मुस्कराया। उसकी मुस्कराहट में विषाद था। उसने कहा—जटाशङ्कर बड़ा अच्छा ऐक्टर है और बहुत अच्छा काम करता है, यह मैं मानता हूँ; परन्तु निराश-प्रेमी का पार्ट! ओह! बड़ा कठिन काम है। यह वही कर सकता है, जिसे जीवन में कभी निराशा हुई हो। जटाशङ्कर निराशा के अर्थ तक नहीं समझता।

जटाशङ्कर से न रहा गया। उसने भीतर प्रविष्ट होकर कहा—निस्सन्देह। क्योंकि उसे कभी किसी काम में निराशा नहीं हुई।

इतना कह कर उसने विदूषक पर एक मर्मभेदी दृष्टि डाली।

विदूषक ने मुस्करा कर कहा—जिसे निराशा नहीं हुई वह आशा का भी मूल्य और आनन्द नहीं जानता।

जटाशङ्कर—तुम कहते हो कि तुम निराश-प्रेमी का पार्ट कर सकते हो?

विदूषक—हाँ, कहता तो हूँ।

जटाशङ्कर ने अन्य ऐक्टरों से कहा—ज़रा देखना इनकी सूरत! यह प्रेमी का पार्ट करेंगे!

यह कह कर उसने अट्टहास किया। अन्य लोग भी हँसने लगे।

विदूषक मौन तथा गम्भीर खड़ा रहा।

जटाशङ्कर ने पुनः कहा—यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कि मैं कहूँ कि मैं विदूषक का पार्ट करूँगा।

इस पर पुनः सब खिलखिला कर हँस पड़े। इसी समय सङ्केतकर्त्ता ने शृङ्गार-गृह के द्वार पर से कहा—जटाशङ्कर जी आइए, एक मिनट पश्चात् आपका प्रवेश है।

यह सुनते ही जटाशङ्कर शीघ्रतापूर्ण शृङ्गार-गृह के बाहर चला गया।

२

दोपहर का समय था। सुभद्रा अपने कमरे में बैठी हुई एक नए नाटक का पार्ट याद कर रही थी। इस समय हमारा पूर्व-परिचित विदूषक कमरे में प्रविष्ट हुआ। इस

समय वह विदूषक के वेष में नहीं था। वह इस समय साधारण वस्त्र पहने हुए था। देखने में वह २५-२६ वर्ष का प्रतीत होता था। शरीर का दुबला-पतला, गौर वर्ण तथा साधारणतया सुन्दर था।

उसे देखते ही सुभद्रा ने मन्द मुस्कान के साथ कहा—कहो प्रभूदयाल, क्या समाचार हैं? आज रिहर्सल में नहीं दिखाई पड़े।

प्रभूदयाल सुभद्रा के सामने बैठ गया। बोला—आज जी अच्छा नहीं है, इससे नहीं आ सका।

सुभद्रा—तुम दिन-दिन दुबले होते चले जाते हो, यह क्या बात है?

प्रभूदयाल ने सिर झुकाकर कहा—बात तो कोई नहीं है।

सुभद्रा—स्वास्थ्य कुछ ख़राब रहता है क्या?

प्रभूदयाल—नहीं, ऐसा कुछ ख़राब भी नहीं रहता।

सुभद्रा—तो फिर क्या कारण है?

प्रभूदयाल—क्या बताऊँ!

सुभद्रा—कोई गुप्त बात है क्या?

प्रभूदयाल—नहीं, तुमसे कुछ भी गुप्त नहीं रह सकता सुभद्रा! तुम सब जानती हो, सब समझती हो।

सुभद्रा—मैं कुछ नहीं जानती।

प्रभूदयाल—यदि नहीं जानती तो और भी अच्छा है।

मैं अपना दुख सुनाकर तुम्हारी प्रसन्नता में विघ्न क्यों डालूँ ?

सुभद्रा ने कुछ उत्तर न दिया। कुछ क्षण तक दोनों मौन बैठे रहे। इसके बाद प्रभूदयाल ने कहा—न जाने जटाशङ्कर मुझसे क्यों द्वेष रखते हैं।

सुभद्रा यह जानती थी, पर उसने अनजान बन कर कहा—जटाशङ्कर तुमसे द्वेष रखते हैं ?

प्रभूदयाल—हाँ, मुझे तो ऐसा ही प्रतीत होता है।

सुभद्रा—यह तुम्हें मालूम कैसे हुआ ?

प्रभूदयाल—उनके व्यवहार से, बातचीत से।

सुभद्रा—अच्छा, परन्तु द्वेष रखने का कारण ?

प्रभूदयाल—कारण मैं क्या जानूँ।

सुभद्रा—तुमने जानने की चेष्टा नहीं की ?

प्रभूदयाल—जहाँ तक मेरा अनुमान है, इसका कारण तुम हो।

सुभद्रा—मैं ?

प्रभूदयाल—हाँ तुम ! जटाशङ्कर समझते हैं कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।

सुभद्रा खिलखिला कर हँस पड़ी। बोली—यदि वह ऐसा सोचता है तो महा मूर्ख है।

प्रभूदयाल अप्रतिभ होकर बोला—क्यों सुभद्रा, ऐसा क्यों ?

सुभद्रा—तुममें और मुझमें प्रेम ! यह एक विचित्र-सी बात है ।

प्रभूदयाल—इसमें विचित्रता क्या है सुभद्रा ?

यह कह कर प्रभूदयाल ने सुभद्रा की ओर देखा। दोनों की आँखें मिल गईं। कुछ क्षणों तक दोनों की आँखें चार रहीं। हठात् सुभद्रा ने अपनी आँखें नीची कर लीं। उसके मुख पर लज्जा की हलकी लाली दौड़ गई।

प्रभूदयाल ने पुनः पूछा—यदि मैं तुमसे प्रेम करूँ तो इसमें विचित्रता क्या है ?

सुभद्रा ने सिर झुकाए हुए उत्तर दिया—मैं इस योग्य नहीं हूँ कि कोई मुझसे प्रेम करे।

प्रभूदयाल—इस बात का निर्णय तुम नहीं कर सकतीं।

सुभद्रा—सम्भव है !

प्रभूदयाल—मैं यह कहने का तो साहस नहीं सकता कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, क्योंकि मैं इ नहीं हूँ; परन्तु इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ मेरे प्राण भी तुम्हारे काम आ जायँ तो मुझे की आपत्ति न होगी, प्रत्युत मैं अपने को समझूँगा। मेरे लिए अपने प्रा पयोग नहीं हो सकता !

इसी समय अकस

किया। प्रभूदयाल को देखते ही उसके दिमाग़ का पारा चढ़ गया! वह मूँछों पर ताव देता हुआ प्रभूदयाल के बराबर ही कुरसी पर बैठ गया।

सुभद्रा जटाशङ्कर को देख कर कुछ घबरा-सी गई। प्रभूदयाल निश्चल बैठा रहा।

जटाशङ्कर ने पूछा—कहो, आज यहाँ कैसे? इस उक्ति में एक व्यङ्ग था, जिसे प्रभूदयाल को समझने में देर न लगी। उसने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—क्यों, यहाँ आने में कुछ रोक-टोक है क्या?

जटाशङ्कर—इसका उत्तर तो सुभद्रा दे सकती है, मैं तो वैसे ही पूछता हूँ।

प्रभूदयाल—तो ऐसी-वैसी बातों का उत्तर मैं नहीं दिया करता।

जटाशङ्कर—यह कहिए। सुभद्रा! इनकी अभिलाषा 'निराश-प्रेमी' में मैं प्रेमी का पार्ट करूँ।

...याल ने कहा—तो क्या हुआ?

... इस बात को सुन कर मुस्करा दी।

...—होना हवाना तो कुछ नहीं है, यह आप ...ँगा। दूसरा वह पार्ट कर ही

...र सोचता है। इसमें

नई बात क्या है ? मैं भी सोचता हूँ कि मेरा पार्ट दूसरा आदमी नहीं कर सकता।

जटाशङ्कर हँस कर बोला—तुम्हारे पार्ट में है ही क्या, बन्दर की तरह उचकना-कूदना है ! मैं तो ऐसा पार्ट करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझता हूँ।

प्रभूदयाल—जिस ढङ्ग का पार्ट आप निराश-प्रेमी का करते हैं, उसे मैं अपनी शान के ख़िलाफ़ समझता हूँ।

जटाशङ्कर—फिर आप उस पार्ट की अभिलाषा क्यों रखते हैं ?

प्रभूदयाल—मैंने यह कहा है कि जिस ढङ्ग का पार्ट आप करते हैं, यह नहीं कि वह पार्ट करना मैं अपनी शान के ख़िलाफ़ समझता हूँ।

जटाशङ्कर—अच्छा, तो आपके कहने का तात्पर्य कदाचित् यह है कि मैं अच्छा पार्ट नहीं करता।

प्रभूदयाल—निस्सन्देह !

जटाशङ्कर पुनः हँस पड़ा। सुभद्रा की तरफ़ देख कर बोला—सुना ?

सुभद्रा बोली—प्रभूदयाल, तुम तो पागलों की सी बातें करते हो। जटाशङ्कर का निराश-प्रेमी का पार्ट कितना प्रसिद्ध है, यह जानते हुए भी तुम ऐसी बातें कर रहे हो !

प्रभूदयाल—संसार की दृष्टि में यह अच्छा पार्ट करते होंगे, मेरी दृष्टि में नहीं।

जटाशङ्कर—तुम्हारे जैसों की परवाह कौन करता है?

प्रभूदयाल—ठीक बात है। मैं यह बात जानता हूँ जटाशङ्कर!

यह कह कर प्रभूदयाल ने एक क्षण के लिए सुभद्रा की ओर देखा और तत्पश्चात् सिर झुका लिया। थोड़ी देर तक तीनों प्राणी चुपचाप बैठे रहे। इसके पश्चात् प्रभूदयाल सुभद्रा से आज्ञा लेकर बिदा हुआ।

३

"क्या कर रहे हो प्रभूदयाल?"

"कुछ नहीं।"

"यह क्या है? अरे, यह तो निराश-प्रेमी का पार्ट है! तुम इसे याद कर रहे हो?"

प्रभूदयाल ने किञ्चित् झेंप कर कहा—नहीं, याद नहीं कर रहा हूँ, ऐसे ही देख रहा था।

"बड़े पागल हो। इसे देखने से लाभ? नए नाटक का पार्ट याद कर लिया?"

"हाँ, वह तो याद कर लिया।"

"डाइरेक्टर साहब ने नए नाटक में मेरा पार्ट नहीं रक्खा है। जानते हो क्यों?"

"नहीं।"

"उस दिन मैंने उनको ज़रा डाँट दिया था, इसी पर नाराज़ होकर नए खेल में मुझे नहीं रक्खा।"

"यह तो बुरा हुआ।"

"बुरा हो चाहे भला, अब मैं इस कम्पनी में नहीं रहूँगा। यहाँ मनुष्य की क़द्र नहीं। नए खेल में शङ्कर-लाल का पार्ट चन्दूलाल को दिया गया है।"

"वह पार्ट तो बड़ी वीरता का है।"

"जी हाँ, ज़रा शङ्करलाल के आकार-प्रकार को देखिए; नाटे आदमी, बोलते ज़नानों की तरह हैं और वह पार्ट उन्हें दिया गया है। अन्धेर है कि नहीं?"

"पूरा अन्धेर है। वह पार्ट तो तुम्हारे योग्य था।"

"किससे कहे और कौन कहे? यही बातें देख-देख कर ख़ून उबलता है। अन्धेरनगरी बेबूझ राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।"

"यह बुरी बात है।"

"मैं तो अब नौकरी छोड़ दूँगा। जहाँ आदमी की क़द्र हो, वहाँ चने चाब कर रहना अच्छा; पर यहाँ का मोहनभोग भी नहीं अच्छा!"

प्रभूदयाल बोल उठा—मैं भी नौकरी छोड़ूँगा रघुवीर, समझे! परन्तु नौकरी छोड़ने के पहले एक अभिलाषा है।

"वह क्या?"

"निराश-प्रेमी का पार्ट करने की।"

"क्या?"

"निराश-प्रेमी का पार्ट करने की अभिलाषा है रघुवीर-शङ्कर, समझे? इसीलिए यह पार्ट याद कर रहा हूँ।"

"क्या डाइरेक्टर ने तुम्हें याद करने को कहा है?"

"नहीं।"

"फिर?"

"मुझे विश्वास है कि ऐसा अवसर अवश्य आएगा और मैं पार्ट करूँगा।"

रघुवीरशङ्कर हँस पड़ा। बोला—प्रभूदयाल, तुम्हारा मस्तिष्क बिगड़ गया है। निराश-प्रेमी का पार्ट तुम्हें मिले, यह असम्भव है।

"संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है रघुवीर!"

"मैं इसे नहीं मानता।"

"न मानो। परन्तु यदि शङ्करलाल का पार्ट तुम्हें न दिया जाकर चन्दूलाल-जैसे आदमी को दिया जा सकता है, तो निराश-प्रेमी का पार्ट भी मुझे दिया जा सकता है।"

"जटाशङ्कर के होते हुए ऐसा होना असम्भव है। जटाशङ्कर के बाद व्यासशङ्कर आजकल भी, जब जटाशङ्कर की तबीयत ख़राब होती है, निराश-प्रेमी का पार्ट वही करता है।"

"दुनिया करे, इससे मुझे कुछ मतलब! मैं तो अवसर देख रहा हूँ, सम्भव है, कभी ऐसा मौक़ा आ पड़े।"

"तो आखिर उस पार्ट में ऐसी कौन-सी बात है, जो तुम उस पर इतने लट्टू हो ?"

"धुन ही तो है। जिस दिन मैं यह पार्ट करूँगा, वही दिन मेरा इस कम्पनी में अन्तिम दिन होगा।"

"क्या नौकरी छोड़ दोगे ?"

"हाँ।"

"क्या पता, ऐसा अवसर कब आए ?"

"जब आए !"

"अनिश्चित बात का क्या भरोसा ?"

"संसार में आशा ही मनुष्य का जीवन है रघुवीर ! यदि आशा न हो तो मनुष्य जीवित नहीं रह सकता।"

"आशा की भी कोई सीमा होती है।"

"बेशक ! सीमा-रहित आशा ही निराशा कहलाती है। पर मेरी आशा सीमा के भीतर है।"

"सम्भव है, हो। परन्तु यदि यह मान भी लिया जाय कि ऐसा अवसर कभी आ सकता है, तो क्या तुम जटा-शङ्कर से अच्छा पार्ट करोगे ?"

"यह तो उसी समय पता लगेगा।"

"जटाशङ्कर से अच्छा पार्ट तो तुम नहीं कर सकोगे प्रभूदयाल !"

"मैं इस सम्बन्ध में अभी कुछ नहीं कह सकता।"

"मेरा तो ऐसा ही अनुमान है।"

"सम्भव है, तुम्हारा अनुमान ठीक हो। परन्तु मैं इतना अवश्य कहूँगा कि मैं उस पार्ट में कुछ उठा न रक्खूँगा। वह मेरा ध्येय है—मेरे जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।"

"तुम्हारी बातें कुछ समझ में नहीं आतीं। एक तुच्छ-सी बात को तुम अपने जीवन का ध्येय बनाए हुए हो, बड़े आश्चर्य की बात है।"

"एक मनुष्य का ध्येय दूसरे के लिए आश्चर्य की बात हो सकती है। तुम्हें शङ्करलाल का पार्ट नहीं मिला, इसके लिए तुम नौकरी तक छोड़ने को तैयार हो। मेरे लिए भी यह आश्चर्य की बात है।"

"क्यों?"

"नहीं मिला तो न सही, इसके लिए तुम्हें नौकरी छोड़ने की क्या आवश्यकता है?"

"मैं इसमें अपना अपमान समझता हूँ कि मेरे रहते हुए एक ऐसे व्यक्ति को पार्ट दिया जाय जो उसके अयोग्य है।"

"इसी प्रकार मैं इसमें अपना गौरव समझता हूँ कि निराश-प्रेमी का पार्ट मुझे दिया जाय।"

रघुवीर हँस पड़ा। उसने कहा—यह बात है! तब तो ठीक है। अब मैं तुम्हारी इस अभिलाषा को अनुचित नहीं समझता।

"परन्तु तुम अभी इसकी चर्चा किसी से मत करना, इसे अपने ही तक रखना।"

"नहीं, मुझे क्या पड़ी है। मैं किसी से भी नहीं कहूँगा।"

इसी समय घण्टी बजने का स्वर इन दोनों के कानों में पड़ा।

रघुवीर बोला—रिहर्सल की घण्टी होगई। चलो चलें।

४

उपरोक्त घटना हुए पन्द्रह दिन व्यतीत हो गए। शुक्र-वार का दिन था। दूसरे दिन शनिवार था और उसी दिन 'निराश-प्रेमी' नाटक अन्तिम बार खेला जाने वाला था।

प्रभूदयाल अपने कमरे में बैठा हुआ था। उसी समय उसके पास रघुवीर आया और बोला—प्रभूदयाल, तुम्हारे लिए अवसर आया है।

प्रभूदयाल ने कहा—क्या?

"जटाशङ्कर को ज्वर आ गया, सम्भवतः वह कल पार्ट नहीं कर सकेगा। व्यासशङ्कर छुट्टी पर गया हुआ है।"

प्रभूदयाल कुछ क्षणों तक सोचता रहा। फिर बोला—कहते तो ठीक हो। कोई ऐसा है नहीं जो निराश-प्रेमी का पार्ट कर सके।

रघुवीर बोला—किसी को याद ही न होगा। तुम्हें तो सब याद है ?

प्रभूदयाल—मैंने तो याद ही किया है।

रघुवीर—तो आओ, चलो, इस समय डाइरेक्टर साहब के सामने यह समस्या उपस्थित है—तुम चलकर कहो।

प्रभूदयाल—अच्छी बात है, चलो।

दोनों डाइरेक्टर साहब के कमरे में पहुँचे। वहाँ पर अन्य दस-बारह ऐक्टर उपस्थित थे। डाइरेक्टर साहब कह रहे थे—यह तो बड़ा बुरा हुआ। कल आख़िरी खेल है।

एक व्यक्ति बोला—तो खेल बदल दीजिए।

डाइरेक्टर—यह असम्भव है। निराश-प्रेमी का विज्ञापन दिया जा चुका है, बहुत-सी कुर्सियाँ रिज़र्व हो चुकी हैं। कल अच्छी आमदनी होने की आशा है। खेल कैसे बदला जा सकता है। खेल बदला जायगा तो कल का दिन चौपट हो जायगा ; और बदनामी होगी सो अलग।

दूसरा व्यक्ति—आख़िर फिर क्या कीजिएगा ? कोई आदमी भी तो नहीं है।

डाइरेक्टर—तुम लोगों में से कोई नहीं कर सकता ?

"हम लोगों को पार्ट ही याद नहीं। ऐसी आशा तो थी नहीं कि कभी पार्ट करना पड़ेगा, इसलिए किसी ने याद भी नहीं किया।"

डाइरेक्टर—यह तो बड़ी बुरी बात हुई।

प्रभूदयाल खड़ा सुनता रहा। रघुवीर ने प्रभूदयाल की पीठ में अपनी उँगली चुभोई। प्रभूदयाल ने डरते-डरते आगे बढ़ कर कहा—मुझे वह पार्ट याद है, कहिए तो मैं करूँ।

प्रभूदयाल की बात सुन कर सब लोग हँस पड़े। डाइ-रेक्टर साहब ने प्रभूदयाल को सिर से पैर तक देख कर कहा—तुम करोगे ?

"हाँ करूँगा।"

"पार्ट याद है ?"

"अच्छी तरह।"

डाइरेक्टर—कैसे याद हुआ ?

प्रभूदयाल—सुनते-सुनते याद हो गया।

डाइरेक्टर—अच्छा !

यह कह कर डाइरेक्टर ने निराश-प्रेमी नाटक का रजि-स्टर उठा कर कहा—अच्छा, सुनाओ तो।

प्रभूदयाल—सीन बोलिए !

डाइरेक्टर—पहला ही सीन कहो।

प्रभूदयाल—आप सङ्केत करते जाइए।

डाइरेक्टर—हाँ-हाँ, चलो।

यह कह कर डाइरेक्टर ने प्रभूदयाल के वाक्य का पूर्व वाक्य पढ़ा। प्रभूदयाल ने अपना सब वाक्य सुना दिया।

डाइरेक्टर—अच्छा, चौथा सीन। इसमें भी देखें।

उसमें भी प्रभूदयाल को सब याद निकला। इसी प्रकार डाइरेक्टर ने लगभग सब दृश्यों में परीक्षा ली। प्रभूदयाल ने सब ठीक सुनाया।

रजिस्टर बन्द करके डाइरेक्टर ने कहा—पार्ट तो तुम्हें याद है, अब रहा ऐक्टिङ्ग। इसके लिए तुम क्या कहते हो। कर सकोगे?

एक व्यक्ति बोला—थोड़ा रिहर्सल कर देख लीजिए, अभी पता लग जायगा। इनके कहने पर मत रहिए।

डाइरेक्टर—हाँ, यह बात ठीक है। अच्छा रामचन्द्र जाओ, सुभद्रा से कहो स्टेज पर पहुँचे। निराश-प्रेमी का रिहर्सल किया जायगा। जाओ प्रभूदयाल, स्टेज पर चलो, मैं अभी आता हूँ।

एक सीन का रिहर्सल देखने पर डाइरेक्टर ने कहा—ठीक है, प्रभूदयाल निभा ले जायगा। बस, अब कोई चिन्ता की बात नहीं।

एकान्त में मिलने पर रघुवीरशङ्कर से प्रभूदयाल ने कहा—देखा तुमने! तुम कहते थे कि पार्ट मिलना असम्भव है। अब कहो?

रघुवीरशङ्कर—यह तुम्हारी सच्ची लगन का फल है।

प्रभूदयाल—आज मेरे जीवन का सबसे श्रेष्ठ दिन है।

रघुवीरशङ्कर—परन्तु यह ढाई दिन की बादशाहत है, उसके बाद फिर मोची के मोची।

प्रभूदयाल—कोई चिन्ता नहीं?

शनिवार को दोपहर के समय प्रभूदयाल सुभद्रा से मिलने गया। सुभद्रा के कमरे में पहुँचने पर उसे ज्ञात हुआ कि सुभद्रा जटाशङ्कर की सेवा-शुश्रूषा में है, इस समय वह नहीं मिल सकती। प्रभूदयाल कुछ देर तक खड़ा-खड़ा सोचता रहा और फिर एक दीर्घ-निश्वास छोड़ कर अपने स्थान पर चला आया।

रात को अभिनय प्रारम्भ होने से पूर्व प्रभूदयाल से अन्य ऐक्टरों ने कहा—देखो भैया, ज़रा सँभाले रहना। ऐसा न हो लुटिया डूब जाय।

प्रभूदयाल के अधरों पर एक शुष्क परिहास की रेखा दौड़ गई। उसने कहा—आज आप लोगों को पता लगेगा कि निराश-प्रेमी का पार्ट कैसा होता है।

एक ने कहा—रिहर्सल में पता चल गया है।

प्रभूदयाल—रिहर्सल की बात जाने दो। वहाँ तो केवल डाइरेक्टर को यह जताना था कि मैं पार्ट कर सकता हूँ। उस समय मैंने ऐक्टिङ्ग किया कहाँ था। ऐक्टिङ्ग तो अब होगा।

उचित समय पर नाटक आरम्भ हुआ। प्रथम दृश्य

देख कर दर्शक लोग आपस में कहने लगे—आज तो यह नया ऐक्टर ग़ज़ब ढा रहा है।

दूसरा—जटाशङ्कर का ऐक्टिङ्ग इसके सामने फीका पड़ गया।

तीसरा—इस आदमी को अब तक इन लोगों ने कहाँ छिपा रक्खा था।

चौथा—यह वही है, जो विदूषक बनता था। विदूषक का पार्ट आज दूसरा आदमी कर रहा है।

दूसरा—ख़ूब, ऐसे अच्छे ऐक्टर को विदूषक का पार्ट दिया जाता था। आश्चर्य है!

इधर ज्योंही प्रभूदयाल सीन समाप्त करके अन्दर पहुँचा, त्योंही उसे सब ऐक्टरों ने घेर लिया। सब एक स्वर से बोले—ख़ूब, प्रभूदयाल तुम कमाल कर रहे हो। अब जटाशङ्कर की हवा गई।

परन्तु प्रभूदयाल ने इन बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह चुपचाप एक कोने में जाकर बैठ गया। उसके मुख पर गहरी उदासी थी। एक ने उससे कहा—अरे अब तुम स्टेज पर नहीं हो। क्या अब भी वही निराश-प्रेमी बने हुए हो?

प्रभूदयाल ने कहा—भाई, मुझे दिक़ न करो, मेरा जी अच्छा नहीं है।

इसी समय डाइरेक्टर साहब दौड़े हुए आए और

प्रभूदयाल की पीठ ठोंक कर बोले—शाबाश प्रभूदयाल, तुमने आशातीत काम किया। यदि इसी प्रकार सारा नाटक कर जाओगे तो यह पार्ट सदैव के लिए तुम्हारा हो जायगा।

परन्तु यह शुभ-संवाद भी प्रभूदयाल के मुख पर प्रसन्नता न ला सका, वह उसी प्रकार उदास तथा गम्भीर बैठा रहा।

प्रथम अङ्क समाप्त होते-होते यह बात सर्व-मान्य हो गई कि जैसा अभिनय प्रभूदयाल कर रहा है, वैसा अभिनय आज तक नहीं देखा था।

सुभद्रा ने भी प्रभूदयाल को बधाई दी। बोली—तुम तो कमाल कर रहे हो प्रभूदयाल! ऐसा ऐक्टिङ्ग आज से पहले मैंने कभी नहीं देखा था।

प्रभूदयाल विषादपूर्ण मन्द मुस्कान के साथ बोला—तुम भी इसे ऐक्टिङ्ग समझती हो सुभद्रा? ख़ैर, कोई हर्ज नहीं!

दूसरा अङ्क आरम्भ हुआ। नाटक-मण्डली के मालिक तथा डाइरेक्टर भी प्रभूदयाल का अभिनय देखने के लिए स्पेशल क्लास में आ बैठे। जो ऐक्टर ख़ाली थे अथवा ख़ाली होते जाते थे, वे भी अपने डेरे पर न जाकर, खेल देखने ही बैठ गए।

दूसरा अङ्क करतल-ध्वनि के साथ समाप्त हुआ।

दर्शकों में से कुछ लोगों ने मण्डली के मालिक से कहा—क्यों जनाब, इस ऐक्टर को आपने आज तक कहाँ छिपा रक्खा था? अब तक बेचारे को विदूषक बनाते रहे। आज जब आख़िरी दिन है, तब इसे निकाला है।

मालिक ने लज्जित होकर कहा—हमें स्वयं यह नहीं मालूम था कि यह इतना अच्छा ऐक्ट कर सकेगा। यह तो संयोग-वश ऐसा हुआ।

इस पर दर्शकों ने प्रार्थना की कि दूसरे दिन भी यही खेल रक्खा जाय। मालिकों ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

इसी समय भीतर से एक आदमी दौड़ा आया और डाइरेक्टर साहब से बोला—ज़रा अन्दर चलिए, प्रभूदयाल की हालत अच्छी नहीं है।

डाइरेक्टर साहब भीतर पहुँचे। प्रभूदयाल एक आराम-कुर्सी पर लेटा है। कुछ लोग पङ्खा झल रहे हैं।

डाइरेक्टर ने प्रभूदयाल से पूछा—क्यों प्रभूदयाल, क्या बात है?

प्रभूदयाल—कुछ नहीं, ज़रा जी ख़राब हो गया है। परन्तु आप कुछ चिन्ता न कीजिए। पार्ट में कोई त्रुटि न होगी।

डाइरेक्टर—तुम्हारे ऐक्टिङ्ग पर मुग्ध होकर दर्शकों ने कल भी यही खेल करने की प्रार्थना की है, और सेठ

जी ने स्वीकार भी कर लिया है। चित्त को ज़रा सावधान रक्खो।

प्रभूदयाल—कल की कल देखी जायगी, परन्तु आज के लिए तो आप ज़रा भी चिन्ता न कीजिए।

डाइरेक्टर साहब बाहर आए। मालिक ने पूछा, क्या बात है?

डाइरेक्टर—कुछ नहीं, इतना बड़ा पार्ट मिलने से और उसका उत्तरदायित्व अनुभव करने से प्रभूदयाल कुछ घबड़ा गया है, और कोई बात नहीं।

मालिक—यही बात है। परन्तु कमाल किया है, वाह! तीसरा अङ्क आरम्भ हुआ। तीसरे अङ्क के अन्तिम दृश्य के पहले का दृश्य इस प्रकार प्रारम्भ होता था—"प्रेमी मृत्यु-शय्या पर पड़ा है। प्रेमिका उसके मरणासन्न होने का संवाद पाकर आती है और प्रेमी की शय्या पर बैठ कर ज्योंही उसे अपने अङ्क में लेने का उद्योग करती है, त्योंही प्रेमी के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं।"

दृश्य आरम्भ हुआ। प्रेमिका-वेश में सुभद्रा आकर शय्या पर बैठ गई। उसने नायक प्रभूदयाल को अपने अङ्क में उठा लिया। प्रभूदयाल ने सन्तोष की एक गहरी निश्वास छोड़ी। उसके मुख से यह प्रतीत होता था कि उसे कोई स्वर्गीय आनन्द प्राप्त हो रहा है। हठात् प्रभू-दयाल की आँखें पथराने लगीं, उसके हाथ-पैर ढीले

होने लगे। सुभद्रा पहले तो इसे ऐक्टिङ्ग समझी; परन्तु अकस्मात् उसे यह मालूम हुआ कि यह ऐक्टिङ्ग नहीं है। वह घबराकर उठ पड़ी। इसी समय पटाक्षेप हो गया। सुभद्रा ने प्रभूदयाल का कन्धा पकड़ कर हिलाया और बोली—"प्रभूदयाल! प्रभूदयाल!" परन्तु प्रभूदयाल ने कोई उत्तर नहीं दिया। दृश्य परिवर्त्तन करने वाले इस प्रतीक्षा में खड़े थे कि प्रभूदयाल शय्या पर से उठ कर भीतर आए तो दृश्य बदलें, परन्तु जब कई मिनट हो गए और उधर सुभद्रा ने कहा—"अरे प्रभूदयाल को क्या हो गया?" तो सब दौड़ पड़े। सबने देखा, प्रभूदयाल का शरीर निर्जीव पड़ा था।

सुभद्रा का असबाब गाड़ी पर लद रहा था। जटाशङ्कर से वह बिदा हो रही थी। जटाशङ्कर कह रहा था—सुभद्रा, मुझे तो यह आशा थी कि हमारा-तुम्हारा विवाह होगा। परन्तु × × ×

सुभद्रा—अब वह बात कोसों दूर गई। जब मैंने नाटक की नौकरी ही छोड़ दी, तब विवाह कैसा? प्रभूदयाल की याद मुझे नहीं भूलती। वह रात, वह ऐक्टिङ्ग और प्रभूदयाल की वह अन्तिम दृष्टि मेरी आँखों के सामने आठों पहर घूमती रहती है। वह अन्तिम खेल मेरे और प्रभूदयाल के जीवन का एक नाटक था।

जटाशङ्कर—तो अब क्या करोगी सुभद्रा ?

सुभद्रा—मैं स्वयं नहीं जानती कि मैं क्या करूँगी। अच्छा बिदा !!

मिथ्याभिमान

मिथ्याभिमान

"प्रियंवदा बहिन, मेरा तो यह अन्तिम वर्ष है।"

"क्यों बहिन, अन्तिम वर्ष क्यों?"

गर्ल्स हाईस्कूल का इन्टर्वल हुआ है। स्कूल की लड़कियों में से कुछ इधर-उधर दौड़ कर खेल रही हैं, कुछ जलपान कर रही हैं, कुछ अपनी-अपनी टोलियाँ बनाए विभिन्न स्थानों में बैठी वार्त्तालाप कर रही हैं। इन्हीं में की दो कन्याएँ एक झाड़ी की छाया में बैठी परस्पर बातचीत कर रही हैं। दोनों समवयस्क हैं—दोनों की अवस्था १६ वर्ष के लगभग है। इनमें से एक, जिसको दूसरी ने प्रियंवदा कह कर सम्बोधन किया, बहुत सुन्दर है। दूसरी यद्यपि कुरूपा नहीं है, तथापि सुन्दरी कही जाने योग्य भी नहीं है।

प्रियंवदा के प्रश्न करने पर कि "क्यों बहिन, अन्तिम वर्ष क्यों?" दूसरी ने उत्तर दिया—इस वर्ष मेरा विवाह होने वाला है। विवाह के पश्चात् फिर पढ़ने थोड़े ही पाऊँगी!

प्रियंवदा—क्यों?

दूसरी हँस कर बोली—वाह, यह अच्छा प्रश्न किया। विवाह के पश्चात् ससुराल चली जाऊँगी कि नहीं?

प्रियंवदा—हाँ-हाँ, तो × × ×?

दूसरी—तो फिर पढ़ूँगी कैसे?

प्रियंवदा—तू चाहेगी तो पढ़ सकेगी।

दूसरी—तू तो पागलों की सी बातें करती है। मेरे चाहने से होता क्या है—ससुराल वाले मुझे पढ़ने देंगे?

प्रियंवदा—यदि न पढ़ने दें तो महामूर्ख हैं।

दूसरी—मूर्ख क्यों? ससुराल में भी कहीं स्त्रियाँ पढ़ती हैं? अभी तक तो मैंने ऐसी कोई लड़की देखी-सुनी नहीं, जिसने ससुराल में रह कर स्कूल अथवा कॉलेज की शिक्षा प्राप्त की हो।

प्रियंवदा—वाह बहिन मनोरमा, यह तुमने एक ही कही। अभी तक जो नहीं हुआ, वह कभी नहीं होना चाहिए, यह कहाँ का तर्क है?

मनोरमा—मैं चाहिए की बात नहीं कहती, मैं तो वह कहती हूँ, जो होता है।

प्रियंवदा—यह कुछ नहीं; यदि मेरा विवाह हो जाय तो मैं ससुराल जाकर भी अपनी शिक्षा अवश्य जारी रक्खूँ।

मनोरमा—बड़ा कठिन है बहिन! पराए वश में रह कर स्वेच्छा से कार्य करना बड़ा कठिन हो जाता है।

प्रियंवदा—यदि ससुराल में हमें इतनी भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती, तब तो विवाह करना व्यर्थ है।

मनोरमा—स्वतन्त्रता-परतन्त्रता की बात नहीं, विवाह होने के पश्चात् पढ़ना कठिन हो जाता है। विवाह हो जाने पर पुरुषों का पढ़ना तो समाप्त ही हो जाता है, हम स्त्रियों की तो बात ही क्या है? हमारे भैया की उमर बीस वर्ष से ऊपर हो गई है, बी० ए० में पढ़ते हैं, अभी तक विवाह नहीं हुआ। पिता जी कहते हैं, जब पढ़ाई समाप्त हो जायगी, तब विवाह करेंगे—नहीं तो फिर पढ़ न सकेगा। जब पुरुषों की यह दशा है, तो हम तो स्त्रियाँ हैं।

प्रियंवदा—मैं तो जब तक बी० ए० पास न कर लूँगी, तब तक पढ़ना नहीं छोड़ूँगी—चाहे विवाह हो, चाहे न हो।

मनोरमा हँस कर बोली—यह सब कहने की बातें हैं, विवाह करना तेरे हाथ में थोड़े ही है, जब माँ-बाप चाहेंगे, तब कर देंगे।

प्रियंवदा—कर चुके, मेरी इच्छा के विरुद्ध कर देंगे, अन्धेर है!

मनोरमा—अच्छा!

इतना कह कर मनोरमा प्रियंवदा का मुँह ताकने लगी। उसके नेत्रों में आश्चर्य तथा अविश्वास का मिश्रित भाव था। प्रियंवदा उसका भाव समझ कर बोली—अच्छा, क्या मैं झूठ थोड़े ही कहती हूँ। संसार

में ऐसा कौन है, जो बिना मेरी इच्छा के मेरा विवाह कर दे ?

मनोरमा—संसार में ऐसे माता-पिता ही हुआ करते हैं।

प्रियंवदा—होते होंगे।

मनोरमा—तेरे नहीं हैं क्या ?

प्रियंवदा—अभी तक तो नहीं हैं।

मनोरमा—क्या वह तेरा विवाह तभी करेंगे, जब तू चाहेगी ?

प्रियंवदा—अभी तक तो विवाह की कोई बातचीत है नहीं।

मनोरमा—इससे तो यह प्रकट नहीं होता कि वह तेरी इच्छानुसार विवाह करेंगे। सम्भव है, अभी कोई अच्छा रिश्ता न मिला हो अथवा वह तेरी स्कूली शिक्षा के समाप्त होने की बाट देख रहे हों।

प्रियंवदा—स्कूली शिक्षा तो इस वर्ष समाप्त ही समझो।

मनोरमा—तो पारसाल तक विवाह भी हुआ समझो।

प्रियंवदा—मैं करूँ जब न !

मनोरमा—वे करेंगे तो करना ही पड़ेगा—वे स्वयम् न करें तो बात दूसरी है।

प्रियंवदा—वे करने पाएँगे ही नहीं, मैं झट कॉलेज में भर्ती हो जाऊँगी।

मनोरमा—ज़बरदस्ती ?

प्रियंवदा—जैसे भी बनेगा।

मनोरमा—कोरी बातें ही बातें हैं !

प्रियंवदा—तुम जो चाहो, समझो; परन्तु बहिन, मैं यह तुम्हें बताए देती हूँ कि मेरी उच्चाभिलाषा यह है कि मैं बी० ए० पास करूँ। मैं इसे पूरी करने की भरसक चेष्टा करूँगी—आगे ईश्वराधीन है।

मनोरमा—भगवान् तेरी उच्चाभिलाषा पूरी करें, पर बात है बड़ी कठिन। पढ़ने की इच्छा तो मेरी भी है, पर यदि माता-पिता भी चाहें तब। उनके विरुद्ध होकर मैं न कोई काम कर सकती हूँ और न करना ही चाहती हूँ। यदि घर में कलह करके, माता-पिता का हृदय दुखाकर, कोई कार्य किया तो किस काम का ? ऐसे काम से सुख नहीं मिलता।

प्रियंवदा—यह सब कहने की बात हैं। जो अपना जी चाहे उसे करने में ही सुख मिलता है। सुख है क्या ? अपनी मनोकामनाओं का पूर्ण होना—इसी का नाम सुख है।

मनोरमा—होगा। मुझे तो इसका अनुभव है नहीं। मुझे इसका अनुभव अवश्य है कि कभी-कभी अपनी इच्छा को दबा कर दूसरे की इच्छानुसार कार्य करने में भी सुख मिलता है।

प्रियंवदा—यह कैसे ? जब तुम अपनी इच्छा को मारोगी तो सुख कैसे मिलेगा ?

मनोरमा—अपनी इच्छा को मार कर दूसरे के रुच्यानुसार कार्य करने में दूसरे को जो आनन्द तथा सुख मिलता है, उसका निरीक्षण करने में ही परम सुख मिल जाता है—उतना सुख कदाचित् मनमानी करने में कभी नहीं मिलता।

प्रियंवदा अट्टहास करके बोली—तू तो साधु-सन्तों की सी बातें करती है। हम लोगों को ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं—यह सब भावुकता है। हमारी यह अवस्था भावुकता में पड़ कर अपनी अभिलाषाओं को कुचलने की नहीं है, उन्हें पूरा करके जीवन का सुख उठाने की है।

मनोरमा—यदि किसी को अभिलाषाएँ कुचलने में ही सुख मिलता हो तो ?

प्रियंवदा—ऐसा कभी नहीं होता। यदि किसी को सुख मिलता भी हो तो वह दो में से एक अवश्य है—या तो पागल है या महात्मा !

मनोरमा—पागल तो सदैव दूसरों को पीड़ा ही देते हैं—सुख तो पहुँचाते नहीं।

प्रियंवदा—यह बात ग़लत है।

मनोरमा—होगी। ख़ैर, अब मुझे तेरी करतूत देखनी है।

प्रियंवदा—देख लेना, एक दिन तुम मेरी दशा पर ईर्ष्या करोगी।

मनोरमा—जिस दिन ऐसा अवसर आएगा, उस दिन मैं यह स्वीकार कर लूँगी कि तू जो कुछ कहती थी, ठीक था।

इसी समय इन्टर्वल की समाप्ति का घण्टा बजा, अतएव दोनों अपनी क्लास की ओर चली गईं।

२

"प्रियंवदा! ले देख, तेरा रिज़ल्ट (परीक्षा-फल) आ गया!"

"कहाँ है, देखूँ।" कहती हुई प्रियंवदा अपने पिता की ओर दौड़ी। उसके पिता ने उसके हाथ में 'लीडर' की प्रति देते हुए कहा—आज आगया! तू पास हो गई है।

प्रियंवदा ने अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक पत्र को खोलकर देखा। अपना नाम उत्तीर्ण होने वालों की सूची में देखकर उसका मुख-कमल खिल उठा। उसी समय प्रियंवदा की माता भी आ पहुँची। प्रियंवदा ने कहा—अम्माँ, मैं पास हो गई।

माता भी प्रसन्न होकर बोली—चल तेरी मिहनत सफल हो गई।

पिता ने मुस्करा कर कहा—अब मिठाई खिला।

प्रियंवदा—हूँ, मैं क्यों खिलाऊँ ? आप खिलाइए—आपने कहा था कि तू पास हो जायगी, तो तुझे मिठाई खिलाऊँगा !

पिता—वाह ! यह अच्छी रही—पास तू हुई और मिठाई मैं खिलाऊँ ?

प्रियंवदा—आपने कहा था कि नहीं ?

पिता—शायद धोखे से कह दिया हो।

प्रियंवदा—किसी तरह कहा—कहा तो ?

माता बोल उठी—चलो, मैं दोनों को खिला दूँगी।

पिता—तो जान पड़ता है, सबसे अधिक प्रसन्नता तुम्हीं को हुई है ?

माता—हाँ, क्यों नहीं ? मुझे यह बड़ा डर था कि कहीं फ़ेल हो गई तो रह जायगी। यदि फ़ेल हो जाती तो अब दुबारा तो पढ़ने भेजते नहीं ?

प्रियंवदा बोली—क्यों ?

माता—अब क्या सारी उमर पढ़ती ही रहेगी ? इतना पढ़ लिया, बहुत है। यह भी तेरी इच्छा थी तो हो गया, नहीं तो कौन तुझे नौकरी करनी है !

प्रियंवदा—वाह ! क्या नौकरी के लिए ही पढ़ा जाता है ?

माता—और नहीं काहे के लिए पढ़ा जाता है। कमाना-खाना न हो तो इतना कोई काहे को पढ़े ?

प्रियंवदा ने माता की बात पर ध्यान न देकर कहा—पिता जी, अब मैं कॉलेज ज्वाइन करूँगी।

पिता ने विस्मित होकर कहा—क्या कहा ? कॉलेज ज्वाइन करेगी ?

प्रियंवदा—हाँ !

पिता—यह क्यों ? ऐसी कौन मुसीबत आ पड़ी है ?

प्रियंवदा—मेरी इच्छा अभी पढ़ने से नहीं भरी।

पिता—तो पढ़ने को कौन मना करता है। अब तो तू घर बैठे सब कुछ पढ़ सकती है।

प्रियंवदा—ऐसा पढ़ना किस काम का ? मेरी इच्छा है कि मैं बी० ए० पास करूँ।

पिता—हाँ, अभी क्या हुआ है, बी० ए० पास करके तू कहेगी कि मैं विलायत जाऊँगी।

प्रियंवदा—ख़ैर, विलायत तो क्या जाऊँगी; पर बी० ए० अवश्य पास करूँगी।

पिता—बी० ए० पास करके करेगी क्या ?

प्रियंवदा—मैं कुछ करने के लिए थोड़े ही पढ़ती हूँ, अपने शौक़ के लिए पढ़ती हूँ।

पिता—शौक़ के लिए इतना यथेष्ट है। मुख्य बात

योग्यता है। सो तू घर में पुस्तकें पढ़ कर योग्यता बढ़ा सकती है।

प्रियंवदा— ऐसी योग्यता किस काम की?

माता अभी तक मौन खड़ी थी। उसने पिता-पुत्री का यह कथोपकथन सुन कर कहा—तू क्या पागल हो गई है—अब भला तेरी पढ़ने की उमर है? अब तेरा ब्याह होगा, ससुराल जायगी—अब पढ़ने की फ़ुरसत कहाँ मिलेगी? इतना भी पढ़ाया तो बड़ी हिम्मत की। अपने-पराए सब ताने देते हैं कि लड़की इतनी सयानी होगई, अभी तक ब्याह नहीं हुआ।

प्रियंवदा ने दबी जिह्वा से कहा—मुझे ब्याह नहीं करना है।

इतना कह कर प्रियंवदा वहाँ से चली गई। पिता तथा माता दोनों कुछ क्षणों तक स्तम्भित-से खड़े रहे। इसके पश्चात् माता ने कहा—और पढ़ाओ! सुना, क्या कह गई?

पिता—सुना; पर इससे होता क्या है? होगा तो वही, जो हम-तुम चाहेंगे।

माता—भगवान् बचावे, लड़की बड़ी हठी है। मेरा तो कलेजा दहलने लगा। इसी से मैं मना करती थी कि अङ्गरेज़ी न पढ़ाओ। अङ्गरेज़ी पढ़ा आदमी अपने आगे दूसरे को कुछ समझता ही नहीं।

पिता—अरे यह सब दो-चार दिन की सनक है, जाती रहेगी।

माता—जाती रहे तो अच्छा ही है, नहीं तो बड़ा महनामथ करेगी।

पिता—तो मैं ठीक भी कर दूँगा! मैं और तरह का आदमी हूँ।

माता—अब जितनी जल्दी हो सके, इसका ब्याह कर देना चाहिए।

पिता—अब विवाह होने में क्या देर है। इसी की प्रतीक्षा थी कि यह पास हो जाय। रिश्ता ढूँढ़ ही रक्खा है—केवल सगाई होने की देर है।

माता—तो उन्हें लिख-पढ़ के सगाई कर दो और दो-चार महीने पीछे ब्याह हो जाय। घर-गृहस्थी में पड़कर पढ़ना-लिखना सब आप ही भूल जायगी।

पिता—हाँ, यह भी ठीक है। मैं आज ही उन्हें पत्र लिखता हूँ।

उसी दिन से प्रियंवदा के पिता उसके विवाह के लिए पूर्ण उद्योग करने लगे। इधर प्रियंवदा इस बात पर तुली बैठी थी कि वह कॉलेज अवश्य ज्वाइन करेगी। परन्तु जब उसने देखा कि उसके माता-पिता इस बात के लिए प्रस्तुत नहीं और वे उसके विवाह की तैयारी में लगे हैं, तो उसने कलह करना आरम्भ किया। कई दिन तक अच्छी

तरह भोजन नहीं किया, पड़ी रोती रही। परन्तु इसका भी कोई अच्छा फल न हुआ। उसके प्रति माता-पिता के विचार और भी ख़राब होगए। अब वे सोचने लगे कि कब विवाह हो और कब यह बला घर से दूर हो। एक दिन प्रियंवदा ने आत्महत्या करने की धमकी दी। इसका फल यह हुआ कि उसके पिता स्वयम् उसके प्राण लेने पर उद्यत होगए। यदि माता बीच में पड़ कर उन्हें शान्त न करती, तो उस दिन बड़ी विकट दुर्घटना हो जाने की सम्भावना थी।

उसी दिन से पिता को पुत्री से तथा पुत्री को पिता से घृणा हो गई।

अन्त में प्रियंवदा का विवाह हो गया और वह ससुराल चली गई।

३

ससुराल पहुँच कर प्रियंवदा कुछ दिनों तो लज्जा के कारण चुपचाप रही, परन्तु ज्यों-ज्यों उसकी लज्जा दूर होने लगी, त्यों-त्यों उसने अपना उग्र-रूप दिखाना आरम्भ किया। सास, जेठानी तथा अन्य स्त्रियों को तो वह फूस-वत् समझती थी! क्यों? इसलिए कि वे सब मूर्ख तथा अशिक्षिता थीं और प्रियंवदा सुशिक्षिता। बात-बात में नाक-भौं चढ़ाना, उनके प्रत्येक कार्य में छिद्रान्वेषण करना, यह प्रियंवदा का स्वभाव-सा हो गया। अपने रूप का भी

उसे बड़ा ही अभिमान था। प्रातःकाल से लेकर रात में सोने के समय तक कोई घण्टा ऐसा न जाता था, जिसमें श्रीमती जी दो-चार बार अपनी छवि दर्पण में न देख लेती हों। घर का कोई भी काम करना वह अपनी शान के ख़िलाफ़ समझती थीं। भोजन बनाना प्रथम तो आता ही न था, जो कुछ थोड़ा-बहुत आता था, उसका सदुपयोग भी न होता था। ससुराल यद्यपि साधारणतया धनाढ्य थी—श्वसुर महोदय वकील थे, ज़मींदारी भी थी, रियासत भी थी, परन्तु तब भी प्रियंवदा को वह कङ्गाल ही दिखाई पड़ती थी। उनका कङ्गालपन उस समय और भी अधिक बढ़ जाता था, जब श्रीमती प्रियंवदा देवी किसी चीज़ के लिए कहती थीं और वह प्रस्तुत न की जाती थी। अनेकों साड़ियाँ होने पर भी यदि प्रियंवदा देवी ने एक नई साड़ी की माँग पेश की और वह व्यर्थ समझ कर पूरी न की गई, तो बस उसी दिन उनकी ससुराल की कङ्गाली एक मात्रा अधिक बढ़ जाती थी। उनके पति महोदय यद्यपि ग्रेजुएट थे, पर उनकी दृष्टि में वह भी बुद्धिहीन थे। जिह्वा इतनी स्वतन्त्र थी कि किसी के सम्बन्ध में कोई भी उचितानुचित कह देना एक साधारण बात थी। तर्क करने के लिए श्रीमती जी सदैव प्रस्तुत रहती थीं। कोई बात ज़रा भी उनके विरोध में कही गई, बस झट बहस करने के लिए तैयार। बहस का अर्थ

श्रीमती जी यह समझती थीं कि मुँह बन्द न रहे—बात पर बात अवश्य कही जाय, चाहे तुकदार हो, चाहे बेतुकी। तुक न मिले तो क्या, बोझों तो मरेगा—यह श्रीमती जी का सिद्धान्त था।

पहले तो ससुराल वालों ने प्रियंवदा देवी का रूप-लावण्य देखकर तथा उनकी शिक्षा की बात जानकर अपने को, ऐसी बहू पाने के लिए, धन्य समझा था। परन्तु ज्यों-ज्यों बहूरानी के गुण प्रकट होने लगे, त्यों-त्यों ससुराल वालों का यह भ्रम दूर होने लगा।

एक दिन किसी बात पर चिढ़कर सास देवी ने कहा—पत्थर पड़े इस रूप और पढ़ाई पर, इससे तो कोई कुरूप और बे पढ़ी-लिखी आती तो लाख दर्जे अच्छी थी। किसी काम की तो होती। इन्हें तो दिन भर कङ्घी-चोटी और किताबों से ही छुट्टी नहीं मिलती।

प्रियंवदा देवी ने सास देवी की यह बात जो सुनी तो आग हो गईं। जो व्यक्ति नाक पर मक्खी भी न बैठने दे, उसकी शान में ऐसी बात! "मैं इस घर में एक क्षण भी न रहूँगी। मुझे अभी मेरे मायके भेज दो। न भेजोगे तो मैं स्वयम् चली जाऊँगी। वाह, मैं क्या किसी की लौंडी-बाँदी हूँ? लौंडी-बाँदी बनाकर रखना था, तो किसी गँवारिन से ब्याह किया होता! मेरे माँ-बाप ने हज़ारों रुपए खर्च करके मुझे पढ़ाया है, सो क्या इसलिए कि मैं यहाँ

चूल्हा-चौका करूँ? यह काम बावर्चियों का है, मैं बावर्चिन नहीं हूँ। इन इल्लिटरेट (निरक्षर) स्त्रियों में मेरी मिट्टी पलीद हो रही है। दे आर परफेक्ट फूल्स, दे डोण्ट नो हाऊ टू बिहेव। आई एम ए लेडी नॉट ए मेड-सर्वेण्ट।"

जब तक प्रियंवदा देवी हिन्दी बोलती रहीं, तब तक तो स्त्रियाँ चुपचाप सुनती रहीं, परन्तु जब उन्होंने अङ्गरेज़ी बोलना आरम्भ किया, तब सब खिलखिला कर हँस पड़ीं। स्त्रियों के हँसने से प्रियंवदा के और आग लगी। उन्होंने पैर पटक कर कहा—"मैं अब इस घर में नहीं रहूँगी, कदापि नहीं रहूँगी—चाहे जो कुछ हो जाय। मेरा इतना अपमान! ये सब मुझ पर हँसी हैं। मैं किसी से किस बात में कम हूँ। जिस बात में जो चाहे, मुक़ाबला कर ले। मैं सबको चैलेञ्ज (चुनौती) देती हूँ।" इस प्रकार बकती-झकती वह अपने कमरे में घुस गईं और भीतर से द्वार बन्द कर लिया। उस दिन उन्होंने भोजन भी नहीं किया, और किसी ने अधिक आग्रह भी न किया।

जिस समय यह दुर्घटना हुई, उस समय घर में न उनके पति थे और न श्वसुर। जब ये दोनों पिता-पुत्र बाहर से आए और सब वृत्तान्त सुना, तो इन दोनों को बड़ा दुख हुआ। पिता ने पुत्र से कहा—चन्दनप्रसाद, यह अच्छी बला पीछे लगी। हमने तो सोचा था कि पढ़ी-लिखी लड़की है, कुछ सलीक़ा होगा; घर की

शोभा बढ़ेगी ; पर यह तो महा निषिद्ध निकली। इस प्रकार तो इसका निबाह होना कठिन है। या तो तुम इसे समझा-बुझाकर ठीक बनाओ, और जो ऐसा न कर सको तो इसे इसके मायके जाकर पटक आओ। बालिश्त-भर की छोकरी और अपने आगे किसी को कुछ समझती ही नहीं।

चन्दनप्रसाद ने सिर झुका कर कहा—क्या कहूँ, मैं तो स्वयम् उससे बड़ा परेशान हूँ।

पिता ने कहा—परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं, इसे इसके मायके छोड़ आओ—तुम्हारा दूसरा विवाह हो जायगा। लड़कियों की कोई कमी है? इस-जैसी बहत्तर मिल जायँगी। जो कुछ थोड़ी-बहुत शिक्षा इसे मिली है, उससे इसका मस्तिष्क ख़राब हो गया है। इसे शिक्षा न दी जाती तो अच्छा था। शिक्षा से इसकी उन्नति होने के बजाय अवनति हुई है।

चन्दनप्रसाद ने इसका कोई उत्तर न दिया। वह चुपचाप अपने कमरे में आए और कुर्सी पर बैठ गए। बड़ी देर तक बैठे सोचते रहे, अन्त में कुछ सोच कर उठे और पत्नी के कमरे के द्वार पर पहुँचे। द्वार पर धक्का मारा तो उसे दूसरी ओर से बन्द पाया। उन्होंने द्वार भड़भड़ा कर कहा—खोलो। पहले तो इसका कोई फल न हुआ, परन्तु जब उन्होंने कई बार द्वार खड़खड़ाया तो

प्रियंवदा देवी ने उठ कर द्वार खोला। चन्दनप्रसाद ने पूछा—क्यों, आज यह क्या बात थी?

प्रियंवदा देवी ने उत्तर दिया—बात चाहे जो हो, पर अब मैं इस घर में नहीं रहूँगी।

चन्दनप्रसाद—सो तो हमें भली-भाँति विदित हो चुका है कि तुम्हारा यहाँ रहना कठिन है, परन्तु कुछ कारण भी तो मालूम हो!

प्रियंवदा—कारण क्या? कारण यही है कि इन अशिक्षिता स्त्रियों से मेरी नहीं पट सकती।

चन्दनप्रसाद—अशिक्षिता स्त्रियाँ! ठीक है, वे सब अशिक्षित हैं, पर आप कहाँ की बड़ी सुशिक्षिता हैं? केवल एस० एल० सी० पास कर लेने ही से आप अपने को सुशिक्षिता समझने लगीं? सुशिक्षा तो हम तब समझते, जब तुममें कुछ शऊर होता, नम्रता होती, छोटे-बड़े का ध्यान होता, दूसरों के प्रति प्रतिष्ठा तथा आदर का भाव होता, सुशीलता होती, सेवा-भाव होता। यह सब होता तब तो तुम्हें अपने को सुशिक्षिता समझने का पूरा अधिकार था। परन्तु ऐसी दशा में, जब कि तुम घोर अभिमानी—अभिमानी भी नहीं, मिथ्याभिमानी, अशिष्ट, कटुभाषिणी तथा स्वार्थपूर्ण हो, तब यह कैसे मान लिया जाय कि तुम सुशिक्षिता हो? केवल एस० एल० सी० पास कर लेने से क्या होता है? एस० एल० सी० तो आजकल

घसियारे भी मिल जायँगे। केवल साक्षर हो जाने का नाम सुशिक्षा नहीं है। सुशिक्षा तो कोई चीज़ ही दूसरी है। एक साधारण पढ़ा-लिखा आदमी भी सुशिक्षित कहला सकता है और एक बड़ा विद्वान् तथा पण्डित भी सुशिक्षित नहीं कहा जा सकता।

प्रियंवदा देवी बोलीं—ख़ैर, मैं बिलकुल गधी सही, मूर्ख सही; तुम ऐसी मूर्ख और गधी को अपने यहाँ क्यों रखते हो?

चन्दनप्रसाद—इसी आशा से रक्खे हुए थे कि कदाचित् तुममें कुछ मनुष्यत्व आ जाय।

प्रियंवदा—मैं किसी से दब कर नहीं रहूँगी, चाहे मनुष्यत्व आवे या न आवे।

चन्दनप्रसाद—दब कर न रहने से तुम्हारा मतलब क्या है? क्या तुम चाहती हो कि सब तुम्हारे चरणों पर लोटा करें।

प्रियंवदा—जो जिस हैसियत का है, वह उसी तरह रहे, तभी अच्छा लगता है। जिनको बात करने का सलीक़ा नहीं, वह मुझ पर हुक्म चलाना चाहती हैं। यह मैं कदापि नहीं सहूँगी। मैं सब से सब बातों में श्रेष्ठ हूँ, इस कारण मैं श्रेष्ठ बन कर ही रहूँगी।

चन्दनप्रसाद—तुम्हें श्रेष्ठता का प्रमाण-पत्र दिया किसने? यों तो एक गधा भी अपने को श्रेष्ठ समझता

है। श्रेष्ठ वही है, जिसे उसके इष्ट-मित्र, नाते-रिश्तेदार, अपने-पराए सब श्रेष्ठ कहें। तुम किस बात में श्रेष्ठ हो? तुम समझती होगी कि तुम रूपवान् हो, परन्तु तुम्हारे दुष्ट स्वभाव ने तुम्हारे इस रूप को कुरूपता में परिवर्त्तित कर दिया है। तुम इसे रूप समझती हो। ज़रा इस समय अपना मुख दर्पण में देखो, इसे देख कर घृणा उत्पन्न होती है। हर समय भौंहें चढ़ीं, मुँह सूजा हुआ, माथे पर बल पड़े हुए। बात करती हो तो जान पड़ता है, काटने दौड़ती हो; आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलती हैं, जिह्वा विष उगलता है। इसी का नाम सौन्दर्य है? यह सौन्दर्य नहीं है—यदि है भी तो एक राक्षसी का सौन्दर्य है, पिशाचिनी का रूप है। इस सौन्दर्य को देखकर भय उत्पन्न होता है, घृणा पैदा होती है। केवल गोरे होने तथा नख-शिख अच्छा होने ही से कोई सुन्दर नहीं बन जाता। यदि तुम्हारे मुख पर प्रत्येक समय मुस्कान रहती; जिससे बात करतीं, हँस कर बात करतीं; मधुर बोलतीं और नम्रतापूर्वक बोलतीं; आँखों में दूसरों के प्रति आदर, प्रतिष्ठा, प्रेम तथा स्नेह का भाव होता, तब तुम्हारा यह सौन्दर्य वास्तविक सौन्दर्य होता और इसमें दूसरों को मुग्ध करने की शक्ति होती। काम-काज तुम्हें कुछ आता नहीं, भोजन तुम नहीं पका सकतीं, सीना-पिरोना तुमसे नहीं होता—यद्यपि सीने-पिरोने में तुम अपने को अद्वितीय

समझती हो, परन्तु ऐसी विद्या किस काम की, जिससे कुछ लाभ न पहुँचे। यह तो तुम्हारी दशा है, फिर तुम न जानें किस बात में अपने को श्रेष्ठ समझती हो। हमारी माता तथा भौजाइयाँ यद्यपि शिक्षित नहीं हैं, परन्तु उनमें इतनी शक्ति है कि दूसरों को प्रसन्न कर सकें। तुम्हारे पास जो बैठता है, वही तुम्हारी अभिमानपूर्ण बातों तथा अशिष्ट व्यवहार से अप्रसन्न हो जाता है। ऐसी दशा में तुम्हें उनसे श्रेष्ठ कैसे मान लिया जाय? अपने आप मियाँ-मिट्ठू बनने से ही कोई श्रेष्ठ नहीं हो जाता।

प्रियंवदा जल-भुन कर बोली—हाँ-हाँ, मैं बड़ी खोटी हूँ, बड़ी नीच हूँ, मैं यह सब कुछ हूँ। मुझे तुम मेरे मायके छोड़ आओ, बस सारा झगड़ा समाप्त है। मैं यहाँ रहना ही नहीं चाहती।

चन्दनप्रसाद—तुम यहाँ रहना भी चाहो तो हम तुम्हारी-जैसी दुष्टा को रक्खें कब? अपने घर को जो नरक बनाना चाहे, वही तुम्हें रख सकता है। चलो उठो, मैं अभी तुम्हें तुम्हारे मायके भेजने को तैयार हूँ।

४

प्रियंवदा अपने मायके लौट आई। चन्दनप्रसाद के पिता ने प्रियंवदा के पिता को एक लम्बा पत्र लिखा। उसमें उन्होंने स्पष्ट लिख दिया कि वह प्रियंवदा के दुर्व्यवहार से छक गए हैं। अब वह उसे अपने यहाँ उस

समय तक रखने के लिए कदापि तैयार नहीं, जब तक उसका यह दुष्ट स्वभाव दूर न हो। इसके लिए वह एक वर्ष तक प्रतीक्षा करेंगे। एक वर्ष में यदि प्रियंवदा ठीक राह पर न आई, तो वह चन्दनप्रसाद का दूसरा विवाह कर देंगे।

प्रियंवदा के पिता ने अपनी पत्नी को पत्र सुना कर कहा—हम तो समझे थे कि यह बला दूर हो गई, पर यह तो फिर सिर पर आ पड़ी और पहले से अधिक भयानक होकर। अब क्या किया जाय?

माता दुखी होकर बोली—मैं क्या बताऊँ? मेरा तो इस लड़की ने कलेजा पका दिया। यह पैदा होते ही मर जाती तो अच्छा था।

पिता—आख़िर अब होना क्या चाहिए? समझा था कि ससुराल चली जायगी, फिर अपने से क्या, अपना जैसा करेगी, वैसा भुगतेगी। परन्तु वहाँ से भी निकाली गई। अब?

माता—अब क्या? जब तक निभेगा, निभाएँगे; न निभेगा तब देखा जायगा।

तीन-चार महीने तक तो प्रियंवदा देवी मायके में ठीक तरह से रहीं, परन्तु इसके पश्चात् उन्होंने पुनः ऊधम मचाना आरम्भ किया। इसका कारण यह था कि घर में उन्हें केवल रोटी-कपड़ा मिलता था। परन्तु उनका विता-

सता-प्रिय हृदय केवल रोटी-कपड़े से कब सन्तुष्ट हो सकता था? उन्हें अच्छे-अच्छे कपड़े, अच्छी-अच्छी शृङ्गार-सामग्री, बढ़िया जूते तथा लेवेण्डर और सेण्ट इत्यादि की आवश्यकता रहती थी। यह सब उन्हें मिलता नहीं था। अतएव इसके लिए उन्होंने लड़ना-झगड़ना आरम्भ किया। जब यह दशा हुई, तो उनके पिता ने एक दिन उनसे कहा—देखो प्रियंवदा, तुमने केवल अपने दुष्ट-स्वभाव से अपनी उस ससुराल को लात मार दी, जहाँ तुम्हें ये सब चीज़ें मिल सकती थीं। मैं तुम्हें ये चीज़ें नहीं दे सकता। मैं तुम्हें केवल साधारण भोजन-वस्त्र दे सकता हूँ। यदि तुम्हें स्वीकार हो तब तो तुम्हारा निर्वाह हो सकता है, अन्यथा तुम्हारा निर्वाह होना कठिन है।

प्रियंवदा ने कहा—तो मैं यहाँ भी नहीं रहूँगी।

पिता ने पूछा—यहाँ न रहेगी तो जायगी कहाँ?

प्रियंवदा—मैं स्कूल में नौकरी करके अपना गुज़र कर लूँगी।

यह उत्तर सुनकर पिता सन्नाटे में आ गए। कुछ देर तक मौन बैठे रहे। अन्त में बोले—अच्छी बात है, यदि तेरी ऐसी ही इच्छा है तो तू यह भी करके देख ले—काहे को अरमान रह जाय। देखें, तू नौकरी करके कौन सिंहासन प्राप्त कर लेती है।

प्रियंवदा—सिंहासन नहीं प्राप्त कर लूँगी, पर कम से कम स्वतन्त्र तो रहूँगी।

पिता—अच्छी बात है, ख़ूब स्वतन्त्र होकर देख ले।

माता ने प्रियंवदा को बहुत-कुछ समझाया कि तेरे नौकरी करने से हमारी बदनामी होगी, सब लोग हँसेंगे कि अमुक की पुत्री नौकरी करती है।

प्रियंवदा ने कहा—नौकरी करना कोई पाप तो है नहीं, जो बदनामी होगी।

माता—अरी, मैं तेरी बुद्धि को क्या कहूँ? मैं तो समझती थी कि पढ़ने-लिखने से तुझमें कुछ बुद्धि आएगी, पर बुद्धि पर तो एकदम पानी पड़ गया। ऐसी ससुराल पाकर तू वहाँ न टिक सकी—वहाँ से भी निकाल बाहर की गई। तेरी-जैसी अभागी संसार में और कौन है?

प्रियंवदा—मैं अभागी काहे को, अभागे हों मेरे दुश्मन! मैं ससुराल में किसी की लौंडी-बाँदी होकर नहीं रह सकती। मैंने इतना पढ़ा-लिखा है तो क्या लौंडी-बाँदी बनने के लिए? मैं स्वयं एक दासी रख कर उसे खिला सकती हूँ। चालीस-पचास रुपए की नौकरी कर लूँगी। मुझे कमी किस बात की है, मैं काहे को किसी की बातें सहूँ।

अन्त में माता भी हार मान कर बोली—अच्छी बात है, कर नौकरी, तू ऐसी कुबुद्धि न होती तो आज यह दिन काहे को देखना पड़ता?

प्रियंवदा ने स्वयम् ही दौड़-धूप करके उसी स्कूल में, जिसमें कि उसने शिक्षा पाई थी, तीस रुपए महीने की नौकरी प्राप्त कर ली।

कुछ दिनों तो प्रियंवदा अपने माता-पिता के पास ही रही। रोटी-कपड़ा उनके मत्थे था, आप जो तीस रुपए पाती थी, उसे अपनी विलासिता की सामग्री में व्यय कर देती थी। परन्तु अब उसका व्यवहार और भी अधिक दूषित हो गया था। उसे यह अभिमान था कि मैं अब अध्यापिका हूँ, कमाऊ हूँ; इसलिए माता-पिता को मेरा आदर करना चाहिए। परन्तु जब उसे माता-पिता की ओर से आदर के स्थान में उदासीनता मिली तो वह बहुत ही कुण्ठित हुई। उसने निश्चय कर लिया कि अब अलग रहना चाहिए।

एक दिन उसने माता से कहा—मैं अब अलग रहूँगी। तुम सब मेरा निरादर करते हो, मैं यह निरादर सहन नहीं कर सकती। और क्यों सहन करूँ? मैं जब स्वयम् कमाकर खा सकती हूँ, तो दूसरों के सिर पर पड़ कर निरादर क्यों सहूँ?

माता ने कहा—जो तेरा जी चाहे, कर। तुझसे बहस करना, तुझे समझाना-बुझाना व्यर्थ है। करेगी तू वही, जो तेरे मन में होगा।

माता के इस उत्तर से प्रियंवदा ने समझा कि माता

भी उसका अलग हो जाना स्वीकार करती है—केवल स्वीकार ही नहीं, उनकी यह हार्दिक इच्छा है कि वह अलग रहे। यह अर्थ लगाकर प्रियंवदा ने एक मकान किराए पर ले लिया और उसमें रहने लगी। उसके पिता ने भी इसमें कुछ बाधा न पहुँचाई। वह तो ईश्वर से चाहते थे कि यह काँटा किसी प्रकार दूर हो।

प्रियंवदा को अध्यापिकी करते दो वर्ष व्यतीत हो गए। तीस रुपए मासिक में पाँच रुपए तो मकान का किराया निकल जाता था और पाँच रुपए मासिक एक दासी का वेतन। वह दासी दोनों समय एक घण्टे के लिए आती थी और आवश्यक कार्य करके चली जाती थी। इस प्रकार प्रियंवदा को केवल बीस रुपए मासिक बचते थे। बीस रुपयों में केवल साधारण भोजन-वस्त्र का ही ख़र्च चलता था। अभाव का नाम ही आकांक्षा तथा अभिलाषा है। मनुष्य सदैव उस वस्तु की आकांक्षा करता है, जिसका उसके पास अभाव होता है। अतएव मनुष्य उसी वस्तु का आदर भी करता है, जो उसे प्राप्त नहीं। प्राप्त-वस्तु बहुधा अप्राप्य वस्तु के सामने कम आदर पाती है। प्रियंवदा को जब तक सब बातों का सुख रहा तब तक उसने उस सुख का आदर नहीं किया—उसका मूल्य नहीं समझा। वह उसे एक साधारण बात समझती

रही। परन्तु अब उसे उसका मूल्य ज्ञात हुआ, तब उसकी आँखें खुलीं। अब जब वह रात में अकेली लेटती है तो उसे वह दिन याद आते हैं, जब उसकी माता उसके पास लेटा करती थी और दोनों माता-पुत्री अनेक प्रकार के वार्त्तालाप करती रहती थीं। और वह समय भी स्मरण हो आता है, जब उसके पति महाशय और वह प्रायः आधी रात तक ताश तथा शतरञ्ज खेलते रहते थे। अब वह अकेली भोजन करती है और अपने हाथ से पकाती है। एक समय वह भी था, जब उसकी माता उसे सामने बैठा कर खिलाया करती थी, और वह दिन भी, जब वह और उसकी सास तथा जेठानी सब एक स्थान पर बैठ कर भोजन करती थीं। एक दिन वह था जब ज़रा-सा सिर दुखने पर भी घर भर उसकी सेवा-शुश्रूषा में लग जाता था, और एक दिन आज है कि तीन-तीन दिन तक ज्वर में पड़ी रहती है और कोई पानी देने वाला भी नहीं। एक दिन वह था, जब दिन भर शृङ्गार करने तथा दर्पण देखने में व्यतीत हो जाता था और एक दिन आज है कि कई-कई दिन तक सिर में तेल डालने का भी अवकाश नहीं मिलता। परन्तु अब पश्चात्ताप करने से होता क्या है? वह इतनी दूर चली आई कि जहाँ से लौटना असम्भव है। उसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया—वहाँ का द्वार इस प्रकार बन्द होगया, माता-

पिता के पास जाय तो क्या मुँह लेकर? सम्भव है, वह उसे अपने यहाँ रख लें; परन्तु परिणाम? चुपचाप एक कोने में पड़ी रहे। प्रियंवदा का सारा अभिमान, समस्त दर्प चूर्ण हो गया। अभिमान तथा दर्प के कारण पहले उसके हृदय में किसी को स्थान नहीं मिलता था—कोई अन्य आकांक्षा स्थान नहीं पाती थी। अभिमान के नष्ट होते ही संसार-भर की अभिलाषाएँ उत्पन्न हो उठीं। अब उसे पति का, सन्तान का, अच्छे भोजन का, वस्त्र का, निश्चिन्तता का—सबका अभाव अनुभव होने लगा। परन्तु अब क्या होता है? जिन चीज़ों का उसने तिरस्कार किया, वे अब उसे कहाँ प्राप्त हो सकती हैं?

प्रियंवदा क्लास में बैठी पढ़ा रही थी। उसी समय उसकी क्लास के सामने एक गाड़ी आकर ठहरी। गाड़ी में से एक महिला उतरी। महिला अच्छे वस्त्रों तथा आभूषणों से लदी थी। एक तीन वर्ष का सुन्दर बालक साथ था—वह भी सुन्दर कपड़े पहने था। एक दासी भी साथ थी। महिला के मुख पर प्रसन्नता और आनन्द की कान्ति थी, जिसके कारण उसका मुख दमदमा रहा था। उसने मुस्करा कर अपनी दासी से कहा—चन्दो, यही स्कूल है, इसी में मैं पढ़ी हूँ।

यह कहती हुई वह प्रियंवदा की क्लास में घुस

आई। उसे देखते ही प्रियंवदा के मुख से निकला—मनोरमा!

मनोरमा ने आश्चर्य से प्रियंवदा की ओर देख कर पूछा—प्रियंवदा तुम यहीं हो! मुझे आशा नहीं थी कि तुमसे भेंट होगी।

प्रियंवदा ने सिर झुका कर कहा—मैं यहाँ अध्यापिका हूँ।

मनोरमा—अच्छा! यह क्यों? विवाह नहीं किया क्या?

प्रियंवदा ने सिर झुका लिया। उसके नेत्रों में आँसू छलछला आए। उसने कहा—सब बताऊँगी, शाम को तुम्हारे घर आऊँगी। ससुराल से कब आईं?

मनोरमा—कल आई थी। मैंने सोचा, ज़रा अपना स्कूल देख लूँ और गुरु-माँ के दर्शन कर लूँ—इसलिए आई हूँ।

प्रियंवदा—शाम को घर पर मिलोगी न?

मनोरमा—हाँ-हाँ!

प्रियंवदा—अच्छी बात है—आऊँगी।

मनोरमा ने अपने पुत्र को गोद में लेकर उसका गाल चूमते हुए कहा—यह तुम्हारा भानजा है। (लड़के से) मुन्ने, मौसी के हाथ जोड़—यह तेरी मौसी हैं।

लड़के ने अपने नन्हें-नन्हें हाथ उठाए।

प्रियंवदा ने कहा—जीता रह, बड़ा हो।

मनोरमा—अच्छा, ज़रा गुरु-माँ से मिल आऊँ।

प्रियंवदा—मिल आओ।

मनोरमा बालक को लिए दूसरी ओर चली गई। प्रियंवदा ने उसकी ओर जो दृष्टि डाली, उस दृष्टि से ईर्ष्या की धारा बह रही थी।

प्रायश्चित्त

प्रायश्चित्त

पण्डित भिखारीलाल के द्वार पर आज बड़ी धूमधाम है। अनेक प्रकार के बाजे तथा बैण्ड इत्यादि बज रहे हैं। ताँगों, गाड़ियों तथा मोटरों का ताँता बँधा हुआ है। इस धूमधाम का कारण यह है कि आज पण्डित भिखारीलाल के इकलौते पुत्र बाँकेविहारी लाल अपनी पत्नी का गौना लाए हैं।

पण्डित भिखारीलाल नगर के प्रतिष्ठित रईसों में हैं। आपके पास प्रचुर सम्पत्ति है। पण्डित जी की वयस इस समय ४५ वर्ष के लगभग है। पण्डित जी के बाँकेविहारी के अतिरिक्त और कोई सन्तान नहीं है। अतएव पण्डित जी अपने पुत्र को प्राणों से अधिक प्यार करते हैं।

बाँकेविहारी का विवाह उस समय हुआ था, जब उसकी वयस केवल दस वर्ष की थी। इस समय उसकी वयस बीस वर्ष के लगभग है। पण्डित जी ने प्रण किया था कि वह बाँकेविहारी की पत्नी का गौना उस समय लेंगे, जब वह बी० ए० में पहुँच जायगा। इस वर्ष बाँकेविहारी बी० ए० की अन्तिम कक्षा में पहुँच गया है, अत-

एव पण्डित जी ने बड़ी धूमधाम से गौने की रस्म को सम्पूर्ण किया।

आज पण्डित जी और उनकी अर्द्धाङ्गिनी के हर्ष तथा आनन्द का ठिकाना नहीं। वर्षों की दबी हुई अभिलाषा आज पूरी हुई, मुद्दतों के अरमान आज खुल कर निकले। पण्डित जी ने इसके उपलक्ष में अपने इष्ट-मित्रों को अभूत-पूर्व भोज दिया। यद्यपि उन्होंने विवाह में भी यथेष्ट धूमधाम की थी, परन्तु उन लोगों का, जिन्होंने विवाह भी देखा था, कहना है कि ऐसी शान की दावत विवाह में भी नहीं हुई थी। परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी बाँकेविहारी के मुख पर आनन्द की रेखा नहीं। इस बात को बाँकेविहारी के दो-चार मित्रों के अतिरिक्त और कोई न ताड़ सका। भोज के पश्चात् बाँकेविहारी के विशाल तथा सुसज्जित कमरे में उनकी मित्र-मण्डली एकत्र हुई। एक ने बाँकेविहारी से कहा—मित्र, हमारी ओर से तुम्हें बधाई है।

बाँकेविहारी ने शुष्क मुस्कान के साथ कहा—इस बधाई के लिए मेरी ओर से आपको धन्यवाद है।

दूसरा बोल उठा—चाँद-सूरज की जोड़ी बरक़रार! सलामतियाँ रहें!

बाँकेविहारी ने हँसते हुए कहा—साईं बाबा, आगे देखो, हाथ ख़ाली नहीं है।

मित्रों ने इस पर अट्टहास किया। एक बोला—इस घनश्याम को कभी बात करने का सलीक़ा न आएगा।

घनश्याम ने अप्रतिभ होकर कहा—क्यों जनाब, मैंने कौन सी ऐसी बात कही? मैंने तो केवल आशीर्वाद ही दिया है।

इस पर पुनः सब हँस पड़े। एक बोला—आप आशीर्वाद देने के अधिकारी कब से हुए? ईश्वर झूठ न बुलावे, आप बाँकेविहारी से साल-छः महीने छोटे ही होंगे।

दूसरा—जी हाँ, और आशीर्वाद भी इस तरह देते हैं, मानों भीख माँगने निकले हैं।

इसी प्रकार थोड़ी देर तक हँसी-मज़ाक़ होता रहा। मित्र-मण्डली में से एक ने दूसरे के कान में कहा—यार, बाँकेविहारी के चेहरे पर कुछ उदासी है। इसका क्या कारण है? आज तो वह दिन है कि इनका चेहरा ख़ुशी के मारे दमकना चाहिए। जान पड़ता है, पत्नी इन्हें पसन्द नहीं आई।

"यही बात होगी, इसके अतिरिक्त और कोई कारण हो ही नहीं सकता।"

"परन्तु हमने तो सुना है कि इनकी पत्नी बहुत रूपवती है।"

"रूपवती होते हुए भी नापसन्द हो सकती है। अपनी-अपनी रुचि ही तो है।"

"इसका कारण इनसे पूछना तो चाहिए।"

"इस समय मौक़ा नहीं है, फिर किसी समय पूछेंगे।"

इसी समय एक ने कमरे में लगे हुए क्लॉक की ओर देख कर कहा—अरे यारो, नौ बज रहे हैं—अब इनका पिण्ड छोड़ो, खाना खा चुके—अब क्यों धरना दिए बैठे हो। आज कौन दिन है, यह भी पता है?

दूसरा बोला—हाँ, बात तो ठीक है। अब अपने-अपने घर चलो। आज इनकी सोहाग-रात है—बेचारे बेचैन होंगे।

इतना सुनते ही सब उठ खड़े हुए। बाँकेविहारी बोले—बैठो, अभी कौन जल्दी है।

एक बोला—हाँ, ऊपर से यह कह रहे हो, मन में सोच रहे होगे कि ये कम्बख़्त किसी तरह टलें।

बाँकेविहारी—कदापि नहीं, ऐसा कभी मत सोचना, मुझे सच्चा आनन्द आप लोगों में बैठ कर ही मिलता है।

"हाँ इस समय सम्भव है, आपकी भावना ऐसी ही हो; परन्तु कल भी यह भावना रहेगी, इसमें हम लोगों को सन्देह है।"

बाँकेविहारी ने मुस्करा कर कहा—कल भी कुछ दूर नहीं है। देख लेना।

"हाँ, कहते तो ठीक हो। कल का दिन तो बहुत ही निकट है। आज की रात तो आपको अत्यन्त छोटी प्रतीत होगी।"

एक क्षण के लिए बाँकेविहारी का मुख मलीन हो गया, परन्तु तुरन्त ही वह मुस्करा कर बोले—बड़े शरीर हो। प्रत्येक बात के अर्थ लगा लेते हो।

"मनुष्य संसार में जन्म लेकर चार चीज़ों के फेर में रहता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। सो भाई साहब, हम लोग इस समय 'अर्थ' के चक्कर में हैं और तुम—अर्थ के आगे क्या है—ज़रा बताना तो।"

बाँकेविहारी—अच्छा, अब आप लोग तशरीफ़ ले जायँ—बहुत हो चुका।

"देखा, आख़िर मन की बात उगल ही दी। चलो यारो, अब तो साफ़-साफ़ कह दिया गया। हाँ, अगर धक्के खाकर निकलने की इच्छा हो तो बात दूसरी है।"

इसके पश्चात् सब लोग बिदा हुए और बाँकेविहारी अकेले रह गए।

२

उपर्युक्त घटना को तीन वर्ष व्यतीत हो गए। दोपहर का समय है, बाँकेविहारी लाल की माता खुली छत पर धूप में बैठी हैं। उनके समीप उनकी तीन-चार सखी-सहेलियाँ बैठी हैं। इधर-उधर की गप-शप हो रही है। हठात् एक स्त्री बोल उठी—हाँ, यह तो बताओ, बहू के कुछ लड़का-बाला होने वाला है?

बाँकेविहारी की माता एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोलीं—न कहीं, मुझे तो जान पड़ता है, बहू के लड़का होगा ही नहीं। यह सुनते ही सबने एक साथ मुँह फाड़ दिया और बोलीं—क्या ऐसी बात है?

"मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है। तीन बरस हो गए, यह तो सोचो।"

"हाँ, यही तो मैं सोचती हूँ। तीन बरस में तो हमारे दो लड़के हो गए थे।"

"यह बाँकेविहारी गौना होने के साल भर पीछे ही हुआ था।"

"हाँ, यह तो होता ही है। एकाध बरस बीतते तो देखा है, पर ऐसा कहीं नहीं देखा कि तीन-तीन बरस बीत जायँ और कुछ न हो।"

"मुझे तो बहू बाँझ मालूम पड़ती है।"

"हाय, भगवान् न करे! ऐसी असुभ बात मुँह से न निकालो।"

"असुभ हो चाहे सुभ, जो सच्ची बात है वह तो कहनी ही पड़ेगी।"

"हे भगवान्, जो यह सच्ची बात है तो फिर क्या होगा?"

"बाँके का दूसरा ब्याह होगा—और क्या होगा। मैं

साल-छः महीने और देखती हूँ—इसके उपरान्त दूसरा ब्याह करूँगी।"

"हाँ बहू, जब ऐसी बात है तो करना ही पड़ेगा। औलाद ही के लिए तो सब कुछ किया जाता है।"

"यही बात है। वैसे तो बहू में कोई ऐब नहीं, रङ्ग-रूप अच्छा है, पढ़ी-लिखी भी है, घर-गृहस्थी का काम भी कर लेती है, पर यह बड़ा भारी ऐब है।"

"अरे यह तो ऐसा ऐब है कि सारे गुनों पर पानी फेर देता है। बताओ जब लड़का ही न होगा तो × ×।"

"राम! राम! तब किस काम की—वह चाहे सोने की हो।"

"और ऊपर से देखने में कोई रोग नहीं, दोख नहीं। महीना भी ठीक समय पर हो जाता है—सारी बातें हैं, पर लड़का नहीं होता।"

"ऐसी औरतें होती हैं—मेरी मामी में भी यही बात थी। उनके भी सब बातें ठीक थीं, पर बाल-बच्चा नहीं होता था। डॉक्टरों को दिखाया, उन्होंने भी कोई ऐब नहीं बताया। आख़िर जब बहुत मजबूर हो गए तो उन्होंने दूसरा ब्याह किया।"

"तो इस दूसरी से कोई बाल-बच्चा हुआ?

"अभी ब्याह हुए दिन ही कितने हुए—छः महीने तो हुए ही हैं।"

बाँकेविहारी की माता 'हूँ' कह कर मौन हो गई। थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् उन्होंने पुनः सिर उठा कर कहा—हमने भी अपनी बहू को एक मेम को दिखाया था। उसने भी कोई बात नहीं बताई। यही कहा कि पेट में कोई गाँठ-वाँठ नहीं है, न महीने का कोई दोस है। इसी-लिए मैं अभी चुप बैठी हूँ कि सायत साल-छः महीने में हो जाय। बाजी औरतों के देर में होता है।

"हाँ होता है। अच्छी बात है, साल भर और देख लो।"

"बड़ी अभिलाख थी कि बहू आवेगी, पोता होगा, पर वह सब कुछ भी न हुआ।"

"सो तो होगा ही, राम जी बाँके को चिरञ्जीव रक्खें। इससे न होगा दूसरी से होगा। पर बहू, मेरी एक बात मानना, अधिक दिन न देखना, साल भर में कुछ जान न पड़े तो ब्याह कर देना, काहे से कि तुम्हारी भी और उमर हो गई, नाती-पोतों का सुख देखने की तो यही उमर है।"

"हाँ और क्या, साल दो साल में हो जाय तो यह आस भी रहेगी कि पोते का सादी-ब्याह भी देख लूँगी और जो चार-छः बरस न हुआ तो फिर इसकी भी उम्मीद न रहेगी—मैं कुछ जनम भर तो बैठी न रहूँगी। चालीस बरस की उमर तो हो ही गई, बहुत जिऊँगी तो दस-बारह बरस और जिऊँगी।"

"अधिक उमर हो. जाने में नाती-पोतों का सुख देखने को नहीं मिलता। हमारे पड़ोस में एक कायस्थ रहते हैं। उनके लड़के के लड़का हुआ। उनकी उमर पचास के क़रीब थी। लड़का होने के दो बरस बाद चल बसे—बेचारे पोते का सुख न देख पाए। तो बहू, ऐसा हुआ भी तो किस काम का। होना तो वही है कि उसका सुख देखो, अपने सामने ब्याह-सादी करो और भगवान् की दया हो तो पड़पोते का मुँह भी देख लो—कोई बड़ी बात थोड़े ही है; पर यह तभी हो सकता है जब सब काम बखत पर होते चले जायँ। बखत पिछड़ जाने से फिर यह सब कुछ न हो सकेगा।"

बाँकेबिहारी की माता के हृदय पर इस "बखत पर सब काम" होने की बात का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनकी समझ में भी यह बात आगई कि वास्तव में बखत पर सब काम होंगे तभी उन्हें नाती-पोतों का सुख प्राप्त होगा।

बखत पर सब काम होने का अर्थ उनकी समझ में यह था कि जब वह चाहें तब पोता हो जाय और जब उनकी इच्छा हो तब पड़पोता अवतार धारण कर ले। यदि उनकी कार्य-सूची के अनुसार पोते-पड़पोते नहीं होते तो सब काम बे-बखत होना समझा जायगा। अब उनके पेट में और खलबली मची; क्योंकि पहले उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया था कि जितनी ही जल्दी पोता होगा

उतनी ही शीघ्र पड़पोता का मुख देखने की सम्भावना रहेगी।

अब आज से उन्हें एक-एक दिन एक-एक वर्ष के समान प्रतीत होने लगा।

३

देखते-देखते दस मास और व्यतीत होगए। ये दस मास बाँकेबिहारी की माता ने कैसे व्यतीत किए, यह बात या तो संसार में वह जानती हैं या फिर ईश्वर। हम केवल इतना कह सकते हैं कि प्रत्येक मास वह यह आशा करती थीं कि इस महीने से बहू का मासिक धर्म बन्द हो जायगा। परन्तु जब महीने के अन्त में बहू का रजोदर्शन हो जाता, तो वह निराशा के गर्त्त में जा पड़ती थीं। उस समय उन्हें बहू पर बड़ा क्रोध आता था कि इसे क्यों मासिक धर्म हो जाता है। उन्हें कभी-कभी यह सन्देह भी होने लगता था कि कहीं बहू उन्हें चिढ़ाने के लिए तो मासिक धर्म नहीं बुला लेती। अपना यह सन्देह उन्होंने अपनी एक सखी पर प्रकट भी किया था। उन्होंने कहा—कहीं ऐसा तो नहीं कि बहू कोई दवा खा लेती हो जिससे गर्भ न रहे।

सखी ने आँखें विस्फारित करके कहा—अरे नहीं, ऐसा भला क्या करती होगी—क्या उसे लड़का होने का चाव न होगा?

"अरे आजकल की लड़कियाँ बड़ी छत्तीसी होती हैं। सास-ससुर को दुख देने के लिए और इसलिए भी कि लड़का होने में कष्ट होगा, लड़के को पालना-पोसना पड़ेगा, खसम के पास उठने-बैठने की दिक़्क़त रहेगी, बनाव-सिंगार में कमी पड़ जायगी—ऐसा कर लेती हैं।"

"हाँ, यह भी तुम्हारा कहना ठीक है—ऐसा होता हो तो क्या ताज्जुब है। सुना है, मेमें ऐसा ही करती हैं। वह इसलिए लड़का नहीं पैदा करतीं कि लड़का होने से उनका रूप और जोबन बिगड़ जायगा।"

"यही तो मैं भी कहती हूँ और मैं कहती क्या हूँ। ज़रूर ऐसी ही बात है, नहीं तो जब कोई रोग-दोख नहीं है, तब फिर लड़का क्यों न हो?"

"ठीक बात है।"

इस वार्त्तालाप के पश्चात् उनकी यह धारणा हो गई कि या तो बहू निपट वन्ध्या है और या फिर वह कोई दवा खा लेती है जिससे गर्भ नहीं रहता। ये दोनों बातें ऐसी थीं, जिससे उन्हें बहू पर क्रोध आता था। यदि वह बाँझ है तो यह भी क्रोध उत्पन्न करने वाली बात है और यदि वह जान करके गर्भ धारण नहीं करती तो यह ऐसा अपराध है जो सर्वथा अक्षम्य है।

अन्त में जब उनकी नियुक्त की हुई साल भर की

मियाद के दसवें मास में भी उचित समय पर बहू ने अपने मासिक धर्म से सास को ख़तरे का सिगनल दिखाया तो सास देवी का धैर्य छूट गया। उन्होंने दाँत पीस कर कहा—यह सारी बदमाशी इसी छुत्तीसी की है। अच्छा रह तो जा, मैंने भी तुझे जन्म भर न रुलाया तो मेरा नाम नहीं।

उसी दिन उन्होंने रात में अपने पति से सारा कच्चा चिट्ठा जड़ा और उनसे यह प्रार्थना की कि वह शीघ्राति-शीघ्र लड़के का दूसरा ब्याह करें।

पं० भिखारीलाल बोले—पर पहले इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि बहू बाँझ है।

पत्नी ने कहा—इसका निश्चय मैंने कर लिया है।

"कैसे ?"

"बाँझ न होती तो अब तक लड़का ज़रूर हो जाता।"

"यह तो कोई बात नहीं। ऐसा भी होता है कि स्त्रियाँ बाँझ नहीं होतीं, परन्तु फिर भी उनके लड़के बहुत देर में होते हैं।"

"तो उनको कोई रोग होता है। उनके महीने में गड़बड़ी होती है। इसका तो महीना-वहीना सब ठीक होता है।"

"तो अभी जल्दी क्या है ? साल दो साल और देख लो।"

"हे भगवान्! अब क्या सारी उमर यही देखते बीतेगी। आजकल ज़िन्दगी का कोई ठिकाना नहीं है। इससे सब काम बखत पर होना चाहिए। चार-छः बरस बाद हुआ भी तो क्या होगा। कब वह बड़ा होगा, कब उसका ब्याह होगा। हम तुम कुछ अमृत पीकर तो बैठे नहीं हैं।"

"ओफ़ ओह! तुम तो बड़ा लम्बा-चौड़ा हिसाब लगाए बैठी हो।"

"मैं क्या लगाए बैठी हूँ, सभी लगाते हैं। ऐसा कौन है जो पोतों-पड़पोतों का मुँह देखना न चाहेगा।"

"यह तो सब ठीक है; पर यह अपने वश की बात थोड़े ही है।"

"है क्यों नहीं? जो ढङ्ग से काम करो तो बस की बात है, बेढङ्गेपन से करो तो नहीं है।"

"एक बेर बहू का इलाज-बिलाज करके तो देख लो।"

"इलाज होगा काहे का—उसे कोई रोग हो तो उसका इलाज किया जाय। जब कोई रोग ही नहीं, तो इलाज किस बात का हो।"

"सोच लो। बहू भी कोई मामूली घर की लड़की नहीं है—वे भी बड़े आदमी हैं, वे दूसरा ब्याह करने देंगे?"

"क्यों न करने देंगे? जब उनकी लड़की किसी काम

की ही नहीं है तो फिर क्या किया जाय। ब्याह ख़ाली सूरत देखने के लिए तो किया ही नहीं जाता—ब्याह तो लड़के-बाले होने के लिए ही किया जाता है।"

"यह सब ठीक है, परन्तु पहले इसका पूर्णरूप से निश्चय हो जाना चाहिए कि वह वन्ध्या है।"

"अब और कैसे निश्चय होगा। बाँझ न होती तो अब तक कम से कम दो बच्चे हो गए होते।"

"हाँ, यह तो ठीक है।"

"तो बस फिर अब देखना-सुनना क्या है?"

"अच्छी बात है—सोचूँगा।"

"सोचना-वोचना अब कुछ नहीं, कहीं ब्याह की बातचीत लगाओ।"

इस प्रकार श्रीमती जी ने पति को पुत्र का दूसरा विवाह करने के लिए उद्यत कर लिया।

पण्डित जी ने सोचा कि कहीं दूसरी जगह विवाह की बातचीत लगाने के पहले अपने वर्तमान समधी को सूचना दे देना चाहिए। अतएव उन्होंने उसी दिन उन्हें एक पत्र लिखा:—

"बन्धुवर!

मुझे आपको यह सूचना देते हुए बहुत ही दुख होता है कि आपकी कन्या वन्ध्या प्रमाणित हुई है। ऐसी दशा में, मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं अपने लड़के का दूसरा

विवाह कर लूँ। आप जानते हैं कि विवाह का मुख्य उद्देश सन्तानोत्पत्ति है—अतएव सन्तानोत्पत्ति के लिए दूसरा विवाह करना अत्यन्त आवश्यक है। आशा है, आप इस बात को दृष्टि में रख कर हमारे इस कार्य को अनुचित न समझेंगे।

आपका,

भिखारीलाल"

यह पत्र भेजने के चार दिन पश्चात् ही बाँकेविहारी का साला अपने पिता का एक पत्र लिए हुए आ पहुँचा। भिखारीलाल ने पत्र पढ़ा। वह इस प्रकार था:—

"प्रिय पण्डित जी, सादर नमस्कार!

आपका पत्र मिला। पढ़ कर बड़ा ही आश्चर्य और दुख हुआ। यदि वास्तव में वैसी बात है, जैसा आपने लिखा है, तब तो हमें भी यह कहना पड़ेगा कि आप अपने लड़के का दूसरा विवाह अवश्य कर लें; परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता कि मेरी लड़की वन्ध्या है। अतएव आप उसे मेरे यहाँ भेजने की कृपा करें। एक बेर मैं उसकी परीक्षा कराके अपनी तुष्टि कर लूँ, तदुपरान्त आपको लड़के का दूसरा विवाह करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। विधना के विधान को कौन मेट सकता है?

आपका,

........."

भिखारीलाल ने बहू को उसके भाई के साथ भेज दिया।

४

बाँकेबिहारी की पत्नी को अपने मायके गए हुए एक मास व्यतीत हो गया। इधर पण्डित भिखारीलाल बाँके-बिहारी का दूसरा विवाह करने के लिए इधर-उधर बात-चीत करने लगे। क्रमशः यह समाचार बाँकेबिहारी को भी मिला कि उसके पिता उसका दूसरा विवाह करने की चेष्टा में हैं। अतएव वह उसी दिन पिता से मिल कर बोला—पिता जी, मैंने सुना है आप मेरा दूसरा विवाह करने की बात सोच रहे हैं?

"हाँ, सोच तो रहा हूँ।"

"क्यों?"

"इसलिए कि तेरी बहू वन्ध्या है।"

"वन्ध्या है?"

"हाँ!"

"यह आपको कैसे मालूम हुआ?"

"किसी भी तरह मालूम हुआ हो, पर बात ठीक है।"

"वन्ध्या है तो हुआ करे।"

"तो मेरा वंश कैसे चलेगा?"

बाँकेबिहारी यह बात सुन कर थोड़ी देर तक मौन

रहा। तदुपरान्त बोला—परन्तु मैं तो विवाह करना नहीं चाहता।

"तेरे न चाहने से क्या होगा ? होगा तो वही जो मैं चाहूँगा।"

"यदि मैं विवाह न करूँ तो ?"

"यदि तुझे मेरे यहाँ रहना है तो तुझे विवाह करना पड़ेगा।"

"ऐसी बात है ?"

"हाँ, ऐसी बात है।"

"अच्छी बात है, जो आपकी इच्छा हो, कीजिए।"

यह कह कर बाँकेविहारी पिता के सामने से चला गया।

दूसरे दिन शाम को नौकर ने पण्डित भिखारीलाल को एक बन्द लिफ़ाफ़ा लाकर दिया। पण्डित जी ने पूछा—किसने दिया है ?

नौकर ने कहा—छोटे बाबू ने।

"वह कहाँ हैं ?"

"अपने कमरे में बैठे हैं।"

'हूँ' कह कर पण्डित जी ने लिफ़ाफ़ा खोला। पत्र इस प्रकार था :—

"पूज्य पिता जी !

आप समझते हैं कि मेरी पत्नी में कोई दोष है, इसलिए

उसके सन्तान नहीं होती। परन्तु वास्तव में दोष उसमें नहीं मुझमें है। मैं इस योग्य ही नहीं हूँ कि सन्तान उत्पन्न कर सकूँ। सन्तान उत्पन्न करना तो दूर की बात है, मैं इस योग्य भी नहीं हूँ कि स्त्री के पास जा सकूँ। कदाचित् आप इसका कारण पूछेंगे। कारण वही है, जो बहुधा हुआ करता है। मैंने अपने हाथों ही अपना सत्यानाश किया है। मैं स्कूल तथा कॉलेज में ऐसे लड़के की सङ्गत में फँस गया जो स्वयम् तो नष्ट होते ही हैं, अपने मित्रों को भी नष्ट करते हैं। उसके परिणाम-स्वरूप मैं बिलकुल निकम्मा हो गया। गौने के पूर्व ही मेरा सर्वनाश हो चुका था। सुहागरात को मैंने अपनी पत्नी से अपने सिर पर हाथ रखाकर इस बात की शपथ कराई थी कि वह मेरी इस अशक्तता का ज़िक्र किसी से न करे। उस बेचारी ने उसे पूर्णतया निबाहा। आज पाँच वर्ष के लगभग हो गए—उसने किसी से भी यह बात नहीं कही। यदि वह कहती तो कम से कम वह बात माता जी के कानों तक तो अवश्य ही पहुँचती।

"मैं उस समय से बराबर अपना इलाज करा रहा हूँ; पर कोई फल नहीं निकला। कल जब आपने सन्तान न होने की बात कही तो मैं पुनः अपने डॉक्टर से मिला और उनसे अपने लिए पूछा कि क्या मैं कभी इस योग्य हो जाऊँगा कि सन्तान उत्पन्न कर सकूँ। डॉक्टर ने मुझे बतलाया कि यदि मैं इस योग्य हो भी गया कि

स्त्री के पास जा सकूँ तो भी इस योग्य कभी भी न हो सकूँगा कि सन्तानोत्पादन कर सकूँ। डॉक्टर का कहना है कि मेरा वीर्य इतना बिगड़ गया है कि उसमें सन्तानोत्पत्ति की शक्ति रह ही नहीं गई। अतएव ऐसी दशा में, जब कि मैं न अपनी पत्नी को सुखी बना सकता हूँ और न आपका वंश चला सकता हूँ, मेरा जीवन व्यर्थ है। इससे तो यही अच्छा है कि मैं इस जीवन का अन्त कर दूँ। ईश्वर ने मुझे ऐसा स्त्री-रत्न दिया था कि यदि मैं स्वस्थ होता, तो मेरे समान शायद ही कोई सुखी होता; परन्तु अब इस दशा में मेरे समान कदाचित् ही कोई दुखी हो। अब मुझसे यह दुख नहीं सहा जाता।

"अन्त में मैं आप से एक अन्तिम प्रार्थना करता हूँ। वह यह कि आप चेष्टा करके मेरी पत्नी का विधवा-विवाह करा दें। वह अक्षत-योनि है और आजकल विधवा-विवाह होने लगे हैं—अतएव ऐसी दशा में इस कार्य में कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़ेगी। यदि आप ऐसा कर देंगे तो मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी। क्योंकि मेरे पापों के लिए वह बेचारी क्यों जन्म भर दुख भोगे? यदि मैं जीता रहता तो वह विवाह कर सकने के लिए स्वतन्त्र न होती, क्योंकि मेरे जीते जी वह क़ानूनन दूसरा विवाह नहीं कर सकती थी—यदि ऐसा क़ानून होता तो मैं कदाचित् आत्म-हत्या न करता और उसका दूसरा विवाह

करा देता; परन्तु जब यह सम्भव नहीं तो उसे मुक्त करने के लिए केवल यही उपाय है कि मैं संसार में न रहूँ। आशा है, आप मेरी यह अन्तिम प्रार्थना अवश्य पूरी करेंगे।

"मेरे अपराध क्षमा × × ×।" भिखारीलाल यहीं तक पढ़ पाए थे कि बाँकेविहारी के कमरे से 'धड़ाम' से पिस्तौल छूटने का शब्द हुआ। भिखारीलाल 'हाय बेटा' कह कर उठे और कमरे की ओर दौड़ पड़े; परन्तु दो ही क़दम पर लड़खड़ा कर गिरे और बेहोश हो गए!

नेत्रोन्मीलन

नेत्रोन्मीलन

बाबू रोशनलाल ट्रेन से उतर कर मुसाफ़िरख़ाने में पहुँचे। जिस गाड़ी से उन्हें लखनऊ जाना था, उस गाड़ी के छूटने में एक घण्टे की देर थी।

बाबू रोशनलाल ने कुछ जलपान करके पान खाया और एक सिगरेट सुलगा कर इधर-उधर टहलना आरम्भ किया। टहलते-टहलते वह मुसाफ़िरख़ाने के दूसरे सिरे पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि एक पर्दा-नशीन स्त्री एक कोने में दबकी हुई अकेली बैठी है। रोशन-लाल ने कुछ क्षणों तक उसकी ओर देखा, तत्पश्चात् वह लौट पड़े। दूसरे चक्कर में जब रोशनलाल पुनः उस ओर पहुँचे तो उन्होंने उक्त स्त्री को पूर्ववत् बैठे देखा। वह थोड़ी दूर पर खड़े होकर उसकी ओर ताकने लगे। कुछ क्षणों पश्चात् स्त्री ने अपना थोड़ा सा मुख खोलकर अपनी नाक साफ़ की और आँखें पोंछी। अब रोशनलाल को मालूम हुआ कि स्त्री रो रही है। रोशनलाल ने सोचा—"यह स्त्री यहाँ बैठी क्यों रो रही है? इसके साथ में कोई और भी है अथवा बिलकुल अकेली है।" उनके मन में आया कि स्त्री से ये बातें पूछें; परन्तु उन्होंने साथ ही

यह सोच कर कि सम्भव है इसके साथ कोई आदमी हो और वह हमारे इस व्यवहार को नापसन्द करे, अपना इरादा बदल दिया और पुनः लौट पड़े।

तीसरे चक्कर में रोशनलाल पुनः उस ओर पहुँचे। इस बार उन्होंने उस स्त्री के पास एक पुलिस-कॉन्स्टेबिल को खड़े देखा। कॉन्स्टेबिल उससे पूछ रहा था—तुम कौन हो—तुम्हारे साथ कोई आदमी है या नहीं है ?

रोशनलाल ने सोचा—सम्भव है; यह स्त्री अकेली हो, और यदि यह सचमुच अकेली हुई तो बड़ी मुसीबत में पड़ जायगी। यह सोच कर वह आगे बढ़े और कॉन्स्टेबिल से बोले—क्यों, क्या है ?

कॉन्स्टेबिल कुछ सिटपिटा कर बोला—कुछ नहीं, यह माई बड़ी देर से यहाँ अकेली बैठी थीं—सो मैं इनसे पूछ रहा था कि कोई आदमी साथ में है या नहीं।

रोशनलाल ने कहा—यह मेरे साथ हैं, जो कुछ पूछना हो, मुझसे पूछो।

कॉन्स्टेबिल बोला—बस, मैं यही जानना चाहता था कि कोई साथ में है या नहीं। बाबू जी, आप तो जानते हैं आजकल औरतों का अकेले बाहर निकलना कितना ख़तरनाक है।

"ठीक कहते हो।"

"अभी चार रोज़ की बात है, इसी मुसाफ़िरख़ाने से एक औरत को गुण्डे उड़ा ले गए।"

रोशनलाल का कलेजा काँपने लगा कि कहीं स्त्री यह न कह दे कि मैं इनको जानती तक नहीं। यदि वह ऐसा कह दे तो कॉन्स्टेबिल उन्हें भी गुण्डा समझ कर कोतवाली की सैर करावे। उन्होंने ऊपर से हुलिया सुधार कर कहा—बेशक, आप लोग इतनी जाँच न रक्खें तो बड़ी गड़बड़ी हो जाया करे।

"इतनी जाँच रखने पर भी हो ही जाता है। क्या करें, एक आदमी क्या-क्या देखे ?"

"जी हाँ, यहाँ कई आदमियों की ज़रूरत है।"

कॉन्स्टेबिल थोड़ी दूर चला और पुनः लौट पड़ा।

रोशनलाल का हृदय काँप उठा कि कहीं इसे कुछ सन्देह तो नहीं हुआ।

कॉन्स्टेबिल ने कहा—ज़रा आपके पास दियासलाई हो तो दीजिए।

रोशनलाल ने मानों प्राण पाए। बोले—हाँ-हाँ, लीजिए।

यह कह कर उन्होंने दियासलाई की डिब्बी और सिगरेट की डिब्बी दोनों उसकी ओर बढ़ाईं।

कॉन्स्टेबिल बोला—सिगरेट तो मेरे पास है, ख़ैर लाइए, तसलीम !

रोशनलाल दाँत निकाल कर रह गए। कॉन्स्टेबिल ने सिगरेट सुलगा कर डिब्बियाँ वापस देते हुए पूछा—आप कहाँ जा रहे हैं?

रोशनलाल बोले—मैं—मैं तो ज़रा यहीं फ़ैज़ाबाद तक जा रहा हूँ।

"आयन्दा ख़्याल रखिएगा, इतनी देर तक औरतों को कभी अकेला मत छोड़िएगा।"

"बहुत अच्छा, ज़रूर ख़्याल रक्खूँगा।"

कॉन्स्टेबिल चला गया। रोशनलाल ने सन्तोष और निश्चिन्तता की दीर्घ निश्वास छोड़ी। इसके पश्चात् उन्होंने स्त्री की ओर देख कर कहा—तुमको अकेला देख कर मैंने सोचा कि कहीं यह तुम्हें परेशान न करे, इसलिए मैंने कह दिया था कि मेरे साथ हैं। अब बताओ तुम्हारे साथ कोई आदमी है या नहीं?

स्त्री मौन बैठी रही। रोशनलाल ने पुनः कहा—डरो मत, मैं कोई लुच्चा-गुण्डा नहीं हूँ। मैं एक बाल-बच्चेदार आदमी हूँ। जो तुम्हारे साथ कोई मर्द हो तो ख़ैर, अन्यथा मुझे बताओ, मैं तुम्हें, जहाँ तुम चाहो, वहाँ पहुँचा दूँ।

इस बार स्त्री ने हिचकियाँ लेते हुए कहा—मेरे—साथ—कोई—नहीं—है।

"अच्छा! तो तुम यहाँ कैसे आईं?"

"मैं अपने भाई के साथ आई थी।"

"तो वह कहाँ है?"

"चला गया।"

"एँ! चला गया! तुम्हें अकेली छोड़ कर?"

"हाँ!"

"क्यों?"

स्त्री मौन रही।

इसी समय रोशनलाल का क़ुली आ गया। उसने कहा—बाबू जी चलिए, आपकी गाड़ी आ रही है?

रोशनलाल ने कहा—अच्छा चलो, असबाब उठाओ, उधर रक्खा है।

क़ुली असबाब उठाने चला गया। इधर रोशनलाल ने स्त्री से कहा—यदि तुम मेरे साथ चलना चाहो तो चल सकती हो। मैं तुम्हें अपने घर ले चलूँगा। वहाँ से जहाँ तुम कहोगी वहाँ तुम्हें पहुँचा दूँगा।

स्त्री ने कहा—तुम्हारे साथ न चलूँगी तो और जाऊँगी कहाँ?

इतना कह कर स्त्री उठ कर खड़ी हो गई। क़ुली भी असबाब लेकर आ गया और तीनों व्यक्ति स्टेशन की ओर बढ़े। हठात् रोशनलाल को ध्यान आया कि स्त्री का टिकिट तो लिया ही नहीं। अतएव उन्होंने क़ुली को रोक कर वहीं खड़ा कर दिया और स्वयम् लपक कर टिकिट-

घर की खिड़की पर पहुँचे। वहीं कॉन्स्टेबिल भी खड़ा था। उसने इन्हें देखकर मुस्कराते हुए पूछा—कहिए बाबू जी, चल दिए?

रोशनलाल बोले—हाँ, अब जाते हैं—हमारी गाड़ी आ गई है।

इस समय कॉन्स्टेबिल उन्हें यमराज-तुल्य दिखाई पड़ता था। टिकिट लेकर वह भागते हुए कुली के पास पहुँचे। तत्पश्चात् तीनों व्यक्ति प्लेटफ़ॉर्म की ओर बढ़े।

रोशनलाल ने स्त्री को ज़नाने दरजे में बिठा दिया और स्वयम् उससे मिले हुए कम्पार्टमेण्ट में बैठ गए।

गाड़ी चलने के पूर्व एक बेर उन्होंने पुनः ज़नाने दरजे में झाँका। स्त्री मुँह खोले बैठी थी। रोशनलाल ने देखा कि स्त्री युवती तथा सुन्दरी है।

२

रोशनलाल जाति के कायस्थ हैं और लखनऊ में रहते हैं। उनके परिवार में उनके सहित केवल चार प्राणी हैं। एक तो वह स्वयम्, दूसरी उनकी पत्नी, तीसरा उनका छोटा भाई, जिसकी वयस १५ वर्ष के लगभग है और चौथे उनके वृद्ध पिता। रोशनलाल के पिता चालीस रुपए मासिक पेनशन पाते हैं। रोशनलाल एक सरकारी दफ़्तर में सत्तर रुपए मासिक वेतन पर काम करते हैं।

रोशनलाल के पिता कट्टर सनातनधर्मी हैं, परन्तु रोशन-लाल सुधरे हुए विचार के आदमी हैं। रोशनलाल के चरित्र की एक विशेषता यह है कि प्रत्येक ऐसे कार्य में, जिसमें उनकी सहायता तथा सहयोग की आवश्यकता पड़ती है, अवश्य भाग लेते हैं। सरकारी नौकर होने के कारण राजनैतिक मामलों में वह सम्मिलित नहीं होते—यद्यपि राजनैतिक बातों में उनको काफ़ी दिलचस्पी है।

उनके पिता बहुधा उनसे कहते हैं—"तू हर बात में टाँग अड़ाता फिरता है—ऐसा न हो कि किसी दिन किसी इल्लत में फँस जाय।" इस पर रोशनलाल हँस कर कह देते—"जब फँसूँगा तब देखा जायगा। मैं कोई बुरा काम तो करता ही नहीं, जो मुझे डर हो।" यह बात सुन कर पिता चुप हो जाते।

ज्यों-ज्यों लखनऊ निकट आता जाता था, त्यों-त्यों रोशनलाल की चिन्ता बढ़ती जाती था। वह सोचते थे—स्त्री को ले जाकर कहाँ रक्खूँगा। घर में ले जाऊँगा तो पत्नी और पिता नाक-भौं सिकोड़ेंगे। अन्य कोई ठिकाना दिखाई नहीं पड़ता। स्त्री युवती और सुन्दर है, यदि गुण्डों के हाथों में पड़ गई तो इसकी दुर्दशा हो जायगी—या तो मुसलमान बना ली जायगी या वेश्या। ऐसी स्त्री को कौन दुष्ट छोड़ गया। बेचारी कहीं शान्ति-पूर्वक बैठेगी तो अपना वृत्तान्त कहेगी।

इसी प्रकार की बातें सोचते हुए चले जा रहे थे। अन्त को लखनऊ आ गया और वह किसी निश्चय पर न पहुँचे।

गाड़ी से उतर कर स्त्री को साथ लिए हुए वह स्टेशन के बाहर आए और एक ताँगे पर सवार हुए। ताँगे वाले ने पूछा—"बाबू जी, कहाँ ले चलें।" रोशन-लाल एक क्षण के लिए मौन रहे, परन्तु दूसरे ही क्षण उनके मुख से एक मुहल्ले का नाम निकला। ताँगे वाले ने ताँगा भगाया।

उक्त मुहल्ले में पहुँच कर एक मकान के सामने ताँगा रुकवाया। ताँगे से उतर कर रोशनलाल ने पुकारा—कन्हैयालाल!

दो-तीन आवाज़ें देने पर एक युवक छज्जे पर आकर बोला—कौन, रोशनलाल! कहो इस समय कैसे?

रोशनलाल ने कहा—"ज़रा नीचे आओ।" कुछ क्षणों पश्चात् मकान का नीचे का द्वार खुला और कन्हैयालाल बाहर निकला। रोशनलाल उसको लेकर पुनः भीतर घुस गए और उससे बोले—यार कन्हैयालाल, मैं बनारस से एक औरत साथ ले आया हूँ। कोई कमबख़्त उसे बनारस में छोड़ कर चलता बना। हिन्दू-स्त्री है, मैंने सोचा कि गुण्डों के हाथ में पड़ कर बेचारी या तो मुसलमान हो जायगी या वेश्या, अतएव मैं उसे अपने साथ ले आया

हूँ। तो अब तुम इसे दो-चार रोज़ अपने पास रख लो, इसके पश्चात् मैं कोई प्रबन्ध कर दूँगा।

कन्हैयालाल झल्लाकर बोला—यार, तुम सदा एक न एक स्वाँग पाले रहते हो—दो दिन के लिए बनारस गए, वहाँ से औरत ले आए। भगवान् जाने तुम्हें इन बातों का पता कैसे लग जाता है।

"अरे यार, यह तो घटनावश हुआ, मैं जान-बूझ कर थोड़ा ही ले आया। अच्छा तो मैं उसे लाता हूँ।"

"भई, मुझे माफ़ कर देते तो अच्छा था।"

"इस समय तुम्हारे अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं देखा, इसलिए तुम्हारे यहाँ ले आया। तुम इस समय अकेले हो, तुम्हारी पत्नी है नहीं, इसलिए तुम्हारे यहाँ रखने में कोई हानि नहीं है।"

"मुहल्ले वाले पूछेंगे तो क्या उत्तर दूँगा?"—कन्हैयालाल ने मुँह बना कर कहा।

"कह देना कि रिश्तेदार है। घर अकेला था, इसलिए बुला लिया।"

"यार, तुम्हारे मारे नाक में दम है। दुनिया की अला-बला तुम अपने ऊपर लेते-फिरते हो।"

"इसी में आनन्द है मित्र!"

"यह कह कर रोशनलाल बाहर गए और स्त्री को उतार कर भीतर ले आए। भीतर आकर उन्होंने स्त्री से

से कहा—"देखो, तुम दो-चार रोज़ यहाँ रहो। यह मेरे मित्र हैं। बड़े भले आदमी हैं। तुम्हें अपनी माँ-बहिन की तरह रक्खेंगे। मैं तुम्हारे पास किसी समय आकर तुम्हारा हाल सुनूँगा। इसके बाद जैसा तुम चाहोगी वैसा किया जायगा।" इसके पश्चात् रोशनलाल ने कन्हैयालाल के कान में कहा—उस्ताद, तुम पर मेरा पूरा विश्वास है, परन्तु फिर भी मैं तुमसे कहता हूँ कि इस स्त्री पर बुरी निगाह मत डालना। यदि तुमने इस पर बुरी दृष्टि डाली तो मानो मेरी बहिन पर डाली—यह याद रखना!

कन्हैयालाल बोला—ख़ैर, यह उपदेश देने की आवश्यकता नहीं। एक तो दुनिया का रोग लाकर छाती पर धरो और ऊपर से यह उपदेश सुनाओ—अच्छे मिले!

रोशनलाल मुस्करा कर बाहर आ गए और ताँगे पर बैठ कर अपने घर की ओर चल दिए।

रोशनलाल के चले जाने के पश्चात् कन्हैयालाल स्त्री से बोले—"चलो, ऊपर चलो।" स्त्री को साथ लेकर कन्हैयालाल ऊपर के खण्ड में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने अपना कपड़ों का बक्स खोला और एक धोती निकाल कर स्त्री को दी और कहा—यह धोती पहन लो, हाथ-मुँह धोना चाहो तो वह सामने पम्प लगा है। और देखो इस डिब्बे में पकवान धरा है, खाकर पानी पी लेना—

खाना शाम को बनेगा। हाँ, तुम कौन जाति हो, यह तो बताओ ?

स्त्री ने एक दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा—मैं तो ब्राह्मणी हूँ।

"अच्छा ! कौन ब्राह्मण ?"

"सारस्वत !"

"ओहो ! तब तो बड़ी सुन्दर बात है। मैं खत्री हूँ। एक सारस्वत ब्राह्मणी मेरे यहाँ भोजन बनाती है। तुम तो उसका बनाया हुआ खा लोगी—तुम्हारी सजातीय है ?"

"हाँ, सारस्वत ब्राह्मणी है तो खा लूँगी।"

"और जो अपने हाथ से बनाना चाहो तो बना भी सकती हो, तुम्हारा बनाया हुआ मैं भी खा सकता हूँ।"

"अच्छी बात है—मैं ही बना लूँगी।"

"मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। यदि तुम्हारा जी चाहे तो बनाओ, अन्यथा क्यों कष्ट उठाओगी, ब्राह्मणी तो बनाती ही है।"

"मुझे दोनों बातें स्वीकार हैं, कहोगे तो बना लूँगी, नहीं बना-बनाया खा लूँगी।"

"अच्छा, आज तो ब्राह्मणी बनाने आवेगी ही, कल से देखा जायगा। अब तो हाथ-मुँह धोकर कुछ जलपान कर

लो—मैं नीचे जाता हूँ। और कोई चीज़ चाहिए तो बताओ, बाज़ार से ला दूँ।"

"मुझे अब कुछ नहीं चाहिए।"

कन्हैयालाल नीचे चले आए और कमरा खोला। तत्पश्चात् एक सिगरेट सुलगा कर कुर्सी पर बैठते हुए अपने ही आप बोले—कम्बख़्त ख़ुदाई फ़ौजदार बना घूमता है। किसी दिन ऐसा फँसेगा कि याद करेगा। सारस्वत ब्राह्मणी है, इतना ही अच्छा है।

३

रात में आठ बजे के लगभग रोशनलाल आए। आते ही उन्होंने कन्हैयालाल से पूछा—कहो, उसने भोजन-वोजन किया?

"हाँ, भोजन तो किया है; परन्तु जब से आई है तब से बराबर रो रही है।"

"सो तो स्वाभाविक ही है। इस प्रकार जिसका घर छूटेगा, वह रोवेगा नहीं तो क्या हँसेगा? चलो ज़रा उससे उसका वृत्तान्त तो पूछें।"

दोनों ऊपर पहुँचे। स्त्री चारपाई पर मुँह लपेटे पड़ी थी। इन दोनों के पैरों की आहट पाकर उठ बैठी। रोशनलाल तथा कन्हैयालाल दोनों चारपाई के सामने थोड़ी दूर पर बैठ गए। कुछ देर तक दोनों मौन बैठे रहे, तत्पश्चात् रोशनलाल ने कहा—मैं तुम्हारा कुछ वृत्तान्त

जानना चाहता हूँ। तुम कौन हो, कहाँ की रहने वाली हो, इत्यादि बातें तुम हमें बताओ।

स्त्री ने कहा—मैं क्या बताऊँ कि मैं कौन हूँ—अब तो मैं कुछ भी नहीं हूँ।

"इन बातों से काम नहीं चलेगा—तुमको अपना सब हाल बताना पड़ेगा। जब तक हमें तुम्हारा पूरा परिचय न मिलेगा, उस समय तक हम तुम्हारा उद्धार भली-भाँति नहीं कर सकेंगे।"

स्त्री कुछ देर तक मौन बैठी रही, तत्पश्चात् उसने अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। उसका सारांश यह है—"स्त्री का नाम सरस्वती है। उसका मायका इलाहाबाद ज़िले के एक बड़े क़स्बे में है। उसके मायके में केवल उसकी माता, एक बड़ा भाई तथा भौजाई हैं। उसका भाई खत्रियों की पुरोहिताई करके अपना जीवन निर्वाह करता है। उसका विवाह दिल्ली के एक परिवार में हुआ था। उसके श्वसुर कपड़े का काम करते हैं। पाँच वर्ष हुए तब वह विधवा हो गई। विवाह होने के पश्चात् ससुराल वालों ने उसे मायके भेज दिया तब से उन्होंने उसे नहीं बुलाया। मायके में उसकी दशा अच्छी नहीं थी। माता के अतिरिक्त और सब उसको तङ्ग करते थे और यह चाहते थे कि वह या तो मर जाय या कहीं चली जाय। माता ही के कारण वह इतने दिनों वहाँ टिक सकी।

"इधर तीन-चार महीने से वह रुग्ण रहती थी। पहले तो दो-तीन महीने से मासिक धर्म में गड़बड़ी होने के कारण उसका स्वास्थ्य ख़राब रहता था—इधर दो महीने से मासिक धर्म बिलकुल बन्द हो गया और उसका चित्त ख़राब रहने लगा। चार दिन हुए तब उसके भाई ने उससे बनारस चलने के सम्बन्ध में पूछा। वह वहाँ किसी काम से जा रहे थे, अतएव उन्होंने सरस्वती से कहा—'तुम्हारी इच्छा हो तो चलो, गङ्गा-स्नान और विश्वनाथ जी के दर्शन कर आओ।' सरस्वती ने इस बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया। भाई के साथ वह बनारस आई और एक धर्मशाला में ठहरी। वे दो दिन बनारस में रहे। एक दिन सरस्वती अपने भाई के साथ गङ्गा नहाने गई। भाई जल्दी से नहा कर उससे बोला—'मैं चलता हूँ—तुम आओ।' यह कह कर वह चल दिया। धर्मशाला वहाँ से निकट थी। सरस्वती भाई के जाने के आध घण्टा पश्चात् वहाँ से चली और धर्मशाला में पहुँची। वहाँ पहुँच कर उसने भाई को अनुपस्थित पाया। पूछने पर मालूम हुआ कि वह अपना असबाब लेकर स्टेशन गए। सरस्वती यह सुन कर पहले सन्नाटे में आ गई। परन्तु फिर उसने तुरन्त एक ताँगा लेकर स्टेशन की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उसने भाई को मुसाफ़िरख़ाने में ढूँढ़ा; पर उसका कहीं पता न लगा। तब वह एक

किनारे बैठ कर रोने लगी। इसी अवसर पर रोशनलाल पहुँच गए।"

सब सुन कर रोशनलाल ने कन्हैयालाल के कान में कहा—जान पड़ता है यह गर्भवती है, तभी इसका भाई इसे छोड़ गया।

कन्हैयालाल ने कहा—और नहीं तो क्या, उसे कुत्ते ने काटा था, जो सगी बहिन के साथ ऐसा घृणित व्यवहार करता।

"ख़ैर, यह व्यवहार तो उसे किसी भी दशा में न करना चाहिए था।"

"आख़िर करता क्या ?"

"और चाहे जो करता।"

"वही तो पूछता हूँ—क्या करता ? यदि लोगों को इसके गर्भवती होने का पता लग जाता तो इसके भाई का सामाजिक तथा जातीय बहिष्कार कर दिया जाता। इसी भय के कारण उसने ऐसा किया।"

"तुम्हारा कहना ठीक है—इसका तो केवल एक इलाज है और वह है विधवा-विवाह।"

"सो उसमें भी तो समाज के दक़ियानूसी ठेकेदार अड़ङ्गा लगाते हैं।"

"अरे अब वह बात नहीं रही। अब तो विधवा-विवाह होने लगे हैं।"

"सौ में दस-पन्द्रह हो गए तो उससे क्या होता है?"

रोशनलाल ने सरस्वती से पूछा—तो अब तुम क्या चाहती हो?

स्त्री ने कहा—मायके तो मैं अब जाऊँगी नहीं, हाँ ससुराल पहुँचा दो तो चली जाऊँगी।

रोशनलाल ने कहा—परन्तु जब तुम गर्भवती हो तो ससुराल वाले तुम्हें अपने यहाँ क्यों रखने लगे?

रोशनलाल की बात सुन कर सरस्वती भौंचक्की सी रह गई। वह कुछ क्षणों तक रोशनलाल तथा कन्हैयालाल का मुँह ताकती रही, तत्पश्चात् एकदम से रो पड़ी और रोते-रोते बोली—यह आप से किसने कहा?

"तुम्हारे ही बयान से पता लगा। यदि यह बात न होती तो तुम्हारा भाई तुम्हें इस प्रकार न छोड़ जाता।"

सरस्वती कुछ क्षणों के लिए रोना भूल गई। उसने पूछा—तो क्या मेरा भाई मुझे यही समझ कर छोड़ गया?

"हाँ!"

सरस्वती ने आँसू पोंछ डाले। उसका कण्ठ-स्वर जो करुणा के कारण गद्गद था, अब क्रोध के कारण कर्कश हो गया। उसने कहा—यदि यह बात है तो मैं अपने भाई को कभी क्षमा न करूँगी। उसने मुझे त्याग दिया, उसका यह अपराध चाहे मैं क्षमा कर भी देती, पर,

उसने मेरे चरित्र पर सन्देह करके मेरे साथ जो घोर अन्याय किया है, इसके लिए मैं उसे कभी क्षमा न करूँगी।

रोशनलाल ने लड़खड़ाती हुई जिह्वा से पूछा—तो क्या तुम गर्भवती नहीं हो?

सरस्वती ने दृढ़तापूर्वक कहा—कदापि नहीं। मैंने अपने पति के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष से कभी बात तक नहीं की। इस मुसीबत में पड़ कर मैं आज आप लोगों के सामने इस प्रकार बैठी हूँ, नहीं तो कोई मेरी छाया तक न देख पाता था। मेरा सगा भाई—और उसने मेरे सम्बन्ध में ऐसा विश्वास कर लिया। कम से कम उसे सच-झूठ का निश्चय तो कर लेना था। हाय! भैया, तुम्हें मैं अपने प्राणों से अधिक समझती थी—पति के मरने के पश्चात् मैं तुम्हीं को अपना सर्वस्व समझती थी। तुमने मुझे गोदी में खिलाया, तुम मेरे स्वभाव को, मेरी प्रकृति को भली-भाँति समझते थे, फिर भी तुमने मेरे साथ इतना बड़ा अन्याय किया। मुझे इतना अवसर भी न दिया कि मैं अपने को निर्दोष प्रमाणित कर सकूँ। भैया, मैं सब कुछ क्षमा कर देती—यदि तुम मुझे अपने सिर का भार समझ कर त्याग देते; यदि मुझे बेकार समझ कर छोड़ देते, यदि तुम मुझे अभागिनी और मनहूस समझ कर निकाल देते, तो मैं

तुम्हें क्षमा कर देती, परन्तु अब क्षमा नहीं करूँगी। मेरा-तुम्हारा न्याय भगवान् के सामने होगा।

इतना कहते-कहते सरस्वती पुनः व्याकुल होकर रोने लगी। रोशनलाल तथा कन्हैयालाल चुप थे। थोड़ी देर में दोनों उठ कर बाहर आए। रोशनलाल ने कहा—यह क्या मामला है, कुछ समझ में आया ?

"मेरी समझ में तो यह आया कि इसका मासिक-धर्म किसी कारण से रुक गया है। इस पर इसकी भौजाई को यह सन्देह हुआ कि इसके गर्भ है। इसी सन्देह पर इसे त्याग दिया।"

"हाँ, यही हो सकता है। ख़ैर, यह गर्भवती नहीं है, यह जान कर बड़ा सन्तोष हुआ। गर्भवती होती तो बड़ा झगड़ा था।"

"पूरी मुसीबत थी।"

"तो अब क्या होना चाहिए ?"

"यह तो उसी से पूछने की बात है। इस समय तो उसे छेड़ना ठीक नहीं है—सवेरे देखा जायगा।"

"अच्छी बात है—तो मैं अब जाता हूँ, कल सवेरे आऊँगा।"

४

दो वर्ष पश्चात् सरस्वती के भ्राता कामताप्रसाद अपनी बैठक में बैठे दो आदमियों से वार्त्तालाप कर रहे

थे। वह कह रहे थे—मुझसे बातचीत हो तो मैं सारी चौकड़ी भुला दूँ। मेरे सामने वह विधवा-विवाह पर एक शब्द भी नहीं कह सकते।

"आखिर यह हैं कौन?"—अन्य दो व्यक्तियों में से एक ने पूछा।

कामताप्रसाद ने उत्तर दिया—लखनऊ की तरफ़ के कोई ब्राह्मण हैं।

"यह करते क्या हैं?"

"जो यहाँ कर रहे हैं—विधवा-विवाह पर व्याख्यान देकर उसका प्रचार करते फिरते हैं।"

"किसी संस्था की ओर से होंगे?"

"यह तो मुझे पता नहीं।"

"लोग कहते हैं कि बड़े विद्वान् आदमी हैं।"

कामताप्रसाद मुँह बनाकर बोले—चाहे जितने बड़े विद्वान् हों, परन्तु मुझे वह विधवा-विवाह के पक्ष में नहीं कर सकेंगे। मेरे पास वह-वह दलीलें हैं कि उनके पास उनका उत्तर ही न निकलेगा।

"तो तुम उनसे बातचीत करो।"

"मुझे क्या ग़रज़ पड़ी है। आए हैं तो आव—दो-चार रोज़ बक-झक कर चले जायँगे। यहाँ उनकी दाल नहीं गलेगी।"

"आज उनका व्याख्यान सुनने चलिएगा?"

"हाँ, चला चलूँगा; परन्तु व्यर्थ होगा। मुझे उनकी बात कुछ जँचेगी नहीं।"

इसी समय उनके नौकर ने आकर उनके हाथ में एक पत्र दिया। कामताप्रसाद ने पूछा—कौन लाया है?

"एक आदमी लाया है, जवाब के लिए बाहर खड़ा है।"

कामताप्रसाद ने पत्र खोला। उसमें लिखा था—

"महोदय,

आप इस क़स्बे के ख़ास व्यक्तियों में से हैं। अतएव मैं आपसे विधवा-विवाह के सम्बन्ध में कुछ बातें करना चाहता हूँ। क्या आप आज किसी समय मेरे निवास-स्थान पर पधारने का कष्ट उठाइएगा? आशा है, आप मुझे निराश न करेंगे और अपने पधारने के समय की सूचना देंगे।

भवदीय,

कालिकाप्रसाद उपदेशक तथा प्रचारक"

कामताप्रसाद ने मुस्करा कर अपने मित्रों से कहा—उन्हीं उपदेशक महाशय का पत्र है—वह मुझसे मिलना चाहते हैं।

"तो फिर क्या है, मिलिए। यह तो मुँह-माँगी मुराद मिली।"

कामताप्रसाद ने अकड़ कर कहा—हाँ, अवश्य मिलूँगा

और खूब बातें करूँगा—यह भी याद करेंगे कि किसी से पाला पड़ा था।

यह कह कर कामताप्रसाद ने उसी पत्र की पीठ पर लिख दिया—मैं दोपहर के पश्चात् आपके पास आऊँगा।

दोपहर के पश्चात् तीन बजे के लगभग कामताप्रसाद उपदेशक महोदय के निवास-स्थान पर पहुँचे। उपदेशक महोदय ने उन्हें आदर-पूर्वक बिठाया।

पहले कुछ क्षणों तक इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् उपदेशक ने पूछा—आप इस क़स्बे के बहुत बड़े पुरोहित हैं—ऐसा मैंने सुना है।

"हाँ, लोगों की कृपा है, जो इतना आदर करते हैं।"—कामताप्रसाद ने दाँत निकाल कर कहा।

"तो ऐसी दशा में यहाँ आपका प्रभाव काफ़ी होगा।"

"जी हाँ, लोग मेरी बात मानते हैं, और यह उनका अनुग्रह है।"

उपदेशक ने कुछ क्षण तक मौन रह कर कहा—विधवा-विवाह के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

कामताप्रसाद मुँह बनाकर बोले—विधवा-विवाह तो बहुत ही बुरी बात है।

"क्यों?"

"इससे स्त्रियों का पतन होता है। हिन्दू-नारियों की शोभा हिन्दू-विधवाएँ ही हैं।"

"हाँ, यदि वे सच्ची और आदर्श विधवा बनकर रहें तब × × ×।"

"रहती ही हैं, रहतीं क्यों नहीं ?"

"यह मैं नहीं मानता। बहुत सी तो स्वयम् भ्रष्ट हो जाती हैं और बहुत सी घर वालों के अत्याचारों के कारण भ्रष्ट हो जाती हैं।"

कामताप्रसाद हँस कर बोले—नहीं, यह बात नहीं है। आप जानते हैं हिन्दू-घरों में विधवा का कितना मान होता है ? वे बिलकुल देवी की भाँति पूजी जाती हैं। वे स्वयम् भ्रष्ट हो जायँ तो यह बात दूसरी है; परन्तु उन पर अत्याचार नहीं होता।

"सम्भव है आपका ऐसा अनुभव हो, परन्तु जहाँ तक मेरा अनुभव है उसके अनुसार मैं कहता हूँ कि न जाने कितनी विधवाएँ तीर्थस्थानों में घर वालों द्वारा छोड़ दी जाती हैं।"

कामताप्रसाद का मुख एक क्षण के लिए श्वेत हो गया, परन्तु वह शीघ्र ही सँभल गए और हुलिया सुधार कर बोले—सम्भव है, कुछ हृदयहीन लोग ऐसा करते हों, परन्तु ऐसा कम होता है। अधिकांश घरों में तो विधवाएँ

घर की बड़ी बन कर रहती हैं। सब उनका आदर तथा सम्मान करते हैं।

"इतना तो आप मानेंगे कि जो विधवाएँ विवाह करना चाहें उनका विवाह कर दिया जाय ?"

"यह मैं नहीं मानता। लड़के जब स्कूलों में पढ़ते हैं तो उनकी सदैव यही इच्छा रहती है कि स्कूल न जाना पड़े। यदि उनकी इच्छा-पूर्ति की जाय तो एक भी लड़का न पढ़े। इसी प्रकार यदि विधवाओं की इच्छा के अनुसार कार्य किया जायगा तो सब विवाह करने के लिए तैयार हो जायँगी। आवश्यकता इस बात की है कि जिस प्रकार बालक ताड़ना के बल से शिक्षित बनाए जाते हैं, इसी प्रकार विधवाओं को भी शिक्षा तथा ताड़ना के बल से आदर्श-हिन्दू-विधवा बनाना चाहिए।"

पण्डित कालिकाप्रसाद ने कामताप्रसाद की इस बात पर ध्यान न देकर पूछा—आपकी भी तो एक विधवा बहिन थी ?

इस वाक्य ने कामताप्रसाद की हुलिया बिगाड़ दी। उनका चेहरा कुछ क्षणों के लिए फ़क़ हो गया। परन्तु वह थे बड़े चलते-पुर्ज़े—उन्होंने बड़ा उदास मुख बना कर कहा—हाँ थी, परन्तु ससुराल में उसका देहान्त हो गया। यदि वह जीवित होती तो मैं उसे एक आदर्श-विधवा बना देता।

इसी समय कमरे का एक द्वार, जो अभी तक बन्द था, अकस्मात् खुला और एक स्त्री ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—भाई जी, वह अभागिनी मरी नहीं, जीवित है।

कामताप्रसाद सरस्वती को सम्मुख खड़ी देख कर बौखला गए—उन्होंने लड़खड़ाती हुई जिह्वा से कहा—सर—सर—सरस्वती तुम—तुम यहाँ कहाँ?

सरस्वती कामताप्रसाद के सम्मुख खड़ी होकर घृणापूर्वक मुस्कराते हुए बोली—क्यों भाई जी, क्या आप मुझे आदर्श-विधवा बनाने के लिए ही बनारस में अकेली छोड़ आए थे?

कामताप्रसाद का मुख लज्जा के मारे लाल हो गया। उन्होंने चुपचाप अपना सिर झुका लिया।

सरस्वती ने कहा—अच्छा तो यह होता कि मैं आपके सम्मुख वेश्या अथवा किसी मुसलमान की बीबी बनकर आती, परन्तु ईश्वर रोशनलाल का भला करे जिसकी बदौलत मैं आपके सम्मुख एक हिन्दू-नारी की सूरत में खड़ी हूँ, अन्यथा आपने तो अपनी समझ में कुछ उठा नहीं रक्खा था।

कामताप्रसाद सिर झुकाए हुए ही बोले—सरस्वती, क्यों मुझे रसातल में ढकेल रही हो?

"मैं आपको रसातल में ढकेल रही हूँ या आपने मुझे

रसातल में ढकेला था। ओफ़! यदि एक पुरुष-रत्न भाई बन कर और दूसरा पति बन कर मेरा उद्धार न करता तो मैं नहीं कह सकती कि मेरी क्या दुर्दशा होती।"

कामताप्रसाद ने चौंक कर कहा—क्या कहा, पति बन कर—तो क्या तुम्हारा कोई पति भी है?

सरस्वती ने उपदेशक महोदय की ओर सङ्केत करके कहा—मेरे पति, मेरे स्वामी, आपके सम्मुख ही बैठे हैं।

कामताप्रसाद ने घबरा कर पण्डित जी की ओर देखा और कहा—इनकी पत्नी—तुम? कैसे?

कालिकाप्रसाद बोले—घबराइए नहीं, मैंने विधिपूर्वक आपकी विधवा-भगिनी का पाणिग्रहण किया है।

कामताप्रसाद ने एक क्षण मौन रह कर कहा—परन्तु यह तो गर्भवती थी।

पण्डित जी बोले—गर्भवती नहीं, रोगिणी—आपने जिसका कारण गर्भ समझा था उसका कारण रोग था।

"परन्तु मेरी पत्नी ने मुझे गर्भ बतलाया था।"

"और आपने उसे चुपचाप मान लिया था—उसका निश्चय कर लेना भी आवश्यक न समझा। इसी बिरते पर आप कहते हैं कि हिन्दू-घरों में विधवाओं की पूजा होती है।"

कामताप्रसाद ने "ओफ़!" कह कर पुनः सिर नीचा कर लिया। थोड़ी देर के बाद उन्होंने सिर उठाया। उनके

नेत्रों में आँसू भरे हुए थे। उन्होंने बड़े करुणापूर्ण स्वर में कहा—सरस्वती, मुझे क्षमा कर, मैं तेरा भाई हूँ।

सरस्वती ने कहा—मेरा भाई संसार में केवल एक है और उनका नाम रोशनलाल है। उनके अतिरिक्त और मेरा कोई भाई नहीं।

"सरस्वती, सरस्वती, मैं भी तेरा भाई हूँ—सगा भाई हूँ।"

"हाँ, पहले जन्म में थे। जब तुमने मुझे त्याग दिया उसके पश्चात् मेरा दूसरा जन्म हुआ और इस दूसरे जन्म का भाई रोशनलाल है। पहले जन्म के भाई ने मुझे नरक में ढकेला था और दूसरे जन्म के भाई ने मुझे नरक से निकाल कर स्वर्ग में बिठाया।"

इतना कहते-कहते सरस्वती का कण्ठ गद्गद् हो गया, उसके नेत्रों में आँसू छलछला आए।

कामताप्रसाद ने बड़े कातर-स्वर से कहा—सरस्वती, निस्सन्देह मैं बड़ा नीच हूँ, बड़ा अधम हूँ।

इसी समय पण्डित कालिकाप्रसाद ने सरस्वती से कहा—प्रिये, तुम इन्हें क्षमा कर दो। इन्होंने जो कुछ किया वह समाज के भय के कारण किया। यदि समाज का भय न होता तो यह कदापि ऐसा कुत्सित कर्म न करते।

"अच्छा, तो मैं एक शर्त पर इन्हें क्षमा कर सकती हूँ।"—सरस्वती ने नेत्र पोंछते हुए कहा।

कामताप्रसाद बोल उठे—बताओ वह क्या है। मैं अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए तुम्हारी प्रत्येक शर्त मानने को तैयार हूँ।

सरस्वती ने कहा—आज से समाज का अनुचित भय छोड़ कर विधवा-विवाह के सच्चे समर्थक बन जाओ।

कामताप्रसाद ने छाती ठोंकते हुए कहा—स्वीकार है—मैं केवल समर्थक ही नहीं, विधवा-विवाह का प्रचारक भी बनूँगा। आज से मेरे जीवन का मुख्य लक्ष्य यही रहेगा।

"तो भाई जी, मैं तुम्हें सच्चे हृदय से क्षमा करती हूँ।"—यह कह कर सरस्वती दौड़ कर कामताप्रसाद से लिपट गई।

संशोधन

बाबू रोशनलाल बोले—यह आप क्या कहते हैं—विधवा-विवाह! अपनी कन्या का मैं विधवा-विवाह करूँगा! मेरे जीते जी तो ऐसा कभी न होगा।

रात के आठ बज चुके हैं। एक कमरे में बिजली का शुभ्र प्रकाश फैला हुआ है। एक ओर तकिए के सहारे बाबू रोशनलाल बैठे हैं। इनकी अवस्था चालीस के ऊपर है। बाबू साहब की बात सुन कर उनमें से एक बोला—इसमें कोई हानि तो है नहीं—आजकल विधवा-विवाह होने लगे हैं। अब वह समय नहीं रहा, जब कि विधवा का विवाह करना एक अक्षम्य पाप समझा जाता था।

बाबू रोशनलाल बोले—आपने मेरे सामने ऐसा प्रस्ताव रखने की धृष्टता कैसे की?

दूसरा नवयुवक बोला—आप इसे धृष्टता कहें या और कुछ कहें; पर हम तो समझते हैं कि हम अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं। हम एक बार आपसे पुनः निवेदन करते हैं कि इस सुअवसर को हाथ से न जाने दीजिए। अभी आपको अच्छा पात्र मिल रहा है, सम्भव है ऐसा पात्र फिर आपको न मिले।

बाबू रोशनलाल का मुख तमतमा उठा, वह कड़क कर

बोले—जान पड़ता है, आप लोगों का सिर फिर गया है। मैं कुछ कहता हूँ, आप कुछ कहते हैं। मैं पुनः एक बार और अन्तिम बार आप से कहता हूँ कि इस बात की चर्चा मेरे सामने मत कीजिए।

नवयुवक—अच्छी बात है, ईश्वर आपको सुबुद्धि दे।

यह कह कर तीनों नवयुवक उठ खड़े हुए और कमरे के बाहर चले आए। बाहर आकर एक नवयुवक अन्य दो नवयुवकों से बोला—अच्छा, अब आप लोग जाइए, यह रोशन वज्र मूर्ख है। विधवा-विवाह के लाभ इसकी समझ में नहीं आ सकते। बात यह है कि जब तक मनुष्य ठोकर नहीं खाता, तब तक उसे समझ नहीं आती। अच्छा, प्रणाम ! बड़ा कष्ट हुआ, क्षमा करना !

दोनों नवयुवक एक ओर चले गए और वह धीरे-धीरे अपने मकान की ओर चला। मकान पास ही था, अतएव वह कुछ ही मिनटों में अपने मकान पर पहुँच गया। मकान के अन्दर घुसकर एक ज़ीने द्वारा वह ऊपर पहुँचा और एक कमरे में प्रविष्ट हुआ। उस कमरे में एक सुन्दर युवती कुर्सी पर बैठी एक पुस्तक को उलट-पलट रही थी। नवयुवक को देखते ही उसने उत्सुकता-पूर्वक पूछा—क्यों भइया, क्या हुआ ?

नवयुवक अपनी टोपी मेज़ पर पटक कर बोला—होना क्या था, वह एक नहीं माना। महा मूर्ख है।

युवती का मुख मलिन होगया। उसने इस प्रकार मानो उसे युवक की बात पर विश्वास नहीं हुआ है, कहा—नहीं माने? उन्हें मान जाना चाहिए था।

युवक युवती के निकट एक दूसरी कुर्सी पर बैठकर बोला—इतने समझदार हों तब न!

युवती पुस्तक के पन्ने उलटते हुए बोली—तो अब क्या होगा?

युवक—मैं क्या बताऊँ?

युवती—सरला बेचारी बड़ी निराश होगी?

युवक—फिर क्या किया जाय, रोशनलाल मानता नहीं—महा पाजी आदमी है।

युवती—यह तो बड़ा अन्याय है भइया! जब वह स्वयं विवाह करने की इच्छुक है, तब उसका विवाह न करना महापाप है।

युवक—निस्सन्देह! पर इसका इलाज क्या है? बिना उसके बाप की इच्छा के कोई कुछ कर भी तो नहीं सकता।

युवती—अभी किसी के साथ कहीं चल दे तो सारी ऐंठ निकल जाय।

युवक—जब यह दशा है तो चल ही देगी, क्या बैठी थोड़ी रहेगी?

युवती—सच मानना भइया! मेरे हाथ जोड़ती थी

और कहती थी कि किसी तरह पिता जी से कहकर मेरा विवाह करा दो। जब से उसने पत्रों में पढ़ा कि विधवा-विवाह होने लगे, तभी से उसे यह धुन सवार हुई। और भइया, उसे यहाँ कष्ट भी बड़ा है। रात-दिन बेचारी बाँदी की तरह काम किया करती है—न खाने का सुख, न पहनने का। न जाने बेचारी ने कौन पाप किए थे, जिनका फल भोग रही है। मुझे तो उस पर बड़ी दया लगती है।

युवक—फिर किया क्या जाय? वह कोई जड़-पदार्थ तो है नहीं, जो कोई उसे उठा लावे!

युवती—जड़-पदार्थ को उठा लाना तो कठिन होता है; पर चैतन्य को—ऐसे चैतन्य को, जो स्वयम् साथ चलने का इच्छुक हो—ले आना बड़ा सरल है।

युवक—पर यह कौन करे? कोई भला आदमी तो कर नहीं सकता।

युवती—मैं तो उसे यह सलाह दूँगी कि तू किसी के साथ भाग जा।

युवक नेत्र विस्फारित करके बोला—कुन्ती, यह तू क्या कहती है और मेरे सामने—बड़े शरम की बात है।

कुन्ती अपनी आँखें नीची करके बोली—क्या करूँ, जब जी जलता है, तब ऐसी ही बातें सूझती हैं। पुरुष तो हम स्त्रियों को ऐसा समझते हैं, मानो हमारे न हृदय

है, न नेत्र हैं, न कान हैं। हम न कुछ देख सकती हैं, न कुछ सुन सकती हैं, न कोई इच्छा रख सकती हैं। पुरुष हमें अपना खिलौना समझते हैं, वे हमें चाहे जिस दशा में रक्खें, पर हम चूँ तक न करें।

युवक बोला—ओफ़ ओह! तू तो बड़ी पण्डिता हो गई है। क्या ठीक है? अपनी सखी को यह परामर्श देगी कि तू किसी के साथ भाग जा—बड़ा सुन्दर परामर्श है। मित्रता का हक़ अदा करना इसे ही कहते हैं।

कुन्ती—आख़िर बेचारी क्या करे? क्या इसी प्रकार कष्ट भोगती रहे?

युवक—यदि भली होगी तो भोगेगी ही। चेष्टा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है, सो उसने चेष्टा भी कर ली। स्त्री के लिए इतनी ही चेष्टा यथेष्ट है कि उसने स्वयं विवाह की इच्छा प्रकट की। जब यह चेष्टा निष्फल हुई तो समझ ले कि उसके भाग्य में यही बदा है।

युवती—यदि एक हठी और मूर्ख पिता की सनक ही कन्या का भाग्य हो सकती है तो × × ×।

युवक बात काटकर बोला—हो क्या सकती है, होती ही है। माता-पिता जैसा चाहते हैं, करते हैं। कन्या को अपनी इच्छानुसार कार्य करने का अवसर कहाँ मिलता है?

कुन्ती—हाँ, अब तक तो नहीं मिलता था; पर अब,

जब कि स्त्रियों को शिक्षा दी जाती है, तब उनकी इच्छा का भी ध्यान रखना चाहिए, अन्यथा यह शिक्षा-विद्या सब व्यर्थ है। यदि पुरुषों को अपनी इच्छानुसार ही कार्य करना है, तो स्त्रियों को मूर्ख ही रहने दें, तभी उनकी इच्छा चल सकती है। शिक्षित स्त्रियों से यह आशा करना कि वे आँख-कान बन्द करके सदा पुरुषों की इच्छानुसार ही कार्य करेंगी, बड़ी भारी भूल है। ये दोनों बातें एक साथ कभी नहीं चल सकतीं।

युवक ने कुन्ती की इस बात का मर्म समझा। उसने अपने मन में कहा—'ठीक कहती है।' प्रकट में बोला—यह बात मैं मानता हूँ; पर ये बातें धीरे-धीरे ही होंगी, एकदम से कैसे हो सकती हैं? परिवर्त्तन सदा क्रमशः ही होता है—क्रान्ति में एकदम से सब उलट-पलट हो जाता है, सो यहाँ इस सम्बन्ध में कुछ क्रान्ति तो हो नहीं रही है। जो बात तुम कहती हो, वह क्रान्ति में ही हो सकती है।

कुन्ती—तो अब मैं सरला को क्या उत्तर दूँ?

युवक—कह देना कि वह नहीं मानते।

कुन्ती—यदि उसने पूछा कि मैं अब क्या करूँ?

युवक—तुम अपनी ओर से उसे यही शिक्षा देना कि जिस प्रकार भले घर की स्त्रियाँ कष्टों को धैर्य के साथ सहन किया करती हैं, उसी प्रकार वह भी सहन करे।

आज दिन भी हज़ारों स्त्रियाँ सामाजिक कुरीतियों के फल-स्वरूप अनेक प्रकार के कष्ट सहन कर रही हैं; पर कोई कार्य ऐसा नहीं करतीं, जो उनके और उनके कुल के नाम को कलङ्कित करे—वे स्त्रियाँ नहीं, देवियाँ हैं। वे पूजा के योग्य हैं! सरला को भी उन्हीं देवियों का अनुकरण करना चाहिए।

२

सरला ने एक दीर्घ-निश्वास लेकर कहा— तो बहिन कुन्ती, ऐसे जीवन से तो मरना ही भला है।

कुन्ती—निस्सन्देह; पर मरने के लिए आत्म-हत्या तो की नहीं जा सकती। आत्म-हत्या करना कायरता है। जो कष्ट सहन करने की शक्ति नहीं रखते, वे ही आत्म-हत्या करते हैं। मनुष्य का सबसे बड़ा गुण यही है कि वह कष्टों को धैर्यपूर्वक सहन करे—कष्ट पड़ने पर विचलित न हो और न कोई कार्य ऐसा करे, जिससे वह कायर, पापी अथवा कुल-कलङ्क कहलावे।

सरला—उपदेश देना जितना सरल है, उतना सरल उपदेशों के अनुसार कार्य करना नहीं है।

कुन्ती—इसीलिए उपदेश ग्रहण करने वालों का स्थान बड़ा ऊँचा है। संसार में सच्चे सुधार करने वाले उपदेशक नहीं, वरन् उपदेश ग्रहण करने वाले होते हैं।

सरला—यदि मैं कोई ऐसा-वैसा काम कर बैठूँ, तो पिता जी की क्या स्थिति होगी?

कुन्ती—उनकी स्थिति ख़राब होगी—यह मैं मानती हूँ; पर साथ ही तुम्हारी स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं हो जायगी। यदि लोग उन्हें थूकेंगे तो सबसे पहले तुम्हें थूकेंगे। इसके अतिरिक्त इस प्रकार तुम जहाँ भी रहोगी, सुख-शान्ति से न रह सकोगी। जो कष्ट तुम्हें यहाँ हैं, उससे अधिक कष्ट तुम्हें भोगने पड़ेंगे। इसलिए सबसे उत्तम बात यही है कि धैर्यपूर्वक इन कष्टों को सहन करो, सम्भव है संसार का रङ्ग देख कर उनका मन ठिकाने आ जाय। अभी तेरी उमर ही क्या है—कुल सत्रह-अठारह बरस की तो है ही।

सरला—आज यदि मेरी माता जीवित होती तो मुझे कोई कष्ट न था। उस समय मैं विवश किए जाने पर भी विवाह करने के लिए उद्यत न होती। पर इस दशा में, जब कि मैं घर में अकेली हूँ, कोई दूसरा नहीं है, पिता जी को यह दशा है कि कभी सीधे मुँह बात नहीं करते, रात-दिन काम करते-करते मरी जाती हूँ, तब तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ?

कुन्ती—ससुराल क्यों नहीं चली जाती?

सरला—ससुराल वाले बुलाते नहीं—एकाध दफ़े उन्होंने केवल ऊपरी मन से कहा भी, तो पिता जी ने नहीं

भेजा, बोले—घर में कोई स्त्री नहीं है, इसलिए हम नहीं भेजेंगे।

कुन्ती—तुझे काम तो अधिक करना नहीं पड़ता, घर में एक दास और दासी हैं, घर की ताला-कुञ्जी तेरे हाथ में है—और तू चाहती क्या है?

सरला—दास-दासी ऊपर का काम करते हैं। गृहस्थी की देख-भाल, भोजन पकाना तथा अन्य सब उत्तरदायित्व तो मेरे ही ऊपर है। दास-दासियों से अपना दुख-सुख थोड़े ही कहा जा सकता है। रात में दासी दिनभर की थकी होने के कारण सो जाती है, यद्यपि थकी मैं भी होती हूँ, पर मुझे नींद नहीं आती। जब तक जागती हूँ, तारे गिना करती हूँ। अपने आदमी को जितनी सहानुभूति होती है, उतनी दास-दासियों को कहाँ हो सकती है और बहिन, तुमसे क्या कहूँ—मैं नहीं चाहती कि पिता जी की निन्दा करूँ, पर जब जी जलता है, तब कहना ही पड़ता है। पिता जी ने एक वेश्या रख छोड़ी है। रात को दस बजे वह आती है, वह उसे लेकर अपने कमरे में पड़ जाते हैं; मैं यहाँ पड़ी सड़ा करती हूँ।

यह सुनते ही कुन्ती स्तम्भित रह गई। उसने सोचा, रोशनलाल इतना पतित है! इतना नीच है! घर में जवान बेटी विधवा बैठी है, वह तो अकेली पड़ी तड़पा करे और स्वयं वेश्या को लेकर पड़े।

सरला ने देखा कि इस बात का प्रभाव कुन्ती पर यथेष्ट पड़ा। वह पुनः बोली—अब तुम्हीं बताओ, ऐसी परिस्थिति में उपदेशों का प्रभाव क्या हो सकता है। तुम मुझे उपदेश देती हो—यह मैं समझती हूँ कि तुम मेरे भले के लिए ही कहती हो, पर मुझे तुम्हारी बातें—क्षमा करना—निस्सार प्रतीत होती हैं। यदि मेरी परिस्थिति में तुम होतीं तो तुम्हें मालूम होता कि मुझ पर क्या बीत रही है। यही इच्छा होती है कि चाहे मुझे घोर नरक-यातना भोगनी पड़े, पर इस घर में आग लगा दूँ—कहीं चल दूँ।

कुन्ती दाँत पीस कर बोली—बहिन, कहती तो ठीक हो—परिस्थिति तो ऐसी ही है। तुम्हारा पिता मनुष्य नहीं, पिशाच है, राक्षस है। पर खेद इतना ही है कि हम स्त्रियाँ सामाजिक बन्धनों में इतनी जकड़ी हुई हैं कि हमारे लिए एक ओर कुआँ है तो दूसरी ओर खाई है—हम लोगों को हर तरफ़ दुख है।

सरला—खाई और कुआँ अधिक से अधिक प्राण ही ले सकते हैं, तो उसके लिए मैं कटिबद्ध बैठी हूँ। यदि मुझे मौत आ जाय तो मैं उसका स्वागत सच्चे हृदय से करने को तैयार हूँ।

कुन्ती—मौत इस प्रकार कैसे आ सकती है? मुँह माँगी तो मौत भी नहीं मिलती!

सरला—यही तो बात है। कभी-कभी आत्म-हत्या करने को जी बहुत मचलता है; पर आत्म-हत्या पाप है। और तुम्हारी यह बात भी मेरी समझ में आगई कि आत्म-हत्या करना महा कायरता है। पाप करने से मैं नहीं डरती, पर मैं यह सहन नहीं कर सकती कि कोई मुझे कायर कहे।

कुन्ती—सहन करो बहिन, सहन करो! हम हिन्दू-नारियों का गौरव इसी बात में है कि हम चुपचाप कष्ट सहन करती हैं; पर मुख से आह तक नहीं करतीं।

सरला—क्या गौरव है बहिन! हम शक्तिहीन हैं, अबला हैं, इसलिए कष्ट सहन करने के लिए विवश हैं। इसमें संसार चाहे गौरव कहे, चाहे जो कहे। गौरव तो तब होता, जब हम भी पुरुषों की तरह शक्तिपूर्ण और सबल होते हुए कष्ट सहन करतीं।

कुन्ती—नहीं बहिन, यह बात नहीं। यदि तुम कहीं निकल जाओ, भाग जाओ या कुकर्म करने पर कटिबद्ध हो जाओ, तो संसार की कोई शक्ति तुम्हें नहीं रोक सकती। परन्तु जब तुम ऐसा न करके चुपचाप कष्ट सहन करती हो, तो यह निस्सन्देह गौरव की बात है।

सरला एक दीर्घ निश्वास लेकर बोली—होगी, मैं तो इसमें कोई गौरव नहीं समझती।

३

शाम के पाँच बज चुके हैं। रोशनलाल अपने कमरे में कुछ मित्रों के साथ बैठे हुए गपशप लड़ा रहे हैं। एक व्यक्ति कह रहा है—भाई रोशन, इससे अच्छा तो यह है कि तुम विवाह कर डालो। तुम्हारे एक विधवा लड़की है, उसका जी बहलाने के लिए घर में एक दूसरी स्त्री हो जायगी।

रोशनलाल—विवाह ? विवाह अब क्या करूँगा।

दूसरा—क्यों, तुम्हारी वयस ही अभी कितनी है—चालीस-बयालीस बरस के होगे। इतनी उमर में तो लोग मज़े से विवाह करते हैं।

रोशनलाल—चालीस-बयालीस क्यों, पैंतालीस से ऊपर पहुँच चुका हूँ।

पहला—वह पैंतालीस ही सही, चालीस-पैंतालीस में कोई अधिक अन्तर नहीं है।

तीसरा—विवाह कर डालो, इस फेर में न पड़ो।

रोशनलाल—कहते तो ठीक हो, पर दुनिया नाम धरेगी।

पहला—कौन नाम धरेगा ? यदि इस उम्र में कोई विवाह न करता हो, तो नाम धरा जायगा।

रोशनलाल—हाँ, इस उम्र में लोग विवाह तो करते हैं।

दूसरा—हज़ारों विवाह होते हैं जी! इन बातों में क्या धरा है।

रोशनलाल—मैं तो तैयार हूँ, पर कहीं कुन्दन बुरा न माने।

कुन्दनलाल रोशनलाल के पुत्र का नाम था।

तीसरा—कुन्दन का इसमें क्या बनता-बिगड़ता है। वह अपना अलग खाता-कमाता है, परदेश में पड़ा रहता है—तुम्हारे काम आता है? कभी साल-छः महीने में चार-छः दिन को आ जाता है। उससे तो इतना भी न हुआ कि अपनी पत्नी को यहाँ छोड़ देता। तुम यहाँ अकेले रहते हो, यदि लड़की न होती तो तुम्हें तो समय पर भोजन भी न मिलता।

रोशनलाल—बात तो पक्की कहते हो। एक बार मैंने पन्द्रह दिन के लिए बहू को यहाँ रख लिया था, बस जनाब इतना ही उसे नागवार गुज़रा—झट आकर ले गया।

पहला—ख़ैर, आख़िर उस बेचारे को भी गृहस्थी के लिए एक स्त्री की आवश्यकता है ही, यदि उसने ऐसा किया तो कोई बेजा नहीं किया।

तीसरा—इसी दृष्टि से यदि तुम भी विवाह कर लोगे तो कोई बेजा न होगा। मान लो यदि लड़की अपनी ससुराल चली जाय तो तुम क्या करोगे?

रोशन—अपने हाथ से बनाऊँ-खाऊँगा और क्या करूँगा।

पहला—फिर यदि तुम विवाह करो तो कौन बुरी बात है ?

रोशन—यदि तुम लोगों की राय हो तो मैं तैयार हूँ।

पहला—अजब चोंच आदमी हो। हम तो कह ही रहे हैं—राय के क्या अर्थ ?

रोशनलाल—हाँ, लड़की का जी बहलने को एक स्त्री हो जायगी, वह बेचारी अकेली ऊबा करती है। उसकी दशा पर मुझे बड़ा तरस आता है। ईश्वर का उस पर इतना कोप न जाने क्यों हो गया ?

तीसरा—ख़ैर, यह तो किसी के बस की बात नहीं है, यह तो अपने-अपने कर्मों का भोग है।

रोशनलाल—और सुनिए, अभी पन्द्रह-बीस दिन हुए, मुहल्ले के रामेश्वरदयाल दो अन्य आदमियों को लेकर आए थे।

पहला—कौन रामेश्वरदयाल ?

रोशन—वही डिप्टी साहब के पुत्र, जो सड़क पर रहते हैं।

तीसरा—हाँ-हाँ, उन्हें तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ, एम० ए० में पढ़ते हैं।

रोशनलाल—हाँ, उनकी बहिन हमारी सरला के

पास आती-जाती है। वही अपने दो मित्रों को लेकर आए थे।

पहला—क्यों ?

रोशनलाल—मुझसे कहते थे कि अपनी लड़की का विवाह कर दो।

दूसरा—नाहीं।

रोशन—तुम्हारी क़सम ! मुझे बड़ा क्रोध आया।

तीसरा—बड़े चोंच आदमी हैं।

दूसरा—उन्हें तुमसे ऐसा कहते शर्म भी न लगी।

रोशन—आजकल की शिक्षा से शर्मोहया सब धुल जाती है। पूछिए, मैं उनके पिता के बराबर—मुझे कहने आए कि सरला का विवाह कर दो। उस पर तुर्रा यह कि सरला की भी ऐसी ही इच्छा है।

पहला—अरे नहीं।

रोशन—सच मानो, मैं झूठ कहूँगा ?

दूसरा—बड़े नामाक़ूल आदमी हैं।

तीसरा—भला लड़की उनसे ऐसा क्यों कहने लगी कि मेरा विवाह करा दो ?

रोशन—मैं क्या बताऊँ। मुहल्ले का लड़का था, इससे गम खा गया, दूसरा कोई होता तो बुरी तरह पेश आता।

दूसरा—और एम० ए० में पढ़ते हैं ?

रोशनलाल—जी हाँ, एम० ए० तक पढ़ कर यही लियाक़त पैदा की।

पहला—आपने लड़की से पूछा?

रोशन—क्या?

पहला—यही कि वह विवाह करना चाहती है।

रोशन—आप भी पूरे बौड़म हैं, मैं लड़की से पूछूँ कि विवाह करेगी या नहीं? ख़ासे रहे।

पहला—सम्भव है, उसने उनकी बहिन से कुछ कहा-सुना हो।

रोशन—अव्वल तो ऐसा सम्भव नहीं और यदि कहा भी हो, तो मैं ऐसी वाहियात बात मानने कब लगा—लड़की लाख कहा करे।

दूसरा—ठीक बात है! आजकल की लड़कियाँ जहाँ दो अक्षर लिख-पढ़ लेने लगीं—बस उनके दिमाग़ आसमान पर पहुँच जाते हैं। आपकी लड़की कुछ पढ़ी-लिखी है?

रोशनलाल—पढ़ी-लिखी तो है—मिडिल तक अङ्गरेज़ी और हिन्दी पढ़ी है—कई मासिक पत्र मँगाती है, समाचार-पत्र मँगाती है।

दूसरा—तब तो यदि उसने ऐसी इच्छा प्रकट की हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

रोशन—सम्भव है की हो, मैं इसे अस्वीकार नहीं

करता; परन्तु रामेश्वरदयाल को मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी। यदि लड़की ने कहलवाया था तो उससे कह देते कि वह स्वयम् कहे।

तीसरा—लड़की भला स्वयम् कैसे कह सकती है, और तुमसे—अपने पिता से?

रोशन—उसने ऐसे ही कह दिया होगा या रामेश्वर-दयाल की बहिन ने बहकाया होगा। वह उससे भी अधिक पढ़ी-लिखी है। इस साल एफ़० ए० की परीक्षा देने वाली है।

दूसरा—ठीक बात है, निश्चय यह बात उसी दुष्टा ने सुझाई होगी। यार! इन औरतों को पढ़ाना-लिखाना बड़ा ख़तरनाक है। इन पढ़ी-लिखी औरतों को घर में नहीं आने देना चाहिए। इनकी सङ्गति में भोली-भाली लड़कियाँ ख़राब हो जाती हैं।

रोशनलाल—इसीलिए मैं सोचता हूँ कि विवाह कर ही डालूँ। सम्भव है, अकेले रहने से लड़की का ऐसा विचार हुआ हो। अतएव इस प्रकार उसका यह विचार भी जाता रहेगा। उसे और कोई कष्ट नहीं। अच्छा से अच्छा खाती है, अच्छा से अच्छा पहनती है। कष्ट है तो यही कि घर में कोई दूसरी स्त्री नहीं है।

दूसरा—तब तो उस्ताद, तुम आँखें बन्द करके विवाह कर डालो—समझे?

रोशनलाल—पक्की बात है, कहीं बातचीत लगाओ।

पहला—अजी बातचीत एक नहीं पचास, पहले तुम तो तैयार हो जाओ।

रोशन—मैं तो तैयार हूँ, मेरी ओर से निश्चिन्त रहो।

दूसरा—तो विवाह भी तय समझो। मेरी रिश्तेदारी में कई लड़कियाँ हैं, मैं आज ही उन्हें पत्र लिखता हूँ। ईश्वर ने चाहा तो अगले महीने में विवाह हो जायगा।

रोशनलाल मुस्कराकर बोले—तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर!

४

रोशनलाल का विवाह हुए एक वर्ष के लगभग व्यतीत हो गया। रोशनलाल के इस विवाह का विरोध उनके पुत्र कुन्दनलाल ने बहुत किया; पर रोशनलाल ने उसकी एक न सुनी। फलतः कुन्दनलाल पिता के विवाह में सम्मिलित नहीं हुआ और विवाह होने के पश्चात् से उसने पिता के पास आना भी बन्द कर दिया। बेचारी सरला ने भी अपने क्षीण तथा दुर्बल स्वर से पिता के इस कार्य का विरोध किया था; पर पिता ने जब पुत्र की नहीं मानी तो अबला कन्या की क्या मानते!

रोशनलाल ने सोचा था कि विवाह हो जाने से सरला का जी बहलेगा; पर सौतेली माता के आने से उस बेचारी

का कष्ट दूना बढ़ गया। पहले वह स्वतन्त्र थी, पिता के अतिरिक्त अन्य कोई उस पर शासन करने वाला न था; परन्तु अब एक उसी की समवयस्क स्त्री उस पर शासन करने लगी। और शासन भी कैसा? अत्यन्त कठोर! अभागी सरला के दुख का पारावार न था। दिनभर बेचारी सौतेली माता के कठोर शासन-दण्ड की मार खाती रहती थी। रात को माता-पिता अलग जा पड़ते थे और वह अकेली पड़ी अपने दुर्भाग्य पर रोया करती थी। एक दिन वह कुन्ती के घर गई। वहाँ एकान्त में बैठकर उसने कुन्ती से कहा—बहिन, अभी तक तो तुम्हारे उपदेश के अनुसार जैसे बना तैसे सहन किया; पर अब नहीं सहा जाता। एक तो जिसे बात करने का सलीक़ा नहीं, उसे माता कहना पड़ता है, उसकी आज्ञा माननी पड़ती है। ख़ैर, यह भी कोई अधिक कष्ट की बात न थी। जब माता के पद पर है तो चाहे जैसी हो, उसका आदर करना मेरा कर्त्तव्य ही है। पर वह मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार करती है, ऐसे कटुवचन कहती है कि उसके वाक्-बाणों से हृदय तिलमिला उठता है। बात-बात में "अभागी राँड—ख़सम को खा बैठी" कहती है। यह वाक्य तो उसकी प्रत्येक बात के साथ रहता है। मैं तो उस दशा में ही समझती थी कि मुझे घोर कष्ट है, पर अब जो मैं देखती हूँ तो यही समझ पड़ता है कि उस

दशा में मैं इस दशा से हज़ार दर्जे अच्छी थी। पिता जी भी उसी का पक्ष लेकर मुझे खरी-खोटी सुनाते रहते हैं। एक दिन बोले—"मैंने तेरे ही लिए विवाह किया—सोचा था कि तेरा जी बहलेगा, सो तू उससे दुर्व्यवहार करती है। तू अकेले ही सारे घर की मालिकिन बनकर रहना चाहती थी, इसीलिए तुझे इसका आना बुरा लगा।" पिता की यह बात सुन कर मुझे जितना दुख हुआ, वह मैं तुमसे कह नहीं सकती। तुम मेरी पथ-प्रदर्शिका हो, तुम्हारी ही बात मान कर मैंने आज तक सहन किया, पर अब तो ये बातें सहनशक्ति की सीमा उल्लङ्घन कर गईं—अब नहीं सहा जाता, बताओ क्या करूँ?

इतना कह कर सरला व्याकुल होकर रोने लगी। कुन्ती कुछ क्षणों तक स्तम्भित बैठी रही। उसकी समझ में न आया कि सरला को क्या कहकर सान्त्वना दे। अन्त में उसने कहा—बहिन सरला, ईश्वर का ही तुम पर कोप है। तुम्हारे लिए वह कष्ट ही क्या कम था, जो ईश्वर ने यह कष्ट और दिया। तुम्हारा पिता तुम्हारा पिता नहीं, घोर शत्रु है; ऐसे पिता से तो ईश्वर अनाथ ही उत्पन्न करे—यही अच्छा है। बहिन, मेरे पास तो तुम्हारे लिए ये ही शब्द हैं कि—"धैर्य धरो!" मैं यह बात समझती हूँ कि इस अवसर पर मेरे इन शब्दों का कुछ मूल्य नहीं है, पर इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं

कह सकती। समाज की बलि-वेदी पर तुम्हारा और तुम्हारी ही सी अनेक देवियों का बलिदान हो रहा है— याद रक्खो, यह बलिदान निरर्थक नहीं जायगा। तुम देवियों के आँसू समाज की कुरीति-कालिमा को धोकर बहा देंगे।

सरला ने नेत्र पोंछते हुए कहा—इस प्रकार सिसक-सिसक कर मरने से तो एक बार बलिदान हो जाना कहीं अच्छा है।

कुन्ती—पर यह अपने हाथ की बात तो नहीं है। हाय! कितना अनर्थ है, कितना घोर अन्याय है। वृद्ध पिता तो विवाह करके रँगरेलियाँ मचाता है और युवती-कन्या विधवा रहकर घोर कष्ट तथा यातनाएँ सहती है। ओ हिन्दू-समाज! तुझ पर वज्रपात क्यों नहीं होता, तू रसातल में क्यों नहीं धँस जाता?

सरला—बहिन, ऐसी दशा में तो मैं अधिक दिनों तक नहीं जीऊँगी।

कुन्ती ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। मन में बोली— तेरी-जैसी दुखिया का मरना ही भला है!

सरला—एक बात और है बहिन!

कुन्ती—वह क्या?

सरला—मेरी यह माता—क्या कहूँ, माता कहते

लज्जा लगती है—घर के नौकर से बहुत हँसती-बोलती है, उसकी बड़ी ख़ातिर करती है।

कुन्ती ने विस्मित होकर कहा—सच ?

सरला—क्या तुम झूठ मानती हो ?

कुन्ती—नहीं, तू मेरे से काहे को झूठ बोलेगी। यदि यह बात है तो एक दिन तेरे पिता के पापों का प्रायश्चित्त होगा—यह तू निश्चय समझ। यह बुढ़ापे के ब्याह का परिणाम है। तूने अपने पिता से यह बात कही ?

सरला—पिता से कह कर मैं अपनी मिट्टी पलीद कराऊँ ? साधारण बातें तो वह सुनते ही नहीं, यह बात भला क्यों मानेंगे, उलटे मेरी दुर्गति करेंगे।

कुन्ती—अच्छी बात है, तू चुप रह—जो कुछ हो रहा है, होने दे।

सरला—एक दिन मैंने कहा कि माता जी, नौकर से इस प्रकार हसा-बोला न करो। पिता जी सुनेंगे तो नाराज़ होंगे। बस, उसी दिन से वह और भी कटु व्यवहार करने लगीं।

कुन्ती—ठीक है। मैं सब समझ गई। अब तू चुप चाप धैर्य रखकर तमाशा देख।

सरला—क्या तमाशा देखूँ बहिन, मेरी तो हर तरह मुश्किल है।

कुन्ती—ख़ैर, जहाँ इतने दिनों धैर्य रक्खा, वहाँ थोड़े दिनों और सही। देख, ईश्वर क्या करता है!

सरला—बस, अब ईश्वर मुझे उठा ले—यही सबसे अच्छा है।

उपरोक्त घटना के एक मास पश्चात् एक दिन प्रातःकाल सोकर उठने पर सरला ने अपनी विमाता को घर में न पाया। उसने पिता से जाकर पूछा—पिता जी, माता जी कहाँ हैं?

रोशनलाल ने कहा—कहीं घर में होगी और कहाँ जायगी।

सरला—घर में तो नहीं है, मैंने सब जगह ढूँढ़ लिया।

रोशनलाल—नहीं है! कहाँ गई?

सरला—मैं क्या जानूँ।

इसी समय घर की दासी आकर बोली—आज अभी तक दीनू (नौकर) भी नहीं दिखाई पड़ा—न जाने कहाँ चला गया।

सरला का कलेजा धक् से हुआ, उसने नेत्र विस्फारित करके कहा—दीनू नहीं है?

दासी—नहीं, मैंने सब जगह ढूँढ़ लिया। रोशनलाल की आँखों तले अँधेरा छा गया, उन्होंने घबरा कर कहा—यह मामला क्या है?

दासी बोली—जान पड़ता है, मालकिन दीनू के साथ भाग गईं। कल रात को दोनों अकेले में कुछ सलाह कर रहे थे।

रोशनलाल बोले—क्या बकती है, ऐसा नहीं हो सकता।

मुख से तो रोशनलाल ने यह कहा, परन्तु उनके हृदय में किसी ने कहा—दासी ठीक कहती है।

वह तुरन्त उस कोठरी में गए, जहाँ घर का मूल्यवान् असबाब रहता था। वहाँ जाकर देखा—सन्दूक़ खुला पड़ा है।

रोशनलाल यह देखते ही धसक कर बैठ गए। सरला ने सन्दूक़ को भली-भाँति देखकर कहा—पिता जी, गहनों का बक्स भी नहीं है।

रोशनलाल के मुख से केवल इतना निकला—'ले गई, गहने भी ले गई।' इतना कहकर वह धड़ाम से चित गिरे और बेहोश हो गए।

रोशनलाल के हृदय पर इस दुर्घटना का ऐसा धक्का लगा कि फिर वह उठ कर खड़े न हुए। उस दिन से उन्हें ज्वर आने लगा और पन्द्रह दिनों के अन्दर ही मरणासन्न हो गए। सरला ने यथाशक्ति पिता की बहुत सेवा-शुश्रूषा की; पर सब व्यर्थ गई। रोशनलाल का पुत्र कुन्दनलाल भी आ गया था। रोशनलाल का अन्त समय था।

उसकी शय्या के निकट सरला, कुन्दनलाल, कुन्ती, रामेश्वरदयाल इत्यादि बैठे थे। मरने के पूर्व रोशनलाल ने रामेश्वरदयाल से कहा—बेटा रामेश्वरदयाल, मेरा कहा-सुना क्षमा करना—मैं अब जा रहा हूँ। तुमने भी मेरे विवाह करने पर बड़ी आपत्ति की थी; पर मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी।

रामेश्वरदयाल बोले—रोशनलाल, आप मुझसे क्षमा न माँगिए, इस देवी से क्षमा माँगिए। इसने अनेक कष्ट और यातनाएँ भोग कर भी कोई बात ऐसी नहीं की, जो कुल पर कलङ्क-कालिमा लगाती। अपनी दूसरी पत्नी से इसकी तुलना करके देखिए और सोचिए कि इसकी इच्छा रहने पर भी आपने इसका पुनर्विवाह नहीं किया, परन्तु फिर भी यह सच्चरित्र रही।

रोशनलाल ने आँखें फाड़ कर सरला की ओर देखा और बोले—बेटी, अपने पैर इधर ला—तेरे पैरों की धूल मस्तक पर लगाऊँ, निश्चय तू देवी है। तुझे कष्ट पहुँचाने के कारण ही आज मैं इस प्रकार अपमानित और लज्जित होकर मर रहा हूँ। निश्चय ही सच्चरित्र विधवाएँ हिन्दू-जाति का गौरव हैं, भूषण हैं, देवियाँ हैं। ओफ़! मैंने बड़ी भूल की। आह! यदि मुझे कुछ दिनों के लिए भी जीवन मिल जाय तो मैं अपनी इस भूल का उपयुक्त प्रायश्चित्त कर डालूँ! ला बेटी, ला! अपने पैरों की धूल

मेरे माथे पर लगा दे—कदाचित् इसी पवित्र विभूति से मेरी आत्मा को शान्ति मिल जाय।

सरला ने इसका कोई उत्तर न दिया, चुपचाप खड़ी रोती रही।

रोशनलाल पुनः बोले—नहीं-नहीं, मेरा पापी मस्तक इस योग्य नहीं कि तेरे पैरों की पवित्र धूल से उसका स्पर्श हो। बेटा कुन्दन! तेरी बात भी मैंने नहीं मानी, तू भी मुझे क्षमा कर—सच्चे जी से क्षमा कर।

कुन्दनलाल आँसू पोंछते हुए बोला—पिता जी, ये बातें रहने दो—ईश्वर का नाम लो।

रोशनलाल—मैं किस मुँह से ईश्वर का नाम लूँ। देख बेटा, मेरी एक बात सुन! यह मेरी अन्तिम इच्छा है—अन्तिम अभिलाषा है! बोल, मानेगा?

कुन्दन—अवश्य मानूँगा, पिता जी कहिए।

रोशनलाल—किसी अच्छे पात्र को ढूँढ़ कर सरला का विवाह उससे कर देना—यही मेरा अन्तिम इच्छा है।

कुन्दन—अच्छी बात है, अवश्य कर दूँगा।

कुन्दनलाल के वाक्य सुनते ही रोशनलाल ने एक आह ली और सदैव के लिए चुप हो गया।

स्वेच्छाचारिता

स्वेच्छाचारिता

सरस्वती देवी चौहान की अवस्था इस समय १६ वर्ष के लगभग है। वह आजकल थर्ड-इयर में पढ़ती हैं। उनके पिता ठाकुर रिपुदमनसिंह चौहान नगर के एक अग्रगण्य वकीलों में हैं। ठाकुर साहब के इस कन्या के अतिरिक्त अन्य कोई सन्तान नहीं है। अतएव उन्होंने सरस्वती का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से किया है। सरस्वती को उच्च शिक्षा देने का सङ्कल्प उन्होंने इसी कारण से किया है कि वह उनकी एकमात्र सन्तान है। उनके कुछ पुराने विचार के नाते-रिश्तेदारों ने उनके इस सङ्कल्प पर बहुत नाक-भौं चढ़ाई थी, क्योंकि वे लड़कियों को अङ्गरेज़ी की उच्च शिक्षा देना पाप समझते हैं; परन्तु ठाकुर साहब ने उनकी कुछ भी परवा न करके सरस्वती को शिक्षा देने का कार्य जारी रक्खा। सरस्वती देवी का नख-शिख सौन्दर्यपूर्ण है।

सरस्वती देवी के साथ ही निर्मला देवी नाम की एक अन्य लड़की पढ़ती है। इसकी वयस भी १९-२० वर्ष के लगभग है। सरस्वती तथा निर्मला में बहुत स्नेह है। शाम के सात बज चुके हैं। सरस्वती अपने निजी कमरे में

बैठी हुई निर्मला से बातें कर रही है। बातें वही कॉलेज सम्बन्धी हो रही हैं। थोड़ी देर तक तो दोनों प्रोफ़ेसरों तथा लेक्चरारों के सम्बन्ध में टीका-टिप्पणी करती रहीं। हठात् बात का रुख़ बदल कर सरस्वती ने निर्मला से पूछा—सोमेश्वरप्रसाद से तुम्हारी बड़ी गहरी मित्रता है।

निर्मला ने किञ्चित् मुस्करा कर पूछा—गहरी मित्रता से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?

"मित्रता से मेरा मतलब शुद्ध तथा पवित्र मित्रता से है।"

"हाँ, मैं मानती हूँ—मेरी उनकी मित्रता है।"

"आदमी तो अच्छा मालूम होता है। देखने-सुनने में भी अच्छा है, पढ़ने-लिखने में भी तेज़ है।"

निर्मला ने गम्भीर होकर कहा—बड़ा अच्छा आदमी है। मैं उसे बहुत पसन्द करती हूँ।

"मुझे वह बड़े ग़ौर से देखा करता है—यद्यपि वह मुझसे बातचीत करना चाहता है, पर उसका साहस नहीं पड़ता।"

"तो क्या हुआ, इसमें क्या हर्ज है ?"

"हर्ज की बात मैं नहीं कहती, मैं केवल तुम्हें बताती हूँ कि वह मुझसे मित्रता पैदा करना चाहता है।"

"यदि ऐसी बात है, तो उन्हें मुझसे कहना चाहिए

था—मेरी तुम्हारी घनिष्ठता है, यह बात वह भली-भाँति जानते हैं।"

"कदाचित् उन्होंने इसलिए न कहा हो कि तुम्हें कुछ ईर्ष्या हो।"

"क्यों? मुझे क्यों ईर्ष्या होने लगी? क्या तुम समझती हो कि मेरा उनका प्रेम-सम्बन्ध है?"

"यह सम्भव है कि तुम उनसे प्रेम न करती हो, पर तुम क्या यह निश्चयपूर्वक कह सकती हो कि वह तुमसे प्रेम नहीं करते?"

निर्मला चुप हो गई। सरस्वती ने मुस्करा कर कहा—जान पड़ता है तीर ठीक निशाने पर लगा है।

निर्मला मुस्करा कर कुछ झेंपती हुई बोली—तुम बड़ी चतुर हो सरस्वती! किस मज़े से धीरे-धीरे सब बातें जानना चाहती हो।

"मैं समझती हूँ कि तुम्हारे मन की बातें जानने का मुझे अधिकार है—अन्यथा हमारी तुम्हारी मित्रता बिलकुल व्यर्थ है।"

"ठीक कहती हो। अतएव मैं तुम्हें बताती हूँ कि सोमेश्वरप्रसाद के व्यवहार से यह पता चलता है कि वह मुझसे विवाह करना चाहता है।"

सरस्वती ने सिर हिलाते हुए कहा—यह बात है? मैं तो पहले ही समझ गई थी। पुरुष अपना प्रेम-भाव पुरुष

से भले ही छिपा ले, पर स्त्री से कभी नहीं छिपा सकता। पुरुष की प्रेम-दृष्टि को स्त्री तुरन्त ताड़ जाती है।

"ख़ैर, वह मुझसे प्रेम करता हो चाहे न करता हो, परन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मैं उससे प्रेम नहीं करती।"

सरस्वती ने नेत्र विस्फारित करके कहा—अच्छा! क्या ऐसी बात भी है?

"हाँ, ऐसी ही बात है। क्यों, तुम्हें आश्चर्य क्यों हुआ? क्या यह आवश्यक है कि मैं उससे प्रेम करूँ?"

"नहीं, आवश्यक तो नहीं है; परन्तु तुम्हारी उनकी मित्रता देख कर यह भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि तुम्हारा उनका प्रेम है।"

"मेरी उसकी मित्रता है। वह बहुत ही भला और नेक आदमी है, तीव्र बुद्धि और विचारशील है। इसलिए मैं उससे मित्रता रखने में कोई हानि नहीं समझती। परन्तु मैं उससे विवाह करने के लिए प्रस्तुत होऊँगी—इसमें अभी मुझे सन्देह है। दूसरे मैं अपनी इच्छानुसार विवाह करने के लिए स्वतन्त्र भी नहीं हूँ।"

"क्यों?"

"माता-पिता के रहते हुए मैं अपना पति स्वयम् कैसे चुन सकती हूँ? हम लोग ईसाई तो हैं नहीं।"

सरस्वती ने घृणा से मुँह बना कर कहा—इससे क्या होता है। हम लोग अशिक्षित तो हैं नहीं, जो अपना पति चुनने में ग़लती करें। हम लोग अपना भला-बुरा भली-भाँति समझती हैं। मैं अपने लिए तो शायद कभी अच्छा न समझूँगी कि मैं अपने विवाह की समस्त ज़िम्मेदारी अपने पिता पर छोड़ दूँ। कम से कम यह तो मैं स्वयम् निर्णय करूँगी कि मैं किससे विवाह करूँ।

निर्मला बोली—हाँ, तुम ऐसा कर सकती हो—तुम अपने पिता की एकलौती और दुलारी हो। तुम्हें सुखी करने के लिए वह, बहुत सम्भव है, तुम्हारी बात मान लें; परन्तु मेरे यहाँ ऐसा होना कठिन है।

"यह तो तुम्हारे अपने वश की बात है। यदि तुम चाहो तो तुम भी ऐसा कर सकती हो। यदि हमारे पिता हमें इतनी उच्च शिक्षा देने के पश्चात् हम लोगों से यह आशा करें कि हम—भेड़-बकरी की तरह—जिसे सौंप देंगे, उसके साथ हो लेंगी, तो उनकी यह बहुत बड़ी ग़लती है।"

"परन्तु हमारे पिता, जो हमें सुशिक्षित बनाने की प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं, इतने अज्ञ नहीं हैं जो हमें किसी अयोग्य व्यक्ति के साथ कर दें।"

"अयोग्य और योग्य का प्रश्न नहीं है। बड़े से बड़ा

योग्य व्यक्ति भी ऐसा हो सकता है जिससे हम विवाह करना पसन्द न करें। ऐसे बहुत से पुरुष हैं जिन्हें हम बहुत योग्य समझती हैं, उनका आदर करती हैं। हम उन्हें अपना मित्र, शुभ-चिन्तक, भाई बनाने के लिए सहर्ष तैयार हैं; परन्तु यदि कहा जाय कि हम उनमें से किसी से विवाह करके उसे अपना पति बनावें तो कदा-चित् इसके लिए हम कभी भी तैयार न होंगी। प्रोफ़ेसर ××× कितने योग्य आदमी हैं। उनकी विद्वत्ता तथा पाण्डित्य के कारण, कम से कम मैं, उन्हें बहुत ही आदर की दृष्टि से देखती हूँ, परन्तु यदि मुझसे पूछा जाय कि मैं उनसे विवाह कर सकती हूँ या नहीं, तो मैं साफ़ इनकार कर दूँगी। मनुष्य की हैसियत से वह एक रत्न हैं, पर पति की हैसियत से, हुँः! वह एक अच्छे पति कभी नहीं हो सकते—कम से कम मेरा ऐसा ही विचार है। अतएव ऐसी दशा में हमें अपना पति चुनने का कार्य स्वयम् ही करना चाहिए। जब तक हमें यह विश्वास न हो जाय कि जिससे हमारा विवाह हो रहा है, उससे हम प्रेम करती हैं तब तक हमें विवाह के लिए कभी भी तैयार न होना चाहिए।"

नर्मला बोला—हिन्दुओं में अधिकतर स्त्रियाँ विवाह के पहले अपने पति से प्रेम नहीं करतीं, वरन् विवाह के पश्चात् उनसे प्रेम करना सीख जाती हैं।

"अच्छा, तो क्या प्रेम करना सीखा भी जा सकता है ?"

"हिन्दुओं में तो वह अभी तक सीखा ही जाता है। विवाह के पूर्व पति-पत्नी एक दूसरे की सूरत भी नहीं देखने पाते। विवाह होने के पश्चात् जब वे परस्पर मिलते हैं, तब क्रमशः वे एक दूसरे से प्रेम करना सीख जाते हैं।"

सरस्वती अट्टहास करके बोली—यह नई बात सुनी।

"नई नहीं, यह बहुत पुरानी बात है। यदि तुम्हें इतिहास का ज्ञान हो तो तुम्हें मालूम होगा कि जब से यहाँ स्वयम्बर की प्रथा बन्द हुई है तब से ऐसा ही होता आया है और अब तक हो रहा है।"

"परन्तु यह ग़लत है—ऐसा नहीं होना चाहिए। यह तभी से हुआ जब से कि स्त्रियाँ अशिक्षित रक्खी जाने लगीं। जिस काल में स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं उस काल में स्वयम्बर होते थे। यूरोप की स्त्रियाँ शिक्षित हैं, इसलिए वह अपना पति स्वयम् चुनती हैं। जहाँ स्त्रियाँ शिक्षित होंगी, वहाँ ऐसा ही होगा। और सच पूछो तो विवाह की सफलता इसी पर निर्भर है कि वर तथा वधू विवाह के पूर्व एक दूसरे से भली-भाँति परिचित हो जायँ।"

"यह बात मैं नहीं मानती। यूरोप आदि में कोर्टशिप होने के पश्चात् विवाह होने पर भी कितने तलाक़ होते हैं—हिन्दुओं में तलाक़ का नाम भी नहीं है।"

"इसी कारण हिन्दू-स्त्रियाँ अयोग्य पति मिलने से जन्म भर दुख झेलती रहती हैं।"

"न कहीं! अधिकतर तो यही देखने में आता है कि हिन्दू-स्त्रियाँ घर की रानी बन कर रहती हैं। अच्छा, अब बहुत समय होगया, अब घर जाऊँगी।"—यह कह कर निर्मला विदा हुई।

२

सरस्वती देवी सोमेश्वरप्रसाद से परिचय प्राप्त करने के लिए बहुत उत्सुक हो उठीं। वह पहले ही से सोमेश्वर-प्रसाद के सौन्दर्य तथा उसके गुणों के कारण उस पर मुग्ध-सी थीं। यद्यपि निर्मला के द्वारा वह उससे परिचित हो सकती थीं; परन्तु इस ढङ्ग को वह उचित नहीं समझती थीं। अतएव एक दिन उन्होंने कॉलेज से निकलते समय, जब कि सोमेश्वर उनके पास से होकर निकला, अपने हाथ की पुस्तकें भूमि पर गिरा दीं। पाश्चात्य शिष्टता के अनुसार सोमेश्वर ने झट उनकी पुस्तकें भूमि पर से उठा कर उनके हाथों में दे दीं। सरस्वती देवी ने 'धन्यवाद!' कह कर पुस्तकें ले लीं। उसी दिन से दोनों का परस्पर परिचय हो गया। क्रमशः दोनों में मित्रता हो गई। अब बहुधा सोमेश्वर कॉलेज से छुट्टी होने के पश्चात् सरस्वती देवी को उनके घर तक पहुँचाने जाता है। निर्मला ने इस बात को बड़े ध्यान से देखा और समझा। इससे उसे

अपने लिए ज़रा भी क्लेश न हुआ ; परन्तु उसे दोनों की दशा पर कुछ हँसी अवश्य आई ।

एक दिन निर्मला ने सरस्वती देवी से बातों ही बातों में कहा—आजकल सोमेश्वर तुम्हारे ईर्द-गिर्द बहुत रहता है—क्या बात है ?

"तुम्हें ईर्ष्या होती है क्या ?"—सरस्वती देवी ने किञ्चित् रुखाई से पूछा ।

"ज़रा भी नहीं, वरन् मेरा पिण्ड छूटा ।"

"ख़ैर, तब तो तुम्हें लाभ ही पहुँचा ।"

"निस्सन्देह ! परन्तु तुम्हें उसकी मित्रता से कुछ लाभ पहुँचेगा या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है !"

सरस्वती देवी भृकुटी चढ़ा कर बोलीं—इससे तुम्हारा क्या तात्पर्य है ? क्या तुम समझती हो कि मैंने अपने किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए × × ×।

निर्मला बात पूरी होने के पूर्व ही बोल उठी—नहीं-नहीं, मेरा यह तात्पर्य नहीं है। मेरा मतलब यह है कि वह ऐसा आदमी है जो कभी किसी से वफ़ा नहीं कर सकता । जानना चाहती हो ?

"हाँ-हाँ, यदि तुम बताने में कोई हर्ज न समझो ।"

"मेरा कोई हर्ज नहीं है; परन्तु यह भय अवश्य है कि कहीं तुम मेरी बात के कुछ अर्थ न लगाओ ।"

सरस्वती देवी हँस कर बोलीं—नहीं, जो अर्थ तुम समझाओगी मैं उसे ही मान लूँगी।

"यह तो तुम जानती हो कि सोमेश्वर मुझसे प्रेम करता था?"

"तुम्हीं कहती थीं।"

"ख़ैर, यह तो तुम देखती ही थीं कि वह बहुधा उसी प्रकार मुझसे मिलता-जुलता रहता था, जिस प्रकार तुमसे आजकल मिलता-जुलता है।"

"हाँ, यह बात तो देखती थी।"

"उसने अपने व्यवहार से मुझ पर यह असर डालने की पूरी चेष्टा की थी कि वह मुझसे सच्चे जी से प्रेम करता है। ईश्वर को धन्यवाद है कि मेरे हृदय में उसके प्रति प्रेम की भावना कभी भी उत्पन्न नहीं हुई। यदि हुई होती तो आज क्या परिणाम होता?"

"क्या परिणाम होता?"

"तुम स्वयम् सोच सकती हो। जब कि आज वह मुझसे अलग रहने की चेष्टा करता है और तुम्हारे साथ रहता है। यदि मैं उससे प्रेम करती होती तो आज मुझे कितना घोर दुख होता। उसके इस व्यवहार से मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया होता।"

सरस्वती देवी मौन रहीं, उनके हृदय ने निर्मला की बात का समर्थन किया।

"यदि तुम भी मेरी तरह उससे प्रेम नहीं करतीं तब तो ठीक है—अन्यथा मुझे भय है कि कहीं तुम्हें निराशा न हो। जो व्यक्ति कल तक मुझसे प्रेम करने का ढोंग रचे हुए था, वह आज मेरी ओर देखना भी नहीं चाहता। ऐसे आदमी का क्या विश्वास? सरस्वती, मैं तुम्हें सोमेश्वर की ओर से सचेत करती हूँ।"

सरस्वती ने मुस्करा कर कहा—निर्मला, मैं तुम्हारी इस चेतावनी के लिए तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। परन्तु साथ ही तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मेरी उसकी केवल साधारण मित्रता है।

"तुम्हारी बातों से उस दिन मुझे यह पता चला था कि तुम अपना पति स्वयम् चुनोगी। यदि ऐसा ही हुआ तो मुझे यह जानकर प्रसन्नता और सन्तोष होगा कि जिसे तुमने अपना पति बनाना तय किया है वह सोमेश्वर नहीं है।"

"निर्मला! मैं अबोध नहीं हूँ, मैं भी ये बातें समझती हूँ"—सरस्वती ने अभिमानपूर्वक कहा।

"यह मैं जानती हूँ और इसीलिए मैंने अभी तक तुमसे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा था। यदि मैं यह समझती कि तुम भावुकता में बह जाओगी तो मैं उसी समय तुम्हें सचेत कर देती।"

इसके पश्चात् थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके

निर्मला चली गई। निर्मला के चले जाने पर सरस्वती अपने ही आप मुस्करा कर सिर हिलाते हुए बोली—निर्मला, मैं तुम्हें ख़ूब समझती हूँ। यह मत समझना कि मैं तुम्हारी इस शुभचिन्ता की ओट में छिपे हुए तुम्हारे स्वार्थ को नहीं देख सकी। सोमेश्वर मेरी ओर क्यों आकृष्ट हुआ, इसका कारण तो स्पष्ट है। मैं तुमसे अधिक सुन्दर हूँ, तुमसे अधिक बुद्धिमान् हूँ, तुमसे सब बातों में श्रेष्ठ हूँ। सोमेश्वर बुद्धिमान् है, रत्न-पारखी है; इसलिए उसने तुम्हें त्याग कर मेरी ओर चित्त लगाया है—उत्तम वस्तु की ओर आकर्षित होना मनुष्य का स्वभाव है। इसके ये अर्थ निकालना कि सोमेश्वर दग़ाबाज़ है, विश्वासघाती है—या तो निरी मूर्खता है या इसके भीतर कुछ रहस्य है। मैं समझती हूँ, तू इस प्रकार मेरे हृदय में उसके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करा कर मेरा उसका मनोमालिन्य कराना चाहती है, जिससे वह पुनः तेरे अधिकार में हो जाय। परन्तु मैं तुझे विश्वास दिलाती हूँ कि ऐसा कदापि न होने पाएगा।

इस प्रकार सरस्वती बड़ी देर बैठी बड़बड़ाती रही तथा अपने ही आप हँसती रही।

३

उपर्युक्त घटना हुए दो वर्ष व्यतीत हो गए। सरस्वती

देवी ने बी० ए० पास करने के पश्चात् सोमेश्वरप्रसाद के साथ विवाह कर लिया। सोमेश्वरप्रसाद के साथ विवाह करने में उसे कितनी कठिनाइयाँ पड़ीं, इसका वर्णन करना व्यर्थ है। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस सम्बन्ध में उसने अपने माता-पिता से खुली बग़ावत की—अन्त में उसने यहाँ तक धमकी दी कि यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो वह घर छोड़ देगी। वह अब इस योग्य हो गई है कि अपना उदर-पोषण कर सके, अतएव अब वह केवल इसलिए अपनी अभिलाषाओं की हत्या नहीं कर सकती कि उसके माता-पिता उसका पालन-पोषण करते हैं। ठाकुर रिपुदमनसिंह ने अपने भाग्य को दोष देते हुए सरस्वती देवी का कहना किया और उसका विवाह सोमेश्रप्रसाद से कर दिया।

विवाह के पश्चात् दो वर्ष तक तो दम्पति का समय बड़े सुख से कटा। इस बीच में सोमेश्वरप्रसाद ने प्रथम श्रेणी में एम० ए० की परीक्षा पास की। इसके परिणाम-स्वरूप उन्हें रेलवे में ए० टी० एस० का पद मिला। यद्यपि उन्हें डिप्टी-कलेक्टरी भी मिल सकती थी, परन्तु उन्होंने रेलवे की नौकरी अधिक पसन्द की—उनका विचार था कि रेलवे में उन्नति करने का सुअवसर अधिक है।

इस प्रकार कुछ दिन और व्यतीत हुए। एक दिन सोमेश्वरप्रसाद कहीं से एक यूरोपियन युवती को अपने

साथ लेकर घर आए। पहले उन्होंने उसका परिचय सरस्वती देवी से कराया। बोले—यह मिस्टर नॉर्मन, जो पञ्जाब-मेल के गार्ड हैं, की कन्या हैं। सरस्वती देवी को यह बात यद्यपि बुरी लगी, परन्तु शिष्टता के नाते उन्होंने उस समय मिस नॉर्मन का अच्छा आदर-सत्कार किया। उसके विदा हो जाने पर सरस्वती देवी ने सोमेश्वर से कहा—क्या तुम समझते हो कि तुम्हारा यह कार्य उचित था?

सोमेश्वर ने पूछा—कौन सा कार्य?

"यही, मिस नॉर्मन को यहाँ लाने का।"

"क्यों, क्या हर्ज था?"

"तुम एक उच्च पदाधिकारी हो। तुम्हारे सामने एक गार्ड की बहुत ही साधारण स्थिति है। तुम उसके अफ़सर हो, वह तुम्हारा मातहत। ऐसी दशा में उसकी कन्या के साथ तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा नहीं मालूम होता।"

"सोमेश्वर भृकुटी चढ़ा कर बोले—क्यों नहीं अच्छा मालूम होता? मिस नॉर्मन बहुत ही शिष्ट तथा सुशिक्षित हैं। ऐसी दशा में उनको यहाँ लाना कौन पाप हो गया?"

"यहाँ शिक्षा का प्रश्न नहीं है—यहाँ अपनी स्थिति का प्रश्न है। तुम्हें एक साधारण गार्ड की लड़की के साथ इस

तरह घूमना-फिरना और उसे घर पर निमन्त्रित करना शोभा नहीं देता। यदि तुम्हारे सहकारी तथा अफ़सर यह देखेंगे, तो उनके हृदय में तुम्हारी क्या इज़्ज़त रहेगी ?"

"सहकारियों और अफ़सरों को मेरे प्राइवेट मामलों से क्या सरोकार ? अपने कर्त्तव्यपालन में मैं कोई त्रुटि करूँ तो वह कह सकते हैं—इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते।"

"यह मैं भी जानती हूँ; पर अपने मन में तो तुम्हारे इस कार्य को अनुचित × × ×"

"समझा करें—इसकी मुझे कोई परवा नहीं।"

"नहीं, इस प्रकार दूसरों के विचारों को ठुकरा देना ठीक नहीं—विशेषतः जब कि तुम्हें उनके साथ रह कर काम करना है। मनुष्य एक ग़ैर-आदमी की भावनाओं को, उसके विचारों को, ठुकरा सकता है; परन्तु जिनके साथ वह कार्य करता है, अपने समय का अधिक भाग व्यतीत करता है, उनकी भावनाओं का ख़्याल रखना पड़ता है।"

सोमेश्वर भृकुटी चढ़ा कर बोले—मैं समझता हूँ, यह तुम उन लोगों की भावना की रक्षा के लिए नहीं, वरन् अपनी भावना की रक्षा के लिए कह रही हो।

अब सरस्वती देवी को भी आवेश हो आया। उन्होंने

कहा—यदि कहती हूँ तो क्या बुरा करती हूँ? मुझे ऐसा करने का पूरा अधिकार है। मैं एक ए० टी० एस० की पत्नी हूँ, मैं एक साधारण गार्ड की कन्या अथवा पत्नी से कभी मित्रता नहीं जोड़ सकती—चाहे वह यूरोपियन हो, चाहे अमेरिकन।

"ओफ़-ओह! इतना घमण्ड! वह गार्ड की कन्या है तो क्या बुरा है—गार्ड की कन्या होना कोई पाप नहीं है।"

"तो गार्ड की कन्या से घनिष्ठता करना भी कोई पुण्य नहीं है।"

"वह चाहे जो कुछ हो, परन्तु वह यूरोपियन है और पढ़ी-लिखी है।"

"तुम इस समय बिलकुल हिन्दुस्तानी, काले आदमी, की सी बातें करते हो, यह बड़ी लज्जा की बात है। तुम समझते हो कि एक यूरोपियन कन्या से मित्रता होना बड़े सौभाग्य की बात है—चाहे वह बावर्चिन ही क्यों न हो। परन्तु यदि तुम अपने सहकारी किसी यूरोपियन से पूछो कि वह एक गार्ड की कन्या से मित्रता करना कैसा समझता है, तो तुम्हें ज्ञात होगा कि गार्ड की कन्या की क्या हैसियत है। मैं दावे के साथ कहती हूँ कि कोई भी यूरोपियन ऑफ़िसर इसे अच्छा न समझेगा।"

"मैं इसे नहीं मानता और न इस पर कोई वाद-विवाद करने के लिए तैयार हूँ।"

"मैं भी इस पर वाद-विवाद नहीं करना चाहती, परन्तु साथ ही मैं तुमसे यह भी कहती हूँ कि भविष्य में तुम उसके साथ कभी न दिखाई पड़ना और न उसे यहाँ लाना।"

"तो क्या तुम मुझे चैलेञ्ज (चुनौती) दे रही हो?"

"यदि तुम इसे प्रार्थना के रूप में सुनने के लिए तैयार नहीं हो, तो चैलेञ्ज ही समझो।"

"अच्छा, देखा जायगा।" यह कह कर सोमेश्वरप्रसाद चुप हो गए।

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात्, जबकि सन्ध्या-समय सरस्वती देवी टहलने के लिए घर के बाहर निकलीं तो उसी समय उन्हें सामने से मि० नॉर्मन आते हुए दिखाई पड़े। मि० नॉर्मन ने सरस्वती देवी को देखते ही अपनी टोपी उतार कर उनका अभिवादन किया। पास आने पर उन्होंने पूछा—क्या मि० सोमेश्वर मकान पर नहीं हैं?

सरस्वती देवी ने कहा—नहीं! वह घूमने गए हैं।

"वह अभी तो मेरे मकान पर थे—अभी मिस नॉर्मन के साथ कहीं गए हैं—मैंने समझा था कि कदाचित् यहाँ आए हों। मुझे अपनी लड़की से कुछ आवश्यक कार्य था, इसलिए इधर आया कि शायद यहाँ मिल जायँ।"

इतना सुनते ही सरस्वती देवी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उन्होंने बड़ी कठिनता से मि० नॉर्मन को उत्तर दिया—"वह इधर नहीं आए।" इसके पश्चात् वह तुरन्त घर की ओर लौट पड़ीं और आकर कमरे में बैठ गईं।

दो घण्टे पश्चात् सोमेश्वरप्रसाद घर आए। उस समय वह शराब के नशे में थे। उन्हें देखते ही सरस्वती देवी बोलीं—क्यों, मिस नॉर्मन को कहाँ छोड़ आए, उसे भी लेते आते?

सोमेश्वर बोले—तुम्हें उसका स्वप्न आया करता है क्या?

सरस्वती देवी ने उसी प्रकार शान्तभाव से उत्तर दिया—स्वप्न तो नहीं आया, परन्तु उसका पिता उसे ढूँढ़ता हुआ यहाँ आया था।

कुछ क्षणों के लिए सोमेश्वर का चेहरा फ़क़ हो गया। परन्तु अपने को सँभाल कर उन्होंने कहा—वह क्या कहता था?

"वह कहता था कि मि० सोमेश्वर मिस नॉर्मन को साथ लेकर कहीं घूमने गए हैं।"

"झूठ बोलता था।"

"वह झूठ नहीं बोलता था, तुम झूठ बोल रहे हो।"

"हैं! तुम्हें यह कहने का साहस कैसे पड़ता है?"

"इसलिए कि मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूँ, और मुझे ऐसा कहने का अधिकार है। तुमने तो लाज-शर्म और मान-मर्याद सबको तिलाञ्जलि दे दी है। परन्तु मैं अभी इतनी पतित नहीं हुई हूँ। याद रक्खो, यदि तुम अपनी ये हरकतें न छोड़ोगे तो तुम्हें पछताना पड़ेगा। मैंने अपने माता-पिता की इच्छा के प्रतिकूल, उनसे लड़-भिड़ कर, तुमसे विवाह किया तो इसलिए नहीं कि तुम जो चाहे करो, और मैं चुपचाप देखा करूँ।"

"मैं क्या करता हूँ?"

"तुम वह करते हो, जिसमें मेरा अपमान होता है, मेरी तौहीन होती है। जो तुम्हें मिस नॉर्मन के साथ घूमते देखते होंगे वह क्या समझते होंगे? वह यह समझते होंगे कि मि० सोमेश्वर की पत्नी इस योग्य नहीं है कि वह मि० सोमेश्वर को प्रसन्न रख सके, उनकी एक अच्छी सहचरी बन सके, इसलिए मिस नॉर्मन—गार्ड की कन्या—के साथ घूमते फिरते हैं। यह मेरा अपमान नहीं, तो और क्या है?"

सोमेश्वरप्रसाद नशे में तो थे ही, उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—मैं मिस नॉर्मन के साथ घूमता-फिरता हूँ—और बराबर ऐसा करता रहूँगा। तुम्हें जो करना हो, करो।

उनके इस कथन से सरस्वती देवी बहुत ही बिगड़ीं।

उन्होंने भी शिष्टता को ताक़ पर रख दिया और जो मुँह में आया, कहने लगीं। नौबत यहाँ तक पहुँची कि सोमेश्वर बेत लेकर उन्हें मारने तक को तैयार हो गए, परन्तु घर की दास-दासियों ने दोनों को अलग कर दिया।

इसके एक मास पश्चात् निर्मला देवी को एक पत्र मिला—पत्र सरस्वती देवी का था। उसमें लिखा था :—

"प्रिय बहिन निर्मला!

तुम्हारी बात अक्षरशः सत्य निकली। तुम्हें याद होगा कि मेरे पति—मुझे अब उन्हें पति कहते हुए लज्जा मालूम होती है—के सम्बन्ध में तुमने मुझे चेतावनी दी थी। तुमने कहा था कि सोमेश्वर की ओर से सचेत रहना। परन्तु उस समय मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी। मुझ अभागिनी ने समझा कि तुम अपने किसी स्वार्थवश ऐसा कह रही हो। जब मैं आज सोचती हूँ कि उस समय मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में ऐसी अनुचित धारणा उत्पन्न करके तुम्हारे साथ कितना बड़ा अन्याय किया, तब मुझे बड़ा ही दुख होता है। तुम्हारे साथ तो मैंने केवल अन्याय ही किया, परन्तु अपने पैर में अपने आप कुल्हाड़ी मारी। सोमेश्वर मनुष्य नहीं, पशु प्रमाणित हुआ। अब मुझे ज्ञात हुआ कि मनुष्य का सौन्दर्य, उसकी विद्वत्ता, योग्यता

उस समय तक बिलकुल व्यर्थ है, जब तक कि उसमें सदाचार न हो। सदाचार मनुष्य के अन्य अवगुणों को छिपा देता है—जब कि सदाचारहीनता उसके समस्त गुणों पर पानी फेर देती है।

आह! क्या ही अच्छा होता, यदि मैं उस समय तुम्हारी चेतावनी पर शुद्ध हृदयता के साथ विचार करती। मैंने तुम्हारी चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया, माता-पिता की बात नहीं मानी—उसी के परिणाम-स्वरूप आज मुझे इतना क्लेश भुगतना पड़ा। मेरे हठ और स्वेच्छाचारिता ने मुझे कहीं का न रक्खा।

तुम आश्चर्य करती होगी कि आख़िर सोमेश्वर ने क्या किया। संक्षेप में इस समय मैं इतना ही लिखती हूँ कि सोमेश्वर को अब हिन्दुस्तानी पत्नी पसन्द नहीं—उनका सम्बन्ध एक यूरोपियन कन्या से हो गया है। उसके पीछे वह एक दिन मुझे पीटने तक पर आमादा हो गए थे। मैं ऐसी बातें सहन नहीं कर सकती। मैं अशिक्षित हिन्दू-नारी नहीं हूँ जो प्रत्येक दशा में पति की पूजा किया करती हैं। यद्यपि उन अशिक्षित स्त्रियों के लिए अब मेरे हृदय में बड़ा आदर-भाव उत्पन्न हो गया है। सचमुच वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो ऐसा करती हैं। परन्तु मैं तो ऐसा कभी भी नहीं कर सकती। मेरे आँखें हैं, मस्तिष्क है—इसलिए मैं उनका सदुपयोग करूँगी।

मैं आजकल अपने पिता के यहाँ हूँ—पति से अलग हो गई हूँ; और शायद सदैव के लिए। मेरे पिता के यहाँ मेरे गुज़ारे के लिए पर्याप्त सम्पत्ति है। इसके अतिरिक्त मैं ग्रेजुएट हूँ—अपना पेट आराम के साथ भर सकती हूँ। शेष बातें भेंट होने पर बताऊँगी।

तुम्हारी,

सरस्वती"

निर्मला ने पत्र को लिफ़ाफ़े में रखते हुए अपने ही आप कहा—हाय री स्वेच्छाचारिता, तूने न जाने कितनों का सर्वनाश किया है!

विचित्रता

विचित्रता

लखनऊ

४-१२-२७

प्यारी सखी कुन्ती !

अनेक दिनों से तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला, क्या कारण है ? मैंने इसके पूर्व तुम्हें दो पत्र लिखे, पर उत्तर की प्रतीक्षा अब तक कर रही हूँ। तुम इतनी निष्ठुर क्यों हो गईं ? तुम्हारे सम्बन्ध में वही कहावत चरितार्थ होती है कि, "आँखें हुईं चार, जी में आया प्यार; आँखें हुईं ओट, जी में आया खोट।" ख़ैर, तुम चाहे मुझे भूल जाओ, किन्तु मैं तुम्हें नहीं भूल सकती। तुम कहीं भी रहो; परन्तु मेरे लिए तुम वैसी ही हो, जैसी यहाँ थीं। तुमसे एक बात कहने के लिए चित्त बड़ा व्याकुल था। यदि तुम यहाँ होतीं तो अब तक कभी की कह डाली होती। बात यह है कि एक महीना हुआ, मुझे चोरी का कलङ्क लगा। जान पड़ता है, इस वर्ष मैंने भूल से गणेश-चौथ का चाँद देख लिया होगा। लोग कहते हैं, गणेश-चौथ का चन्द्रमा देखने से कलङ्क लगता है। श्रीकृष्ण भगवान् को भी इसी कारण से मणि की चोरी

का कलङ्क लगा था। पता नहीं, इस विश्वास में कुछ सार है अथवा नहीं। पुराने लोग तो इस पर पूर्ण विश्वास करते हैं; परन्तु आजकल के शिक्षित इस बात को नहीं मानते। मेरी भी यही धारणा है कि यह सब ढकोसला है। चन्द्र-दर्शन और चोरी के कलङ्क से क्या सम्बन्ध? ख़ैर, बात चाहे जो हो; पर मुझे तो चोरी का कलङ्क लग ही गया। तुम जानती हो बहिन, मुझे चोरी से कितनी घृणा है। याद है, जब हम-तुम छोटी थीं, तब मैं तुम्हारे घर खेलने जाया करती थी। एक दिन तुमने अपने घर से मिठाई चुराई थी। तुम मुझे भी देने लगीं, पर मैंने चोरी की मिठाई समझ कर उसे छुआ तक नहीं था। इस पर तुम रुष्ट होगई थीं और कई दिनों तक मेरी-तुम्हारी बोल-चाल बन्द रही थी। सो बहिन, तुम्हारी उसी सखी को लोगों ने चोरी लगाई। मुझे तो इस बात पर कभी-कभी बड़ी हँसी आती है—और दुःख तो ख़ैर हुई है। अभी थोड़े दिन हुए बनारस से मेरी देवरानी आई थी, मैंने प्रेम के मारे उसे अपने ही कमरे में टिका लिया। मुझे क्या पता था कि यह प्रेम मेरे लिए दुखदाई होगा। चार-पाँच दिन बाद एक दिन सवेरे मेरी देवरानी ने बड़ा हल्ला मचाया। कारण पूछने पर उसने बताया कि उसका एक सौ रुपए का नोट खो गया है। मैंने इस बात पर विशेष कुछ ध्यान नहीं दिया।

ध्यान देती कैसे ? मेरा तो अन्तःकरण स्वच्छ था। साधारण रूप से मैंने उसकी खोज की, पर वह नहीं मिला। उसका नोट खोया था या नहीं, यह तो भगवान् जाने; पर इतना मैं अवश्य कह सकती हूँ कि मेरे कमरे से आज तक कभी एक तिनका भी चोरी नहीं गया। हँसना नहीं, शायद तुम सोचो कि तिनका चुराएगा ही कौन ? मैंने केवल इस बात का विश्वास दिलाने के लिए कि मेरे कमरे से कभी कोई वस्तु चोरी नहीं गई, यह बात लिखी। ख़ैर, जब वह नोट नहीं मिला, तब मेरी देवरानी ने मेरी सास से यह बात कही। सास द्वारा ससुर जी के कानों तक बात पहुँची। अब जिसे देखो, वह यही कहता है कि बड़ी बहू के कमरे से तो कभी कोई चीज़ चोरी गई नहीं, वहाँ कोई बाहर का आदमी जाता ही नहीं, घर के लोग भी बहुत कम जाते हैं, वहाँ से नोट चोरी जाना बड़े आश्चर्य की बात है। अब जिसे देखो वही मुझसे ही तमाम दुनिया भर के प्रश्न करता है, मानों सबने उस नोट का उत्तरदायी मुझे ही समझ लिया। मेरे कमरे से कभी कोई वस्तु चोरी नहीं गई, यह बात मेरे लिए वैसे तो बड़े गर्व की थी, परन्तु इस अवसर पर वह मेरे बहुत प्रतिकूल पड़ी। मुझसे मेरे मुँह पर तो किसी ने कुछ नहीं कहा, पर मेरे पीठ-पीछे लोगों ने अर्थात् मेरी देवरानी और सास ने यही कहा कि यह बड़ी बहू का ही काम है,

दूसरे का नहीं; क्योंकि दूसरा कोई उस कमरे में जाता ही नहीं। जब सास जी ने यह कहा तो ससुर जी भी यही कहने लगे; क्योंकि वह तो सास जी के ग्रामोफ़ोन हैं। जो रिकॉर्ड सास जी चढ़ाती हैं, वही ससुर जी बोलते हैं। मुझे घर के नौकरों से यह बात मालूम हुई। सच कहूँ बहिन, मुझे बड़ा दुख हुआ। परन्तु करती क्या, किसे किस प्रकार समझाती कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। हाँ, ईश्वर को इतना धन्यवाद देती हूँ कि तुम्हारे बहनोई साहब को विश्वास नहीं हुआ। वह बराबर यही कहते रहे कि यह सब उसकी चालबाज़ी है, उसका नोट-शोट कुछ चोरी नहीं गया। वह इस प्रकार माता जी से कुछ पेंठना चाहती है। चाहे जो हो, देवरानी का दीन-ईमान जाने। मैं अपनी ओर से तो कुछ कहती नहीं; क्योंकि बहिन, बिना देखे, बिना, जाने मैं कैसे कह दूँ? मैं औरों की तरह तो हूँ नहीं। सम्भव है, रास्ते में कहीं गिर गया हो, उसे पता न लगा हो। पर उस दुष्टा ने तो यह बात भी नहीं मानी। वह बराबर यही कहती रही कि "रास्ते में कदापि नहीं गिरा, मैंने यहाँ आने तक उसे देखा था।" उसकी इस बात से मुझे भी यह सन्देह होता है कि सम्भव है, उसने यह कौतुक ही रचा हो। ख़ैर, परिणाम यह हुआ कि सास जी ने देवरानी को सौ रुपए दिए और वह बात आई-गई हुई। यह तो सब कुछ

हुआ, पर मेरे ऊपर से उनका सन्देह हटा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकती। सन्देह दूर भी कैसे होता, मैं अपने निर्दोष होने का प्रमाण भी तो नहीं दे सकी। और बहिन, मैं प्रमाण दे भी क्या सकती थी—ख़ाली मुँह से कह सकती थी, सो उसमें मैंने कुछ उठा नहीं रक्खा। जो-जो क़सम न खानी थीं, वह सब मैंने खाईं। तुम्हारे बहनोई तो इस पर नाराज़ भी हुए, बोले—तुम क्यों क़समें खाती फिरती हो, क्यों सफ़ाई देती हो? वह तुम्हें चोर समझती है तो समझने दो, हमारी बला से! पर मैंने इस विचार से कि "बद अच्छा बदनाम बुरा" यह सब किया। देवरानी जी का भला हो, चार दिन के लिए आई थीं, सो यह उपहार दे गईं। मैंने जो आवश्यकता से अधिक प्रेम-प्रदर्शन किया था, उसका फल मिल गया। आगे के लिए मैंने कान पकड़ लिए। आजकल बहुत लगी-लिपटी रखना ठीक नहीं, दूर की राम-राम अच्छी है। यही मेरी कथा है। यह कथा तुम्हें सुनाने के लिए जी छटपटा रहा था; क्योंकि तुम मेरी बालपन की प्यारी सहेली हो। जी की बात तुमसे न कहूँ तो और किससे कहूँ? इस चिट्ठी का उत्तर अवश्य देना, नहीं मुझे बड़ा रञ्ज होगा। तुम चिट्ठी का जवाब नहीं देती हो, यह बड़ी बुरी आदत है। अपनी सास जी को मेरा पैरों-पड़ना कहना और मुन्ना को मेरी ओर से गोद में लेकर ख़ूब प्यार करना। अब तो

मुन्ना अपने पैरों चलने लगा होगा ? उसे देखने को आँखें तरसती हैं। देखो, कभी ऐसा संयोग हो कि हम तुम एक ही समय में मायके जायँ, तब दर्शन हों। उत्तर अवश्य देना।

तुम्हारी प्यारी,

कमला

२

दिल्ली

१५-१२-२७

मेरी प्यारी कमला !

तुम्हारा पत्र मिला। इसके पूर्व दो पत्र और मिले थे; पर मैं उत्तर न दे सकी। बहिन, तुम्हारा उपालम्भ सिर-आँखों पर। निस्सन्देह यह बड़ी बुरी बात है कि मैं तुम्हारे पत्र का उत्तर समय पर नहीं देती। परन्तु बहिन, मैं ईश्वर को साक्षी करके कहती हूँ कि इसमें मेरा रत्तीभर भी अपराध नहीं है। बहिन, गृहस्थी का जञ्जाल ऐसा विकट है कि इसमें पड़ कर आदमी सब कुछ भूल जाता है। तुम्हारी चिट्ठियों का उत्तर देने के लिए मेरा जी स्वयम् तड़पता रहता है। ऐसी बहुत सी बात होती हैं, जिन्हें तुमसे कहने के लिए जी मचलता रहता है, परन्तु क्या करूँ, अवकाश ही नहीं मिलता, जी मसोस कर रह जाती हूँ।

तुम जानती हो बहिन, तुम्हारी तरह मेरे घर में दास-दासी तो हैं नहीं, हम इतने अमीर कहाँ कि दास-दासी रख सकें। सवेरे से उठ कर भोजन की तैयारी करनी पड़ती है; क्योंकि तुम्हारे बहनोई साहब दस बजे दफ़्तर जाते हैं। उनके दफ़्तर जाने पर फिर सास जी भोजन करती हैं। उनके पश्चात् मैं स्वयं खाती हूँ—इस प्रकार ग्यारह-बारह तो इसी प्रकार बज जाते हैं। भोजन इत्यादि करके उठने पर फिर इतनी शक्ति नहीं रहती कि अन्य कोई काम कर सकूँ, इसलिए घण्टे-दो घण्टे आराम करने की आवश्यकता पड़ती है। दोपहर में पास-पड़ोस की, नाते-रिश्तेदार की स्त्रियाँ आ जाती हैं, उनसे बातचीत करनी पड़ती है। यदि ऐसा न करूँ तो काम नहीं चलता। कोई अपने घर आए और उससे बातचीत न की जाय, तो उसे कितना बुरा लगे। हम भी तो दूसरों के घर आती-जाती हैं, जो वे भी हमसे ऐसा ही व्यवहार करें तो कितना बुरा लगे। इसके पश्चात् चार-पाँच बजे से फिर वही पेट-पूजा का आयोजन आरम्भ हो जाता है। इसी प्रकार सारा दिन बीत जाता है। दोपहर में जब कभी बाहर की स्त्रियाँ नहीं आतीं तो मुन्ना के कपड़े सीती हूँ। यदि कभी इन सब बातों से अवकाश मिला और तुम्हें पत्र लिखने बैठी तो मुन्ना तङ्ग करता है—कभी दावात में उँगली डालेगा, कभी काग़ज़

पकड़ कर खींचेगा और कभी क़लम पकड़ लेगा। तब विवश होकर लिखना बन्द कर देती हूँ। वह कभी-कभी दोपहर में सो जाता है, तब यदि कोई बाहर की स्त्री न आई, तो पत्र लिखने का अवकाश मिलता है। यह पत्र दो दिन तक ऐसा ही सुअवसर प्राप्त होने पर लिख सकी हूँ। ऐसे ही अवसर पर अपना बालपन याद आता है। उस समय कितनी स्वतन्त्रता थी, कितनी आज़ादी थी। वह सब स्वप्नवत् हो गई। परन्तु बहिन, इस परतन्त्रता में भी एक विशेष प्रकार का सुख है, एक स्वर्गीय आनन्द है। जब मैं यह देखती हूँ कि मेरी इस परतन्त्रता से उन्हें आराम पहुँचता है, जिन्हें मैं अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती हूँ, तब मैं एक स्वर्गीय सुख का अनुभव करती हूँ। दिन भर परिश्रम करके जब मैं मुन्ना के लिए कोई कपड़ा सीकर तैयार करती हूँ और वह उसे पहनकर प्रसन्न होता है, तब मैं अपना सारा परिश्रम भूल जाती हूँ। उसकी वह मन्द-मुस्कान देखकर, जो नया वस्त्र पहनने से उसके आन्तरिक आनन्द के कारण उसके मुख पर आती है, मुझे बड़ा सुख मिलता है। सुबह-शाम भोजन बनाकर जब अपने स्वामी के सम्मुख रखती हूँ और वह उसे खाकर कहते हैं—"मुन्ना की माँ, आज का भोजन बड़ा स्वादिष्ट बना है, आज अमुक चीज़ बहुत अच्छी बनी है।" उस समय उनके मुख पर सन्तोष की

मुद्रा तथा आँखों में प्रेम की चमक देखकर और उनके मुख से अपने कार्य की सराहना सुनकर मुझे एक स्वर्गीय आनन्द का अनुभव होता है। यही दो-चार बातें हैं, जो मुझे इस ग़रीबी और पराधीनता में भी सुखी बनाए हुए हैं।

प्यारी सखी, तुम्हें चोरी का कलङ्क लगा, यह पढ़-कर मुझे दुख हुआ और हँसी भी आई। दुख तो यह सोचकर हुआ कि इस कलङ्क के कारण मेरी प्यारी बहिन को इतनी मानसिक वेदना हुई; और हँसी यह सोचकर आई कि यह संसार कितना विचित्र है। जो नहीं करते, उन्हें कलङ्क लगता है और जो करते हैं, उन्हें कोई पूछता भी नहीं। ऐसी ही एक घटना मेरे साथ भी घटी थी, परन्तु वह तुम्हारी घटना के ठीक विपरीत थी। मैंने सोच रक्खा था कि जब कभी मेरा-तुम्हारा मिलन होगा, तब तुम्हें वह घटना सुनाऊँगी, परन्तु वैसा अवसर अब तक मिला नहीं। तुम्हारी इस घटना का वृत्तान्त पढ़कर मुझसे न रहा गया। अतएव मैं अपनी वह घटना तुम्हें लिखती हूँ :—

"दो बरस की बात है, मेरी बड़ी बहिन दिल्ली घूमने आई थीं, साथ में मेरे जीजा जी भी थे। वह मेरे ही पास ठहरी थीं। तुम्हें मालूम है कि वह अमीर घर में ब्याही हैं, इसलिए उनके पास कपड़े-लत्ते और गहना-ज़ेवर ख़ूब

हैं। उनके गहनों में एक सोने की ज़ञ्जीर थी, जो बड़ी सुन्दर बनी थी। यद्यपि वह अधिक मूल्यवान् नहीं थी, केवल ८ तोले की थी, पर बनी बड़ी सुन्दर थी। मुझे वह ज़ञ्जीर बड़ी पसन्द आई। मेरे हृदय में वैसी ज़ञ्जीर पहनने की बड़ी लालसा उत्पन्न हुई। परन्तु उस समय मेरे पास इतने रुपए नहीं थे कि वैसी ज़ञ्जीर बनवाती। यदि रुपए होते तो उस ज़ञ्जीर को दिखाकर दूसरी बनवा लेती।

एक दिन मेरी बहिन क़ुतुबमीनार देखने गईं, मैं भी उनके साथ गई। क़ुतुबमीनार देखकर हम सब लोग दिन छिपे घर लौटे। मेरी बहिन क़ुतुबमीनार पर चढ़ने तथा रास्ते के अनेक स्थान देखने के कारण बहुत थक गई थीं, इसलिए घर आते ही उन्होंने जल्दी-जल्दी सब उतार कर फेंक दिया और मुझसे बोलीं—"ले, तू इन्हें बक्स में रख दे, मुझमें तो इतनी शक्ति नहीं है, जो इन्हें रक्खूँ।" यह कहकर वह आँख बन्द करके लेट गईं। मैंने वह सब ज़ेवर बक्स में रखना आरम्भ किया। रखते-रखते जब वह ज़ञ्जीर मेरे हाथ में आई, तो मैंने कुछ क्षणों तक उसे उलट-पलट कर देखा और बक्स में रख दिया। बहिन, तुम मेरी प्यारी सखी हो, तुमसे मेरा कोई पुण्य-पाप छिपा नहीं है, इसलिए यह घटना लिखती हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरी यह पाप-कहानी पढ़ कर मुझसे घृणा नहीं करोगी। यदि ऐसा विश्वास न होता तो मैं यह

बातें कभी न लिखती। सो बहिन; रखने को तो मैंने उसे रख दिया, पर जी न माना। मैंने पुनः उसे उठा लिया। एक बार मैंने अपनी बहिन की ओर देखा कि कहीं वह देख तो नहीं रही हैं; परन्तु वह मेरी ओर पीठ किए चुपचाप लेटी थीं। अब मेरे चित्त में पाप उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा, यदि मैं यह ज़ञ्जीर चुरा लूँ तो क्या हो। क्या जीजी मेरे ऊपर शक करेंगी? मेरे पापपूर्ण हृदय ने उत्तर दिया—कैसे शक करेंगी? आज तक तो मैंने उनकी कोई वस्तु चुराई नहीं। इसलिए आज एकदम से कैसे शक कर बैठेंगी। फिर मैंने सोचा, आख़िर जब उन्हें बक्स में ज़ञ्जीर न मिलेगी तो वह क्या सोचेंगी कि कहाँ गई। फिर मेरे पापी हृदय ने उत्तर दिया—क़ुतुबमीनार देखने गई थीं, कहीं गिर गई होगी। इस समय उन्होंने ज़ेवर देखा भी नहीं, जल्दी में उतार कर डाल दिए हैं, उन्हें पता भी न होगा कि इनमें ज़ञ्जीर है या नहीं। इसी प्रकार मैं कुछ क्षणों तक सोच-विचार करती रही। अन्त में मेरी नियत इतनी बिगड़ गई कि मैंने उस ज़ञ्जीर को चुपके से दबा लिया और सोच लिया कि जो होगा, देखा जायगा; पर यह ज़ञ्जीर तो अब मैं रक्खूँगी। ज़ञ्जीर अलग करके मैंने सब गहने बक्स में रख दिए और बक्स बन्द करके बोली—"जीजी, यह सब गहने रख दिए। लाओ, चाबी दे दो तो बन्द कर दूँ।" जीजी बोलीं—

"बक्स मेरे सिरहाने रख दे, मैं बन्द कर दूँगी।" यह सुन कर मैं डरी कि कहीं बक्स में चाबी लगाते समय यह गहने न गिनें। पर उस समय तो मेरे सिर पर पाप का भूत सवार था। मैंने सोचा, अब इस समय भला क्या देखेंगी। यह सोचकर मैंने चुपके से बक्स उनके सिरहाने रख दिया और ज़ंजीर लेकर ऐसे स्थान पर रख दी कि सारा घर ढूँढ़े जाने पर भी वह न मिले। इसके पश्चात् तीन दिन तक जीजी ने वह बक्स नहीं खोला; क्योंकि तीन दिन वह घर से नहीं निकलीं।

चौथे दिन रात को थियटर देखने की बात निश्चित हुई। मेरे जीजा जी दिन में ही ज़नाने तथा मर्दाने दर्जे की दो-दो कुर्सियाँ रिज़र्व करा आए थे, इसलिए जाना आवश्यक हो गया था। रात को चलने के समय जीजी ने पुनः बक्स निकाला। उन्हें बक्स निकालते देख, मेरा कलेजा धड़कने लगा। मैंने सोचा, अब भण्डा फूटा। मैंने उनसे कहा—"क्या गहने पहनकर चलोगी?" उन्होंने कहा—"हाँ, दो-चार गहने पहन लूँ।" मैंने कहा—"रात में गहने पहनकर क्या करोगी, रात में उन्हें कौन देखेगा? दो-चार गहने तो पहने ही हो, यही काफ़ी हैं।" जीजी बोलीं—"इन गहनों का क्या, ये तो मैं हर समय पहने रहती हूँ।" मैंने कहा—"तो ये क्या थोड़े हैं, बहुतों को तो इतने भी नसीब नहीं होते।" जीजी ने हतोत्साहित

होकर कहा—"तो जाने दूँ, न पहनूँ ?" मैंने कहा—"मेरी तो राय नहीं है। रात को दो-तीन बजे लौटना होगा, अधिक गहना पहनना ठीक नहीं। कौन ब्याह-शादी में चल रही हो। वहाँ जाओगी, ओढ़े-लपेटे बैठी रहोगी। गहना पहनने से लाभ क्या, बोझ लादना हो तो लाद लो, तुम्हारी इच्छा, मैं मना नहीं करती।" यह बात जीजी को जँच गई। उन्होंने कहा—"कहती तो ठीक हो—जाने दो, न पहनूँगी।" यह कह कर उन्होंने बक्स फिर अपने सन्दूक में रख दिया। यह देखकर मेरी जान में जान आई।

मनुष्य पाप करके कितना कायर, कितना डरपोक बन जाता है, यह मैंने इसी अवसर पर अनुभव किया। सखी कमला, मैं तुमसे क्या कहूँ कि मेरी क्या दशा हो गई थी। वैसे तो मैं जीजी के पास हर समय बैठी रहती थी, उनके साथ हँसती-बोलती थी, पर अब मुझे उनके सामने जाने में डर लगने लगा। जब कभी वह मेरी ओर एक क्षण के लिए भी स्थिर दृष्टि से देखने लगतीं, तो मेरा कलेजा धक् से होता कि ऐं, कहीं इन्हें सन्देह तो नहीं हो गया। जब वह मेरी ओर देखकर प्रेमवश मुस्कराती थीं, तब मैं पापिनी यह सन्देह करती थी कि यह मेरी वह हरकत जान गई हैं, इसलिए मुस्करा रही हैं। प्रत्येक समय यही डर लगा रहता था, यही खटका रहता

था कि कहीं उन्हें पता न लग जाय। एक दिन उन्होंने धुली धोती निकालने के लिए अपना सन्दूक़ खोला। सन्दूक़ खोलते ही उनके मुँह से निकला—"अरे यह क्या हुआ!" यह सुनते ही मेरी तो जैसे जान निकल गई—कलेजा बल्लियों उछलने लगा। मैं समझी कि इन्हें पता लग गया। उस समय मैंने यह भी न सोचा कि बक्स तो अभी खोला नहीं, पता कैसे लगा। मैंने घबरा कर पूछा—"क्या हुआ जीजी?" जीजी बोलीं—"कपड़ों में इत्र की शीशी रक्खी थी, जान पड़ता है डाट ढीली रही होगी—सारा इत्र बह गया।" उनकी यह बात सुन कर मेरा चित्त ठिकाने हुआ। क्या कहूँ बहिन, हृदय इतना कमज़ोर हो गया था कि बात-बात पर उछल पड़ता था। मैं तो कहती हूँ, आदमी चाहे भीख माँग कर खा ले, पर चोरी कभी न करे। चोरी करने वाला प्रत्येक समय नरक की यन्त्रणा सहा करता है। इतना सब कुछ था; पर यह न होता था कि ज़ंजीर लौटा दूँ। एक बार जी में आया कि इस प्रकार मानसिक कष्ट सहने से तो यह अच्छा है कि ज़ंजीर लौटा दूँ, पर इस विचार के आते ही लोभी हृदय ने अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क उठाए—"कैसे लौटाऊँ? यों लौटाऊँगी तो वह समझ जायँगी कि इसने चुरा ली थी। जब ऐसा अवसर फिर मिले कि वह मुझे अपने गहने बक्स में रखने के लिए दें, तब तो लौटाई जा सकती है,

यों लौटाना तो ठीक न होगा—उन पर सारा भेद खुल जायगा।" इसी प्रकार की ऊटपटाङ्ग बातें सोच कर वह विचार त्याग दिया। यद्यपि बात साधारण थी, उन्हें ज़ञ्जीर दे देती और सौ बहाने कर देती। कह देती कि मैंने ऐसी ही ज़ञ्जीर बनवाने के लिए इसे बाहर रख लिया—सुनार को दिखानी थी। परन्तु बात तो कुछ और ही थी। जैसी नियत थी, वैसी ही बातें सूझती थीं।

इस घटना के दूसरे दिन जीजी बोलीं—"बैठे-बैठे क्या होगा, चलो आज लाल क़िला देखें।" मैंने कहा—"एक बार तो देख आई हो।" जीजी बोलीं—"एक बार और देख लें, फिर न जाने दिल्ली आना हो कि न हो।" मुझे उनकी यह बात बुरी लगी। यद्यपि बुरा मानने की कोई बात न थी। मैं स्वयं यद्यपि पचासों बार क़िला देख चुकी हूँ, पर तब भी कभी-कभी वहाँ जाने की इच्छा हो आती है और बहुधा जाती भी रहती हूँ। पर उनका दूसरी बार देखने का प्रस्ताव भी उस समय बुरा लगा। बुरा लगने का कारण क्या था? कारण यही था कि भीतर तो चोर घुसा था न! सोचती थी कि क़िला देखने जायँगी तो गहने अवश्य पहनेंगी, अतएव उस समय भेद खुल जायगा। जब मैंने देखा कि यह न मानेंगी तो चुप हो रही।

चलते समय उन्होंने गहने पहनने के लिए बक्स

निकाला। ज्योंही उन्होंने बक्स निकाला, त्योंही मैं वहाँ से टल गई। उस समय मुझे बड़ा क्रोध आया। मैंने सोचा, हम लोगों की भी क्या बुरी आदत है कि बिना गहने लादे घर के बाहर पैर ही नहीं धरतीं। पूछा, क़िले में क्या कोई बारात आएगी? या गहने पहन कर न जायँगी तो कोई ग़रीब समझ लेगा? मेमों को देखो, योंही फिरा करती हैं। एकाध गहना पहन लिया, बस काफ़ी है। मैं ये बातें सोच रही थी, यद्यपि मैं स्वयं इसी स्वभाव की थी, जब कभी बाहर निकलती तो अपने सारे गहने लाद कर निकलती थी। उस समय मेरे हृदय में ऐसे विचार कभी न उठे थे, जो इस समय उठ रहे थे। मैं यह सब सोच रही थी, पर उस समय जीजी से यह कहने का साहस न था कि गहने पहन कर क्या करोगी। क्योंकि मैं जानती थी कि जीजी इस समय न मानेंगी। उस दिन थिएटर देखने जाते समय बात दूसरी थी—रात का समय था, इसलिए मान गई थीं। अब दिन है, अब कदापि न मानेंगी, उलटा सन्देह उत्पन्न होगा कि यह क्यों मना करती है, और जब ज़ंजीर न मिलेगी तो तुरन्त यह अनुमान लग जायगा कि इसी-लिए यह मना कर रही थी। मैं अपने कपड़े पहन रही थी, परन्तु कलेजा धड़क रहा था और कान जीजी की ओर लगे थे। प्रति क्षण यही सोचती थी कि अब

जीजी हल्ला मचाने वाली ही हैं कि ज़ञ्जीर खो गई। आख़िर जो अवश्यम्भावी था वही हुआ। हठात् जीजी ने पुकारा—कुन्ती!

एक बेर तो मैंने सुन कर भी टाल दिया, जैसे सुना ही नहीं। उन्होंने पुनः पुकारा—कुन्ती!

इस बार मैं बड़ी लापरवाही से धोती सँभालती हुई उनके पास पहुँची और बोली—क्या है जीजी?

जीजी बोलीं—इसमें ज़ञ्जीर तो हई नहीं!

मैंने कहा—कौन ज़ञ्जीर?

जीजी बोलीं—वही, जो मैं गले में पहनती थी।

मैंने कहा—हाँ, याद तो पड़ता है कि मैंने देखी थी।

जीजी ने कहा—देखी क्यों न होगी, उस दिन कुतुब की लाट देखने गई थी तो पहन कर गई थी। वहाँ से लौट कर आई थी, तब तो गहने तूने ही धरे थे। देखी क्यों न होगी?

यह सुन कर मेरा मुँह सूख गया। बड़ी चेष्टा करके मैंने अपना हुलिया सुधारा और भौं सिकोड़, स्मरण करने का भाव दिखाती हुई बोली—उस दिन जाते समय तो मैंने देखी थी, पर जब गहने बक्स में रक्खे, तब नहीं थी।

जीजी—एँ, उस समय नहीं थी? होगी क्यों नहीं?

मैंने उत्तर दिया—जहाँ तक मुझे याद है, उस समय नहीं थी।

जीजी ने कहा—तो तूने मुझसे कहा क्यों नहीं ?

मैंने उत्तर दिया—उस समय मैं यह समझती कि कोई चीज़ कम है तो कहती; पर उस समय तो मैंने कोई चीज़ कम समझी नहीं थी। मुझे क्या पता कि कुल कितने गहने हैं। अब इस समय तुम्हारे कहने से यह ध्यान आता है कि उस समय ज़ञ्जीर मैंने नहीं देखी थी।

जीजी सिर पर हाथ धर कर बोलीं—यह तो बड़ा ग़ज़ब हुआ। ऐसी ज़ञ्जीर मिलना कठिन है।

मैंने कहा—जान पड़ता है, रास्ते में कहीं गिर गई।

जीजी बोलीं—गिर ही गई होगी, जायगी कहाँ।

मैंने पूछा—कितने की थी ?

जीजी ने उत्तर दिया—थी तो केवल ढाई सौ की। ढाई सौ की तो कोई बात नहीं, पर वह बनी बड़ी सुन्दर थी, वैसी ज़ञ्जीर बिना देखे कोई सुनार बना नहीं सकता। मामूली सुनार तो देखकर भी नहीं बना पाएगा।

मैंने मुँह बनाकर कहा—तब तो सत्य ही बड़ी हानि हुई। कहाँ बनवाई थी ?

जीजी ने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा—तेरे जीजा जी को किसी अङ्गरेज़-जौहरी ने भेंट में दी थी। विलायत की बनी हुई थी। वह सुनेंगे तो मेरी जान को आ जायँगे। क्या कहूँ, बड़ी भूल हुई, मुझे अपने हाथ से गहने बक्स में धरने थे।

जीजो के इस वाक्य से मैं समझी कि जीजी मुझ पर सन्देह करती हैं। मैंने रुष्ट होने का भाव दिखाकर कहा—क्यों, अपने हाथ से धरने में क्या बात थी? क्या मैंने × × ×?

जीजी जल्दी से बोल उठीं—नहीं बेटी, मेरा यह मतलब नहीं कि तूने चुरा ली। मेरा मतलब यह है कि मैं अपने हाथ से रखती तो मुझे पता लग जाता कि ज़ञ्जीर खो गई है। उस समय मालूम हो जाता तो शायद दौड़-धूप करने से कुछ पता चल जाता; पर अब तो आठ-दस दिन की बात हो गई।

उस दिन जीजी क़िला देखने नहीं गईं। रञ्ज के मारे भोजन भी नहीं किया। मैं अभागी चुपचाप उनका यह कष्ट देखती रही। उस दिन रात को भोजन करने के पश्चात् जीजी ने अपनी दासी से जीजा जी को बुलवाया और अलग कमरे में ले जाकर बातें करने लगीं। मैं समझ गई कि ज़ञ्जीर ही की बातचीत करेंगी। अब मेरे मन में उत्सुकता पैदा हुई कि मैं भी उनकी बातें सुनूँ। देखूँ, कहीं मुझ पर सन्देह तो नहीं है। यह सोच कर मैं दबे पैरों उस कमरे के पास गई और द्वार से सट कर खड़ी हो गई। उस समय जीजा जी कह रहे थे—वह ज़ञ्जीर अपने आप तो कभी गिर ही नहीं सकती, उसका काँटा इस ढङ्ग का बना था कि अपने आप खुलना असम्भव

था। विलायती चीज़ थी। वह केवल दो प्रकार से गिर सकती थी—या तो कोई पकड़ कर झटका मारता या उसका काँटा अच्छी तरह न लगता। सो झटका मारने की बात तो सोचना व्यर्थ है, कोई ग़ैर-आदमी तुम्हारी छाया तक के पास नहीं आ सका। रही काँटा ढीला रहने की बात, सो उसके लिए तुम कहती हो कि काँटा ढीला नहीं था।

जीजी बोलीं—हाँ, काँटा तो ढीला नहीं था, मैं सदा उसे अच्छी तरह कस कर बन्द कर लेती थी और उस दिन भी बन्द कर लिया था, यह मुझे अच्छी तरह याद है।

जीजा ने कहा—तो वह गिरी नहीं, यह मुझे पूर्ण विश्वास है। मालूम होता है, उसे तुम्हारी बहिन ने उड़ा दिया।

यह सुनते ही मेरा कलेजा धक् से हुआ, मैं दीवार के सहारे थलक कर टिक गई। परन्तु उसी समय जीजी ने कहा—यह कभी नहीं हो सकता, मेरी बहिन चोर नहीं है। वह ऐसा काम कभी न करेगी।

जीजा जी बोले—क्यों, करने को क्या हुआ, ऐसी चीज़ भला उसने काहे को कभी आँखों देखी होगी? मैं तो यही कहूँगा कि उसने गहने बक्स में रखते समय उसे हथिया लिया।

जीजी इस बार कुछ क्रुद्ध होकर बोलीं—परन्तु मैं फिर

कहती हूँ कि कुन्ती ऐसा कभी नहीं करेगी, उसको चोरी की आदत नहीं है, और फिर मेरे साथ! राम! राम!! तुम्हें ऐसा कहते लाज भी नहीं लगती। वह हमारी अपेक्षा ग़रीब है सही, पर फिर भी ऐसा नहीं करेगी। मुझे कभी यह विश्वास नहीं हो सकता कि कुन्ती ने ऐसा किया।

यह सुन कर जीजा जी बोले—जब तुम्हारा यह दृढ़ विश्वास है तो जाने दो, मैं इस विषय पर कुछ न कहूँगा। पर आख़िर ज़ंजीर हुई क्या? यह प्रश्न तो हल नहीं हुआ।

जीजी बोलीं—यह मैं क्या बताऊँ, क्या हुई। मेरा तो यही अनुमान है कि कहीं गिर गई।

जीजा जी खिन्न होकर बोले—गिर गई तो जाने दो जहन्नुम में।

इतना सुन कर मैं वहाँ से भागी और आकर अपनी चारपाई पर गिर पड़ी। उस समय बहिन कमला, मैं तुमसे क्या बताऊँ कि मेरे हृदय में कैसा ज्वार-भाटा उठा था। मैं सोच रही थी—हाय, ऐसी जीजी के साथ मैंने यह व्यवहार किया। ऐसी जीजी, जो मुझसे इतना प्रेम करती हैं कि मेरे प्रतिकूल एक शब्द भी नहीं सुनना चाहतीं; ऐसी सरल-हृदया जीजी, जो मेरे प्रतिकूल ऐसे प्रबल कारण होते हुए भी मुझ पर सन्देह तक नहीं करतीं,

उनके साथ मैंने यह व्यवहार किया। हे भगवन्! मेरी क्या दशा होगी, इस विश्वासघात का न जाने क्या दण्ड मिलेगा? मैं यह सोच ही रही थी कि जीजी आगईं। उनकी चारपाई मेरी चारपाई के पास ही बिछी थी। वह आकर चुपचाप चारपाई पर लेट गईं और थोड़ी ही देर में सो गईं। परन्तु मेरी आँखों में नींद कहाँ? मैं रात भर इसी विषय पर सोचती रही और अन्त में मैंने निश्चय किया कि सवेरे उठते ही पहले ज़ञ्जीर जीजी को दे दूँगी, तब दूसरा काम करूँगी।

प्रातःकाल होते ही मैं चुपके से उठी और ज़ञ्जीर लाकर फिर अपनी चारपाई पर पड़ रही। थोड़ी देर में जीजी की आँख खुली। वह एक अँगड़ाई लेकर उठ बैठीं और मेरी ओर देख कर बोलीं—कुन्ती!

मैंने कहा—क्या है जीजी?

वह बोलीं—मैं समझी, तू सो रही है।

मैं उठ कर बैठ गई और कुछ देर तक बैठी सोचती रही। यद्यपि मैं ज़ञ्जीर लौटाना निश्चित कर चुकी थी, परन्तु फिर एक हिचक बाक़ी थी। वह हिचक इसी बात की थी कि ज़ञ्जीर देने पर जीजी को यह पता लग जायगा कि ज़ञ्जीर मैंने ही चुराई थी। परन्तु मैंने जी कड़ा किया। सोचा—यह काम तो करना ही है, अतएव जितना जल्दी हो जाय, अच्छा है। जब खोटा काम कर

बैठी, तब उसका परिणाम भोगने के लिए भी प्रस्तुत रहना चाहिए—जीजी चाहे कुछ सोचें। यह सोच कर मैं जीजी की चारपाई पर जा बैठी और उनके चरण पकड़ कर बोली—जीजी, मेरा अपराध क्षमा करो! मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ। छोटों से भूल हो ही जाती है। यह कहते-कहते मेरा गला भर आया। और मैं आँचल से मुँह ढाँप कर रोने लगी।

जीजी ने यह देख कर मुझसे पूछा—क्यों-क्यों, क्या बात है, तू रोती क्यों है?

मैंने हिचकियाँ लेते हुए चुपके से ज़ंजीर निकाल कर उनके सामने रख दी। ज़ंजीर देख कर पहले तो जीजी कुछ क्षणों तक अवाक् बैठी रहीं, तत्पश्चात् बोलीं—अच्छा, तो तूने ही इसे रख लिया था? जान पड़ता है, यह तुझे पसन्द आई थी। ख़ैर, रख लिया था तो कोई हर्ज नहीं था। तू इतना रोती क्यों है?

यह कह कर उन्होंने मुझे हृदय से लगा लिया। उनका यह व्यवहार देख कर मुझे और भी अधिक रोना आया।

जीजी बोलीं—दुर पगली, इसमें रोने की कौन-सी बात है? यदि रख ली थी, तो अच्छा किया था—ख़ाली मुझसे कह देती। तूने मुझे बताया नहीं, बस इतनी ही तेरी भूल हुई। ख़ैर जो हुआ सो हुआ, अब इतनी व्याकुल क्यों होती है? तुझे यह पसन्द है, तो अब इसे तू ही रख।

यह कह कर वह ज़ञ्जीर मुझे देने लगीं। मैंने हिच-कियाँ लेते हुए कहा—ना जीजी, इसे तो मैं अब हाथ भी न लगाऊँगी।

जीजी बोलीं—क्यों, मैं अपनी ख़ुशी से दे रही हूँ।

मैंने कहा—कदापि नहीं, मैं इसे छुऊँगी तक नहीं।

जीजी ने कहा—तेरी ख़ुशी!

मैंने जीजी से कहा—जीजी एक प्रार्थना है। जीजा से यह मत कहना कि मैंने चुरा ली थी।

जीजी बोलीं—उनसे भला मैं ऐसा कह सकती हूँ? इसमें तो मेरी ही बदनामी है कि इसकी बहिन चोर है।

मैंने पूछा—तो उनसे क्या कहोगी?

जीजी ने उत्तर दिया—उनसे कह दूँगी कि कपड़ों के बक्स में गिर गई थी और कपड़ों में दब गई थी। आज कपड़े निकालते समय मिली।

यह सुन कर मैं जीजी के पैरों पर गिर पड़ी और बोली—जीजी, तुम मनुष्य नहीं, देवी हो।

इसके पश्चात् जीजी एक सप्ताह मेरे पास रहीं, परन्तु उन्होंने ज़ञ्जीर का प्रसङ्ग कभी नहीं उठाया। उनके व्यवहार में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ा। उसी प्रकार प्रेम से हँसती-बोलती रहीं। बहिन कमला, जीजी के उस व्यवहार ने मुझे उनकी बिना दाम की चेरी बना दिया। मेरे प्राण भी उनके काम आ जायँ तो मैं

सहर्ष देने को तैयार हूँ। भगवान् ऐसी जीजी सबको दें। और क्या कहूँ बहिन, उन्होंने इससे भी अधिक किया। छः महीने पश्चात् ठीक वैसी ही दूसरी ज़ञ्जीर बनवा कर मेरे पास भिजवा दी। मैंने भी यह सोच कर कि अब अधिक सफ़ाई दिखलाना ठीक नहीं, उसे रख लिया।"

यह मेरी कहानी है। कहने का तात्पर्य यह कि तुमने नहीं किया तब तुम्हारी देवरानी ने तुम्हें चोरी लगाई, और मैंने किया था तब भी मेरी जीजी ने मुझे चोर नहीं समझा। यही सोच कर संसार की विचित्रता पर मुझे हँसी आई।

अब यह पत्र समाप्त करती हूँ। मुन्ना भी जाग उठा है। अपनी सास जी को मेरा पैरों-पड़ना कहना। अपना कुशल-समाचार सदा लिखती रहना।

तुम्हारी प्यारी सखी,

कुन्ती

पर्दा

पर्दा

"क्यों बेटा, अब की कुम्भ हरद्वार में होगा न ?"

"हाँ, हरद्वार में होगा । क्यों, क्या चलोगी ?"

"हाँ, इच्छा तो थी—एक बेर और नहा लेती, फिर बारह बरस बाद आवेगा—कौन जाने उस समय तक जीती रहूँ—न रहूँ ।"

"तो चलना, हर्ज क्या है ?"

"है कब ?"

"आज से बीस रोज़ है ।"

"अच्छी बात है, ज़रूर चलूँगी ।"

"यदि चलने का पक्का विचार हो तो मैं वहाँ ठहरने के लिए स्थान ठीक करूँ, क्योंकि उस समय वहाँ तिल धरने को भी जगह नहीं रहती ।"

"मेरा तो विचार पक्का है, ले चलना तेरे हाथ है । यदि तू चले तो अपना अभी से पक्का-पोढ़ा कर ले ।"

"अच्छी बात है ।"

रात के दस बज चुके हैं । एक कमरे में एक वृद्धा, जिसकी वयस ५० के ऊपर होगी और एक युवक जिसकी

अवस्था २५-२६ वर्ष के लगभग है, बैठे उपर्युक्त वार्त्तालाप कर रहे हैं।

युवक ने कहा—अच्छा तो कल मैं अपने एक मित्र को चिट्ठी लिखूँगा। वह वहीं हरद्वार में रहते हैं, ठहरने का प्रबन्ध कर देंगे।

वृद्धा—वहाँ कोई दस-बीस रोज़ तो ठहरना नहीं, केवल दो रोज़ की तो बात ही है।

युवक—अरे वहाँ खड़े होने की तो जगह मिलती नहीं है—ऐसी भीड़ होती है। पहले से प्रबन्ध कर लेना ठीक है, फिर चाहे दो रोज़ रहना, चाहे दस रोज़; मना कौन करता है?

वृद्धा—अच्छी बात है, जैसा तेरी समझ में आवे, कर। मैं चलूँगी ज़रूर, इतना याद रखना।

युवक—हाँ-हाँ, ज़रूर चलना। तुम निश्चिन्त रहो, मैं सब प्रबन्ध कर लूँगा।

वृद्धा—कमरे में लगे हुए क्लाक की ओर देख कर बोली—अच्छा, अब जाकर सोओ, साढ़े दस बजने वाले हैं। कल सवेरे ही चिट्ठी लिख देना।

युवक उठ कर बोला—हाँ, लिख दूँगा।

यह कह कर युवक कमरे के बाहर आया और उसी कमरे से मिले हुए दूसरे कमरे में घुसा। यह कमरा पहले कमरे से अधिक सजा हुआ था। इस कमरे में एक

ओर मेज़ लगी थी और उसके पास दो-तीन कुर्सियाँ रक्खी थीं। इनमें से एक पर एक सुन्दर नवयुवती बैठी हुई थी। एक ओर दो पलँग बिछे हुए थे और उन पर बिस्तर लगे थे। युवती एक अङ्गरेज़ी पुस्तक के चित्र देख रही थी।

युवक युवती के पास पहुँच कर मुस्कराते हुए बोला—क्या हो रहा है ?

युवती—इस किताब की तस्वीर देख रही हूँ। इसमें सब साहब-मेमों की तस्वीरें हैं।

युवक—और क्या अङ्गरेज़ी किताब में तुम्हारी तस्वीर होती ?

युवती कुछ शर्माकर बोली—वाह ! मेरी तस्वीर क्यों हो, मुझे क्या ऐसी सस्ती समझ लिया है।

युवक हँस कर बोला—पुस्तकों में तस्वीरें सस्ते आदमियों की नहीं रहतीं, मँहगे आदमियों की रहती हैं।

युवती—रहती होंगी, हमें क्या करना है !

यह कह कर युवती ने पुस्तक बन्द करके एक ओर रख दी और कहा—आज माता जी से बड़ी बातें हुईं ?

युवक युवती के बराबर ही दूसरी कुर्सी पर बैठ कर बोला—हाँ, कुम्भ में जाने को कहती हैं।

युवती उत्सुक होकर बोली—सच ?

युवक—हाँ-हाँ, जाना पक्का हो गया है।

युवती—मैं भी चलूँगी।

युवक—तुम ! तुम क्या करोगी चलके ? वहाँ बड़ी भीड़ होती है।

युवती—भीड़ होती है तो क्या हुआ ?

युवक—हुआ क्यों नहीं, वहाँ तुम्हें सँभालेगा कौन ?

युवती—माता जी को जो सँभालेगा, वही हमें भी सँभालेगा।

युवक—अरे नहीं, तुम्हारा जाना ठीक नहीं।

युवती—क्यों, मेरा जाना क्यों ठीक नहीं ? क्या मैं आदमी नहीं हूँ ?

युवक—आदमी-वादमी तुम सब कुछ हो ; पर वहाँ बड़ी दिक़्क़त होती है—न ठहरने का ठीक होता है, न खाने-पीने का।

युवती—जहाँ तुम और माता जी ठहरोगे, वहीं मैं भी ठहर जाऊंगी ; जो तुम लोग खाओगे, वही मैं भी खा लूँगी। मैंने आज तक कुम्भ नहीं देखा, मेरी देखने को बड़ी इच्छा है।

युवक—अरे तो देख लेना, अभी बहुत उमर पड़ी है। यह बातें बुढ़ापे में की जाती हैं।

युवती—बुढ़ापे की बुढ़ापे में देखी जायगी। आज-कल एक पल का तो भरोसा है ही नहीं। देखो न, पड़ोस

के वकील साहब की घर वाली बैठे-बैठे मर गई और अभी जवान थी। आजकल ज़िन्दगी का कोई भरोसा है!

युवक—यह तुमने और दिक़्क़त पैदा कर दी।

युवती—हाँ, सारी दिक़्क़त मेरे ही ले जाने में है।

यह कह कर युवती ने मुख भारी कर लिया। युवक ने कहा—अच्छा देखो, कल मैं अपने एक मित्र को चिट्ठी लिखूँगा, यदि ठहरने का कोई अच्छा प्रबन्ध हो गया तो तुम भी चली चलना।

युवती—ठहरने का प्रबन्ध क्या? मेरे लिए कोई महल तो चाहिए नहीं—जहाँ तुम ठहरोगे वहीं मैं भी ठहर जाऊँगी।

युवक—हमारे ठहरने की भली चलाई! हमें क्या हम तो मैदान में भी रात काट सकते हैं; पर तुम्हारे लिए तो मकान की आवश्यकता पड़ेगी।

युवती—तो क्या वहाँ मकानों का टोटा है?

युवक—यही तो बात है। कुम्भ के अवसर पर कोठरी तक नहीं मिलती। लाखों आदमी आते हैं।

युवती—आख़िर लाखों आदमी कहीं ठहरते ही होंगे?

युवक—ऐसे ही ठहरते हैं। जिन्हें जगह मिल गई उन्हें मिल गई, बाक़ी मैदान में ही पड़े रहते हैं।

युवती—तो जहाँ सबको जगह मिलेगी, वहाँ हमें भी मिल जायगी।

युवक—मिल जाय तो चली चलना।

युवती—चाहे जगह मिले या न मिले, तुम जाओगे तो मैं भी चलूँगी—यह याद रखना।

युवक—हाँ-हाँ, क्या हर्ज है? अच्छा अब चलो सोवें, नींद लगी है।

२

पं० श्यामाचरण अपनी माता तथा पत्नी-सहित हरद्वार चले। साथ में एक नौकर भी था। उनकी पत्नी वही पुराने ढङ्ग के परिच्छादन में थी—मिश्र-देश की मोमियाई की भाँति कपड़े से ढकी हुई, उस पर हाथ भर का लम्बा घूँघट! उनकी माता वृद्धा होने के कारण स्वयम् तो विषेश पर्दे का विचार नहीं करती थीं; पर पुत्रवधू के लिए उन्हें पर्दे की पूरी आवश्यकता थी। उनका वश चलता तो वह पुत्रवधू को सन्दूक़ में बन्द करके ले जातीं। पं० श्यामाचरण को भी अपनी पत्नी के पर्दे का पूरा ध्यान था; क्योंकि वह भी उसी वातावरण में पले थे, जिसमें कि पर्दे के विरुद्ध कुछ कहना भी पाप समझा जाता है—आचरण करना तो बहुत दूर की बात है।

स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी आने में देर थी। अतएव श्यामाचरण ने माता तथा पत्नी को प्लेटफ़ॉर्म पर एक कोने में बिठा दिया और स्वयम् प्लेटफ़ॉर्म पर टहलने

लगे। परन्तु ध्यान उनका पत्नी की ही ओर था कि कहीं उसके हाथ तो नहीं खुले हैं, कहीं घूँघट की लम्बाई तो नहीं घट रही है। उधर उनकी माता भी पुत्रवधू के पास इस प्रकार से बैठी थीं, जिस प्रकार कोई ज्वर-पीड़ित रोगी के पास बैठता है। जहाँ ज़रा पैर खुले, झट पैरों को ढँक दिया; जहाँ ज़रा बहू की उँगली बाहर चमकी, वहीं उन्होंने उस पर कपड़ा थोप दिया। पं० श्यामाचरण लोगों की निगाहों को भी ताड़ रहे थे। जहाँ किसी ने भूले से भी उनकी पत्नी की ओर देखा, बस उनकी भृकुटी चढ़ गई। समझे कि हमारी पत्नी को घूर रहा है। यद्यपि स्वयम् अन्य स्त्रियों को घूर रहे थे; पर इसे वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। वह स्वयम् चाहे जिसे ताकें, चाहे जिसे घूरें; पर उनकी पत्नी की ओर कोई दृष्टि न उठावे। यद्यपि उनकी पत्नी कपड़े की बण्डल बनी बैठी थी, पर इतने पर भी उन्हें तुष्टि नहीं थी। कदाचित् किसी की दृष्टि एक्स-किरणों का काम कर जाय और उनकी पत्नी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग देख ले। अपनी पत्नी को बाहर ले जाने में सबसे बड़ी दिक़्क़त उनके लिए यही थी कि पत्नी को पूर्ण पर्दे में रखने का समुचित प्रबन्ध वह नहीं कर पाते थे। यद्यपि इस समय पत्नी की बेपर्दगी से उन्हें घोर कष्ट हो रहा था; क्योंकि कपड़े से पूरा पर्दा उनकी समझ में असम्भव था, पूरा पर्दा तो केवल दीवारें ही

कर सकती हैं। परन्तु हर समय दीवारों का साथ रहना, विशेषतः यात्रा में, असम्भव है। इसलिए बेचारे परेशान थे। वह इसे एक मुसीबत समझ रहे थे। पर करते क्या? विवश थे। इसलिए इस मुसीबत को धैर्य के साथ झेल रहे थे। सोचते थे, सदा दिन एक से नहीं रहते, ईश्वर चाहेगा तो यह विपत्ति टल ही जायगी।

उचित समय पर गाड़ी आई। श्यामाचरण ने केवल अपने नौकर के लिए थर्ड क्लास का टिकिट ख़रीदा था और अपने सबके लिए इएटर का। श्यामाचरण ने पहले तो पूरी ट्रेन देख कर यह तय किया कि कहाँ जगह ख़ाली है। ख़ाली जगह का तात्पर्य उनका यह था कि एक पूरा कम्पार्टमेएट ख़ाली मिल जाय। परन्तु उनके दुर्भाग्य से ऐसा कोई कम्पार्टमेएट न मिला। एक कम्पार्टमेएट में दो बर्थ ख़ाली थे, पर वे उनके लिए पर्याप्त न थे। उन्होंने दौड़ कर अपनी माता से कहा—जगह तो कहीं है नहीं, बड़ी भीड़ है। ज़नाने दर्जे में जगह ख़ाली है, पर वहाँ तुम लोगों का बैठना ठीक नहीं।

माता बोलीं—हमें तुम अपने साथ ही बिठाओ, हम ज़नाने दर्जे में नहीं बैठेंगी। उस दिन अख़बार में पढ़ा था, क्या हाल हुआ?

श्यामाचरण—हाँ, इसीलिए तो मैं आप ही उचित नहीं समझता। अच्छा चलो, एक दर्जे में दो बेञ्चें ख़ाली

है, वहाँ बैठ जाओ। पर्दा तान लेंगे। अब तो जो पड़ेगी वह भोगनी ही होगी, चलो झटपट।

श्यामाचरण ने माता तथा पत्नी को ले जाकर उसी इण्टर के दर्जे में बिठाया, जिसमें दो बेञ्चें ख़ाली थीं।

असबाब-वसबाब रखवाने के पश्चात् आपने एक चादर निकाली और उस बर्थ के चारों ओर, जिस पर उनकी माता तथा पत्नी बैठी थीं, बाँधने लगे। उस दर्जे में बैठे हुए आदमियों में से एक ने कहा—इससे तो अच्छा यह रहता कि आप औरतों को ज़नाने दर्जे में बिठा देते, वहाँ काफ़ी जगह है।

श्यामाचरण बोले—यह मेरे उसूल के ख़िलाफ़ है। ज़नाने दर्जे में औरतों की ख़बरदारी कौन करेगा? रात का सफ़र ठहरा। अक्सर बदमाश लोग ज़नाने दर्जे में घुस आते हैं। एक वारदात तो हाल ही में अख़बारों में छपी थी।

एक दूसरे सज्जन बोले—अजी ऐसा कभी-कभी हो जाता है, और वह भी तब, जब कि एक-दो औरतें हों। ऐसा होने लगे तो फिर ज़नाने दर्जे रक्खे ही क्यों जायँ। ज़नाना दर्जा बिलकुल पास ही है, आप कभी-कभी उतर कर देख लिया कीजिएगा।

श्यामाचरण—अजी रात में पड़के सोएँगे या पहरा देते चलेंगे?

एक तीसरे सज्जन बोले—हमारी इतनी उम्र होने

आई, हमारी औरतें सदा ज़नाने दर्जे में ही सफ़र करती हैं। मगर जनाब, आज तक तो कोई वारदात हुई नहीं।

एक अन्य महाशय बोले—अजी ऐसा कहीं हो सकता है। वह तो कभी इत्तिफ़ाक़ से ऐसा हो जाता है। सो जनाब, इसके लिए क्या किया जाय? घर में चोरी नहीं हो जाती है? वह तो बात ही दूसरी है।

श्यामाचरण बड़े व्यङ्ग से बोले—तो जनाब, ऐसा अवसर ही क्यों आने दें, जो चोर को चोरी करने का मौक़ा मिले?

उपस्थित लोग मुस्करा कर चुप हो रहे। एक ने धीमे स्वर में कहा—डिबिया में बन्द करके जेब में डाल लिया करो, हमारी बला से।

पर्दा तान कर श्यामाचरण ने सन्तोष की एक दीर्घ-निश्वास छोड़ी और सामने ही दूसरे बर्थ पर बैठ गए। उनका नौकर थर्ड क्लास में चला गया।

गाड़ी चलने के पाँच मिनिट पहले टिकिट-चेकर आया। उसने टिकिट देख कर पूछा—इस पर्दे में कितनी औरतें हैं?

श्यामाचरण—दो।

चेकर—सिर्फ़ दो! और उनके लिए आपने पूरे बर्थ पर क़ब्ज़ा कर लिया? वाह साहब; वाह! इस पर्दे को हटाइए।

श्यामाचरण—क्यों साहब, पर्दा क्यों हटाएँ ? क्या किराया नहीं दिया, मुफ़्त बैठे हैं ?

चेकर—यह कौन कहता है ? मगर जनाब, किराया तो आपने दो ही आदमियों का दिया है और जगह आपने घेरी है छः आदमियों की। यह कैसे हो सकता है। या तो चार टिकिट और ख़रीदिए या इस पर्दे को हटाइए।

श्यामाचरण—यह तो अजब अन्धेर है। हमारी ख़ुशी, हम चाहे पर्दा तानें चाहे कुछ करें।

चेकर—आप पर्दा नहीं क़नात लगवाइए, शामियाना तानिए—मना कौन करता है। मगर जगह दो ही आदमियों की घेरिए। वह देखिए, सामने लिखा है, देख लीजिए, एक बर्थ पर छः आदमी बैठ सकते हैं।

श्यामाचरण—लिखे होने से क्या होता है ? अधिक-तर तो बैठने को जगह नहीं मिलती, एक-एक बर्थ पर दस-दस आदमी बैठते हैं।

चेकर—मैं कम की बात कर रहा हूँ, आप ज़्यादा की कह रहे हैं। यह नहीं हो सकता कि एक या दो आदमी पूरा बर्थ घेर लें और दूसरों को बैठने न दें। अगर इस बर्थ पर छः आदमी हो जायँ तब तो आपको हक़ हासिल है कि आप किसी को बैठने दें या न दें, लेकिन जब तक छः नहीं हो जाते, तब तक आप इस पर किसी को बैठने से रोक नहीं सकते। पर्दा तानने के मानी यही

है कि आप दूसरे को इस बर्थ पर बैठने से मना करते हैं। पर्दा तना देख कर कौन भला आदमी इसके अन्दर घुसेगा?

यह सुन कर दर्जे के सब लोग हँस पड़े?

एक महाशय हँसते हुए बोले—अगर कोई पर्दे के अन्दर घुसना भी चाहे तो भला यह काहे को घुसने देंगे।

श्यामाचरण यह सुन कर कट गए। लज्जादेवी के साथ क्रोधदेव सदैव पधारा करते हैं। अतएव उन्हें क्रोध आगया। वह उन महाशय से बोले—आप ज़रा ज़बान सँभाल कर बातें कीजिए, वरना अच्छा न होगा!

चेकर बोल उठा—ख़ैर, इस झगड़े से क्या मतलब, आप या तो पर्दा हटाइए या चार टिकिट और ख़रीदिए।

श्यामाचरण—पर्दा तो हट नहीं सकता। पर्दानशीन औरतें बेपर्द कैसे बैठ सकती हैं?

चेकर—पर्दानशीन औरतों के लिए ही ज़नाना दर्जा रक्खा जाता है। उसमें बिठा दीजिए।

एक महाशय मुस्करा कर बोले—ऐसा नहीं हो सकता। ज़नाने दर्जे में औरतें लुट जाती हैं।

इस पर पुनः सब हस पड़े! इसी समय गार्ड ने सीटी दी। चेकर बोला—तो कहिए, क्या इरादे हैं? गाड़ी छूटती है।

श्यामाचरण—पर्दा तो हट नहीं सकता।

चेकर—अच्छी बात है, न हटाइए। अगले स्टेशन पर आपको चार टिकिटों का चार्ज देना पड़ेगा।

यह कह कर चेकर चला गया।

गाड़ी चली और अगले स्टेशन पर पहुँची। गाड़ी के रुकते ही दो चेकर घुस आए और बोले—या तो पर्दा हटाइए या चार टिकिटों का चार्ज दीजिए।

श्यामाचरण की नाक में दम हो गया। मन में हिसाब जो लगाया तो चार टिकिटों का चार्ज देने में तीस रुपए लगे जाते थे। इधर चेकर बारम्बार यही एक बात कह रहे थे। अन्त में श्यामाचरण चिल्ला कर बोले—तो आप यही चाहते हैं कि चार सीटें ख़ाली रहें?

चेकर—जी हाँ।

श्यामाचरण उठे और उन्होंने एक ओर से पर्दा खोल कर इस प्रकार बाँध दिया कि उनकी माता तथा पत्नी तो पर्दे के अन्दर रहीं और आधे से अधिक बर्थ पर्दे के बाहर हो गया। यह प्रबन्ध करके श्यामाचरण बोले—कहिए, अब ठीक है?

चेकर—जी हाँ, ठीक है। अब हमें कोई एतराज़ नहीं।

उसी समय दो मुसाफ़िर अन्दर आए। श्यामाचरण उचक कर अपनी माता के पास जा बैठे। वे दोनों मुसा-

फिर दूसरी ओर उनकी बग़ल में बैठ गए। इस प्रकार पूरा बर्थ घिर गया। दोनों चेकर चले गए।

एक महाशय बोले—बात तो आपने अच्छी सोची, पर इसमें औरतों को तकलीफ़ होगी। उन्हें बैठे रहना पड़ेगा। अगर पर्दा न रहता तो औरतें उस पर लेट सकती थीं। औरतों को देख कर उस पर फिर कोई दूसरा आदमी न बैठ सकता। औरतें आराम से सोती हुई चली जातीं। अब तो तकलीफ़ होगी।

श्यामाचरण—जनाब, सफ़र में आराम मिलता कहाँ है? सफ़र में तो तकलीफ़ ही तकलीफ़ है।

३

लखनऊ में गाड़ी बदली जाती थी। श्यामाचरण ने गाड़ी से उतर कर प्लेटफ़ॉर्म पर अड्डा जमाया। देहरा-दून एक्सप्रेस के आने में दो घण्टे की देर थी। श्यामा-चरण सबको प्लेटफ़ॉर्म पर छोड़ कर इधर-उधर घूमने चले गए। गाड़ी आने के पन्द्रह मिनिट पहले आप लपकते हुए आए और अपना अड्डा ढूँढ़ने लगे। उन्होंने देखा कि जहाँ वह अपना असबाब छोड़ गए थे, वहाँ उनकी स्त्री अकेली है। यह देख कर उन्होंने पूछा, माता जी कहाँ हैं? बुधुवा (नौकर) कहाँ गया?

स्त्री ने कोई उत्तर न दिया। श्यामाच[illegible] पुनः वही

प्रश्न किया, स्त्री फिर मौन रही। इस बार उन्होंने स्त्री का कन्धा पकड़ कर हिलाया। वह कन्धा पकड़ कर हिला ही रहे थे कि दूसरी ओर से एक आदमी लपकता हुआ आया और उसने एक घूँसा श्यामाचरण के मुँह पर मारा। श्यामाचरण की आँखों के आगे सितारे चमकने लगे। वह व्यक्ति बोला—"बदमाश कहीं का, दिन-दहाड़े औरतों को छेड़ता है।" यह कह कर उसने एक घूँसा और जड़ा। यह देख कर कुछ आदमी जमा हो गए। एक ने पूछा—"क्या मामला है?" वह व्यक्ति बोला—ज़रा देखिए तो सही, औरतों को छेड़ता है! समझा होगा कि अकेली है।"

एक दूसरे महाशय—पुलिस में दीजिए साले को। यह कपड़े और यह हरकत?

एक तीसरे सज्जन बोले—अजी आजकल बदमाश इसी फ़ैशन में रहते हैं।

श्यामाचरण दो घूँसे खाकर हतबुद्धि से हो गए थे। अब उन्होंने अपने होश-हवास ठीक करके कहा—क्षमा कीजिए, मैंने इसे अपनी स्त्री समझा था।

यह सुनते ही उस व्यक्ति ने एक घूँसा और जमाया और बोला—यह देखिए, उस पर और तुर्रा—अपनी स्त्री समझा था!

एक व्यक्ति—अजी आप पुलिस में दीजिए इस हराम-ज़ादे को! बड़ा पक्का बदमाश मालूम होता है।

इतने में भीड़ से एक आदमी बोला—अरे मालिक, मालकिन और माँ जी वैसी बैठी हैं।

श्यामाचरण ने देखा, उनका नौकर बुधुवा खड़ा है। झल्लाकर बोले—क्यों बे पाजी, मैं तो तुम लोगों को इधर बिठा गया था, तुम उधर कहाँ चले गए?

बुधुवा—मालिक, वह कुली कहन लगा कि इन्टर किलास वैसी लागत है, वैसी चल के बैठो, तौन हम वैसी चले गए।

अब लोगों की समझ में आया कि वास्तव में भूल हो गई। वह व्यक्ति भी बोला—वाह! यह अच्छी रही।

श्यामाचरण—अब कहिए तो मैं आपको पुलिस के सुपुर्द करूँ।

वह व्यक्ति—आप मेरी स्त्री का कन्धा पकड़ कर हिला रहे थे कि नहीं, पहले यह बताइए!

श्यामाचरण—मैंने तो कहा था कि मैं इन्हें अपनी स्त्री समझा था। आपने मेरी सुनी ही नहीं। हाथ, पैर, मुँह तो सब ढँका हुआ है—मेरी स्त्री के और आपकी स्त्री के कपड़े एक ही तरह के हैं, इसलिए यह ग़लती हुई।

एक सज्जन बोल उठे—अच्छा अब जाने दीजिए, ग़लती दोनों तरफ़ हुई। उन्होंने इनको अपनी स्त्री समझा, आपने इन्हें बदमाश समझा, दोनों बेक़सूर!

श्यामाचरण—तो इनका क्या बिगड़ा, मेरा तो कल्याण हो गया।

लोगों ने समझा-बुझाकर श्यामाचरण को बिदा किया। श्यामाचरण का एक ओंठ सूज गया और बाईं आँख काली पड़ गई। माता के सामने जो पहुँचे तो उसने श्यामाचरण की यह दुर्दशा देख कर और सब हाल सुन कर उन्हें आड़े हाथों लिया—अपना तो नवाब की तरह छड़ी घुमाते चल दिए, यहाँ हम सब अकेली रह गईं—कुली इधर ले आया। और तुम ऐसे अन्धे हो गए कि अपने-पराए को नहीं पहचाना। यह तो समझा होता कि वह अकेली कैसे रह सकती है—उसके पास में बैठी होती, बुधुवा होता। वह तो कहो बुधुवा भीड़ देख कर पहुँच गया, नहीं पुलिस के हवाले कर दिए जाते।

श्यामाचरण झल्लाकर बोले—जी हाँ, अन्धेर है! और मैं चुपचाप चला जाता?

इसी तर्क-वितर्क में गाड़ी आ गई। श्यामाचरण ने दौड़-धूप करके बड़ी मुश्किल से एक बर्थ पर उसी प्रकार कपड़े का छोटा-सा घिरौंदा बनाकर माता तथा पत्नी को बिठाया। बेचारे बड़े परेशान! हुलिया ऐसा बना था कि देखते ही लोग समझ जाते थे कि कहीं से पिट कर आए हैं। श्यामाचरण मन में सोचते थे कि न जाने किस बुरी सायत से चले थे कि आधा सफ़र तय नहीं हुआ और

सब कर्म हो गए। यदि इस यात्रा से जीवित लौट आवें तो यही बहुत है।

ख़ैर, किसी न किसी प्रकार सवेरे हरद्वार स्टेशन पर पहुँच गए। रात भर तीनों प्राणियों में से किसी को पलक झपकाना तक नसीब न हुआ। बैठे-बैठे रात काटी।

४

मित्र के मकान पर पहुँच कर श्यामाचरण ने डेरा डाला। अभी अच्छी तरह बैठने भी न पाए थे कि माता ने गङ्गा-स्नान करने की इच्छा प्रकट की। श्यामाचरण बोले—अभी तो सफ़र से चले आ रहे हैं, रात भर सोने को नहीं मिला, बदन चूर हो रहा है, आज घर पर ही नहा लो! कल कुम्भ है—कल नहाना।

माता बोलीं—वाह! तीर्थ-स्थान में घर पर नहावें? इतना रुपया ख़र्च करके और दुख उठाकर यहाँ तक आए हैं तो क्या घर पर नहाने के लिए?

अन्त में विवश होकर श्यामाचरण माता तथा पत्नी को गङ्गा-स्नान कराने ले चले। चलते समय मित्र ने कहा—ज़रा होशियारी से रहिएगा, भीड़ बड़ी है।

श्यामाचरण हर की पैड़ी पर जो पहुँचे तो भीड़ देख कर घबरा गए। माता से बोले—भीड़ बहुत है, तुम दोनों नहा आओ, हम यहाँ बैठे हैं। नहाकर यहीं आ जाना।

माता ने पूछा—तू नहीं नहाएगा ?

श्यामाचरण—मैं बाद को नहा लूँगा, नहीं डेरे पर ही नहा लूँगा। मेरे लिए यह आवश्यक नहीं है कि यहीं नहाऊँ।

दोनों स्त्रियाँ नहाने चली गईं। बुधुवा भी श्यामाचरण के पास बैठ गया।

आध घण्टे में उनकी माता लौट कर आईं, परन्तु वह अकेली थीं। श्यामाचरण ने घबरा कर पूछा—"बहू कहाँ रह गई ?" माता ने घूम कर अपने पीछे की ओर देखा और बोलीं—अरे! मेरे पीछे-पीछे तो आ रही थी, कहाँ रह गई !

श्यामाचरण ने सिर पकड़ कर कहा—ग़ज़ब हो गया। अब भला इस भीड़ में कहाँ मिलेगी ? मैं तो पहले ही समझ गया था कि कुछ अनर्थ अवश्य होगा। आरम्भ ही से वैसे लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे।

माता बोलीं—तो अरे अब इस प्रकार सिर पकड़ कर बैठने से क्या होगा ? कहीं ढूँढ़ो। हाय! ऐसा जानती तो मैं कभी न आती। वह यहाँ तक मेरे पीछे-पीछे आई, यहाँ से न जाने कहाँ ग़ायब हो गई।

श्यामाचरण उठे—बुधुवा से कहा—तू इधर आगे बढ़ कर देख, मैं उधर जाता हूँ। माता से बोले—तुम यहाँ

से हिलना नहीं, या तो यहीं बैठी रहना या सीधी डेरे पर जाना—समझीं?

यह कह कर श्यामाचरण दूसरी ओर भागे। यात्रियों की भीड़ दो ओर जा रही थी, एक ओर बुधुवा गया था।

श्यामाचरण लपकते हुए और प्रत्येक पर्दे वाली स्त्री को देखते हुए चले जा रहे थे। थोड़ी दूर गए थे कि उन्होंने देखा कि एक स्त्री, जो उन्हीं की स्त्री-सदृश प्रतीत होती है, एक वृद्धा के पीछे-पीछे चली जा रही है। वह वृद्धा उनकी माता के आकार-प्रकार की थी और वैसे ही कपड़े पहने थी। श्यामाचरण ने सोचा—हो न हो, यही हमारी स्त्री है और माता जी के धोखे इस वृद्धा के पीछे चली आई है। वैसे चाहे श्यामाचरण तुरन्त उसका हाथ पकड़ लेते, पर लखनऊ-स्टेशन पर इसी कारण पिट चुके थे, इसलिए उनका साहस न पड़ा। वह उस स्त्री के पास पहुँचे और उन्होंने अपनी पत्नी का नाम लेकर पुकारा। उनके पुकारते ही वह ठिठक गई। उसके ठिठकते ही श्यामाचरण समझ गए कि उन्हीं की पत्नी है। अब उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया और कर्कश स्वर में बोले—तुम इधर कहाँ चली आईं? अन्धेर ही कर दिया था—यदि थोड़ी देर और हो जाती तो फिर तुम्हारा पता न लगता।

उनकी पत्नी बोली—मुझे इस घूँघट के मारे कुछ

दिखाई तो पड़ता नहीं, ख़ाली माता जी के पैर देखती आ रही थी।

श्यामाचरण—फूँक दो इस घूँघट को, इसमें आग लगा दो। इस घूँघट ने खोलहो कर्म तो करा दिए। अन्त में तुम्हें भी हाथ से खोया था, पर यह तो कहो न जाने कौन से पुण्य के कारण तुम मिल गईं।

इसी प्रकार की बातें करते हुए श्यामाचरण पत्नी को उसी स्थान पर लाए, जहाँ माता को बिठा आए थे। वहाँ से माता को साथ लेकर चले। बुधुवा भी इधर-उधर देख कर आ गया था।

सब लोग सकुशल डेरे पर पहुँच गए। उनके मित्र ने पूछा—बड़ी देर लगाई?

श्यामाचरण बोले—अरे यार, क्या बतलावें! कुम्भ नहाने क्या आए, आफ़त मोल ले ली। ऐसी मुसीबत उम्र-भर नहीं झेली थी।

मित्र ने पूछा—क्यों? क्या हुआ, मुसीबत कैसी?

श्यामाचरण—अब तुमसे क्या बतावें। घर से चले तो रेल में चेकरों से झगड़ा हुआ। यार लोगों ने फ़ब्तियाँ कसीं, मैं ख़ून का घूँट पी-पीकर रह गया, अन्यथा मार-पीट हो जाती। लखनऊ-स्टेशन पर अपनी पत्नी के धोखे से एक दूसरी स्त्री से बात करने लगा—वहाँ मार-पीट हो गई। उसका प्रमाण आप मेरी सूरत देख कर ही पा

गए होंगे ? रेल में रात जैसे काटी, हमीं जानते हैं—घोर कष्ट हुआ। अब नहाने जो गए तो पत्नी खो गई। यह तो कहो तुरन्त दौड़ पड़े, अन्यथा कुम्भ के पीछे पत्नी भी हाथ से जाती।

मित्र—आख़िर यह सब हुआ क्यों ?

श्यामाचरण—क्या बताऊँ। आप जानते हैं, हम लोगों में पर्दे का विचार बहुत होता है, उसी पर्दे के पीछे यह सब दुर्गति हुई।

मित्र—तो आख़िर आप इतना पर्दा करते क्यों हैं ? आप तो पढ़े-लिखे आदमी हैं, फिर भी इन बातों को नहीं छोड़ते।

श्यामाचरण—पुरानी प्रथा चली आ रही है, उसी के अनुसार हम भी चलते हैं।

मित्र—अजी पुरानी प्रथा को चूल्हे में झोंकिए ! आजकल उन प्रथाओं से कष्ट ही मिलता है—सुख नहीं।

श्यामाचरण—पर्दा न होने से लोग औरतों पर बुरी दृष्टि डालते हैं।

मित्र—तो इससे क्या हुआ ? क्या आप नहीं अन्य स्त्रियों को देखते ? यदि केवल देखने का नाम ही बुरी दृष्टि डालना है, तो इसका तो कोई इलाज नहीं। अच्छी वस्तु को सभी देखते हैं, किन्तु देखने से होता क्या है ? यदि लोग बुरी दृष्टि डालते हैं तो उससे स्त्रियों को क्या

हानि पहुँचती है? यहाँ हरद्वार में हज़ारों पञाबिनें आती हैं—और पञाब की खत्री-जाति आप जानते ही हैं कितनी सुन्दर जाति है—उनकी स्त्रियाँ स्वच्छन्द घूमा करती हैं, उनका कोई क्या छीन लेता है? गुजरातिनें, मराठिनें सब बेपर्द घूमा करती हैं, उनका कोई क्या बिगाड़ लेता है? सच पूछिए तो पर्दे वाली स्त्री को देखने के लिए लोग अधिक उत्सुक रहते हैं। जहाँ ज़रा हाथ-पैर अच्छे देखे, वहीं यह उत्सुकता उत्पन्न होती है कि ज़रा मुँह भी देखने को मिल जाय। पर्दा-हीन स्त्रियों को एक बार देखा और सन्तुष्टि हो गई, उसमें कोई उत्सुकता शेष नहीं रह जाती। जो स्त्री मुँह खोले होगी उसको अधिक देखने का साहस किसी पुरुष को नहीं हो सकता।

श्यामाचरण—गुण्डे और बदमाश तो देखते ही हैं।

मित्र—स्त्री की पवित्र दृष्टि के सामने कोई गुण्डा और बदमाश नहीं टिक सकता। मैंने तो आज तक कोई गुण्डा और बदमाश ऐसा नहीं देखा, जिसने किसी पर्दा-हीन स्त्री को छेड़ा हो। पर्दे वालियों को छेड़ते बहुधा देखा है।

श्यामाचरण—पर्दा न होने से स्त्रियों का चित्त भी बहक सकता है।

मित्र—तो इसके अर्थ तो यह हुए कि आपको अपनी स्त्री के मन की पवित्रता पर भरोसा नहीं। यदि स्त्री ही

ख़राब हो तो जनाब, एक पर्दा क्या, बीस पर्दे भी उसे पवित्र नहीं रख सकते। वह घूँघट के भीतर से ही शिकार खेलती है। यह और भी अधिक भयानक है। आप तो समझते हैं कि आपकी स्त्री घूँघट निकाले बैठी है, और वहाँ आपकी दृष्टि बचाकर आँखें लड़ाई जा रही हैं। यदि घूँघट न हो तो स्त्री ऐसा कदापि नहीं करेगी, उसे भय रहेगा कि कहीं कोई उसके इस आचरण को देख न ले। इसके अतिरिक्त पर्दे से एक बड़ी भारी दिक़्क़त यह है कि स्त्री को यात्रा में भेड़ी की तरह हाँकना पड़ता है—बिना आपके वह एक पग नहीं चल सकती। यदि पर्दा न हो तो उसे रास्ते का, परिस्थिति का, अपने-पराए का ज्ञान हो जाय और उस समय आपको उसके साथ होने से ज़रा भी कष्ट न पहुँचे। मैं तो जब कहीं बाहर जाता हूँ, तो अपनी स्त्री से मुझे आराम ही मिलता है—कष्ट ज़रा भी नहीं। मैं केवल देख-रेख रखता हूँ, अन्यथा वह स्वयं असबाब धरा लेती है, स्टेशनों पर आवश्यक वस्तु ख़रीद लेती है—सब काम कर लेती है। आप अपने को देखिए कि दो स्त्रियों को यहाँ तक लाने में सब कर्म हो गए। इस बीसवीं सदी में ये बात! सच मानना, मुझे तो हँसी छूटती है। पञ्जाबी, मराठी, गुजराती स्त्रियाँ अकेली सैकड़ों मील की यात्रा करती हैं और उनका कोई बाल बाँका नहीं कर पाता। यह सब मन का भ्रम है। जो

ख़राब है, वह प्रत्येक दशा में ख़राब रहेगी—चाहे पर्दे में रहे, चाहे पर्दे के बाहर ; और जो अच्छी है, वह प्रत्येक दशा में अच्छी रहेगी।

श्यामाचरण—यार, जब लोग स्त्री को ताकते हैं तो बुरा मालूम होता है !

मित्र—यह भी महा मूर्खता है। आप अच्छी टोपी पहन कर निकलते हैं और लोग आपकी टोपी देखते हैं, तब आपको बुरा क्यों नहीं लगता ? उस समय तो आपको प्रसन्नता होती है कि हमारे पास भी एक ऐसी चीज़ है, जिस पर लोगों की दृष्टि पड़ती है।

श्यामाचरण—टोपी और स्त्री में अन्तर है।

मित्र—अन्तर आपका अपना बनाया हुआ है। यदि कुछ अन्तर है भी, तो वह अन्तर टोपी की निकृष्टता और स्त्री की श्रेष्ठता का है। आपकी टोपी को लोग चुरा ले जा सकते हैं, पर आपकी स्त्री को चुरा ले जाना सरल नहीं है।

श्यामाचरण—कहते तो ठीक हो। मुझे भी इस पर्दे के कारण इतना कष्ट हुआ है कि मेरा हृदय ही जानता है।

मित्र—फिर भी तुम उसे त्यागते नहीं, यह आश्चर्य की बात है।

श्यामाचरण—इष्ट-मित्र हँसेंगे।

मित्र—आरम्भ में ही, क्योंकि आकस्मिक परिवर्त्तन

सबका ध्यान आकर्षित करेगा, उसके पश्चात् फिर कुछ नहीं—साधारण बात हो जायगी।

श्यामाचरण—पुरानी प्रथा चली आ रही है, यही विचार है।

मित्र—यार, तुम निरे चोंच रहे। अरे भई, पुरानी प्रथा से जब लाभ के बदले हानि है तो ऐसी प्रथा किस काम की। यह प्रथा मुसलमानी राज्य-काल से पड़ी है। उसके पहले पर्दे का कहीं नाम न था। मुसलमान-शासक सुन्दर स्त्रियों को छीनने की चेष्टा करते थे, इस कारण लोगों ने पर्दे में रखना आरम्भ किया कि न देखेंगे न नीयत बिगड़ेगी। अब तो वह बात नहीं है, अब किसी की नीयत बिगड़ेगी तो वह कर क्या सकता है?

श्यामाचरण—अच्छी बात है, मैं इसे छोड़ने की चेष्टा करूँगा।

मित्र—चेष्टा क्या घर के अन्दर पहुँच कर करोगे? यही अवसर है। कल कुम्भ है, कल आज से कहीं अधिक भीड़ होगी। आज घूँघट के कारण तुम्हारी पत्नी लगभग खो ही गई थी, कल फिर वही बात हो सकती है। इसके अतिरिक्त अभी लौट कर जाने में रेल-यात्रा करनी है।

रेल-यात्रा का नाम सुन कर श्यामाचरण का हृदय काँप उठा। उन्होंने कहा—यार्इ तो तुम पते की कह रहे हो।

मित्र—मेरी तो यह सम्मति है कि आज ही इस पर्दे को हटा दो। तीर्थ-स्थान है—यह शुभ काम इसी शुभ-स्थान से आरम्भ करो।

श्यामाचरण अच्छी बात है, आज ही लो।

श्यामाचरण ने उसी दिन से पर्दे का अन्त कर दिया। साथ ही उनके कष्टों का भी अन्त हो गया। अब पग-पग पर उन्हें स्त्रियों के साथ रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हरद्वार में वह एक सप्ताह रहे। दो दिन के पश्चात् फिर उन्हें स्त्रियों के साथ जाने की आवश्यकता नहीं रही। सास-बहू अकेले गङ्गा-स्नान कर आती थीं, बाज़ार से इच्छित वस्तु ख़रीद लाती थीं।

लौटने में रेल में भी उन्हें कोई कष्ट न हुआ। न पर्दा तानने का झञ्झट, न चेकरों से कहा-सुनी, न यारों की फ़ब्तियाँ। आनन्द से बर्थ पर स्त्रियों को बिठा दिया। स्त्रियों को देख कर पुरुष स्वयं बर्थ ख़ाली कर देते थे। आराम से दोनों स्त्रियाँ एक बर्थ पर सोती हुई चली आईं।

अब आजकल श्यामाचरण पर्दे के घोर विरोधी हो गए हैं।

सोहाग की साड़ी

सोहाग की साड़ी

रात के आठ बज चुके हैं। एक साधारण मकान के एक कमरे में चारपाई पर एक नवयुवक सिर पर हाथ धरे बैठा है। उसके सामने ही भूमि पर बिछी हुई एक चटाई पर एक सुन्दर युवती सिर झुकाए बैठी है। युवती एक मामूली सफ़ेद धोती पहने है। उसके शरीर पर कोई अलङ्कार नहीं है—केवल पैरों में चाँदी की दो झाँझें और पैरों की एक-एक उँगली में एक-एक बिछुड़ा पड़ा हुआ है। हाथों में काँच की साधारण चूड़ियाँ हैं।

कुछ देर तक दोनों इसी प्रकार सिर झुकाए हुए बैठे रहे। हठात् युवक ने सिर उठा कर युवती की ओर देखा और बोला—क्या उपाय करें, कुछ समझ में नहीं आता? तुमने सब देख लिया है? कहीं सन्दूक़-वन्दूक़ में कोई चीज़ पड़ी रह गई हो?

युवती ने विषादपूर्ण मन्द मुस्कान के साथ कहा—कहीं कुछ नहीं है, मैंने सब देख लिया है। और मेरी तो सब गिनी हुई चीज़ें थीं। छः चीज़ें सोने की थीं और पाँच चाँदी की—कुल ग्यारह चीज़ें थीं। वह ग्यारहों बिक

चुकी हैं। ख़ाली ये झाँझें और बिछुए रह गए। ये होंगे पन्द्रह-बीस रुपए के। बीस रुपए भर दोनों झाँझें हैं और चार रुपए भर दोनों बिछुए होंगे। इस प्रकार कुल चौबीस-पचीस भर चाँदी है। अगर बेची जाय तो कठिनता से पन्द्रह-सोलह की बिकेगी।

युवक—ख़ैर, पन्द्रह-सोलह ही क्या कम हैं? पन्द्रह-सोलह में तो महीना भर टल सकता है।

युवती—बिछुए तो मैं उतारूँगी नहीं, चाहे प्राण चले जायँ। हाँ, झाँझ ले सकते हो, यद्यपि झाँझ भी × × ×

इतना कह कर युवती रुक गई। उसका गला रुँध गया और आँखों में आँसू भर आए।

युवक 'हूँ' कह कर चुप हो रहा और विचार-सागर में मग्न हो गया। युवती भी आँख पोंछ कर उँगली से चटाई को खरोचने लगी।

युवक पुनः थोड़ी देर पश्चात् बोला—परन्तु आवश्यकता तो इस समय सौ रुपयों की है, बीस-पचीस से भला क्या होगा? सौ रुपए हों, तो महीने भर का खाने का गुज़र चल जाय और नौकरी भी लग जाय। यदि पन्द्रह-बीस में काम चलता तो मैं तुम्हारी झाँझ ले भी लेता, परन्तु जब काम नहीं चलेगा तब इन्हें लेकर तुम्हारा जी दुखाना व्यर्थ है! और कोई ऐसी चीज़ है नहीं जो बेच कर सौ रुपए प्राप्त किए जा सकें!

युवती ने पुनः सिर उठाया और बोली—और कौन ऐसी चीज़ है ? गहना तो सब चला ही गया।

"उसका मुझे कुछ अफ़सोस नहीं। तुम बिना गहने के भी उतनी ही सुन्दर दिखाई पड़ती हो, जितना कि पूर्णिमा का चन्द्रमा।"

कुछ क्षणों के लिए युवती के गालों पर लज्जा की हलकी लाली दौड़ गई। उसने किञ्चित् मुस्करा कर कहा—हाँ, मन समझाने के लिए तो × × ×।

युवक बात काट कर बोला—मन समझाने की बात नहीं, सच्ची बात है—मेरे हृदय की बात है। मुझे गहना जाने का ज़रा भी अफ़सोस नहीं है। परन्तु यह समस्या कठिन आ पड़ी है।

कुछ क्षणों के लिए पुनः दोनों उदासीनता के सागर में मग्न हो गए। हठात् युवती ने सिर उठा कर कहा—केवल एक चीज़ ऐसी है जिससे सौ रुपए मिल सकते हैं।

युवक चौंक पड़ा। उसने उत्सुकता-भरे हुए स्वर में पूछा—है ? कौन चीज़ है ? लाओ—जल्दी निकालो।

"परन्तु वह मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है।"

"लाओ दिखाओ तो वह क्या है ?"

युवती उठी और कोठरी में चली गई। थोड़ी देर में वह एक श्वेत कपड़े में लिपटी हुई एक वस्तु लाई। युवक ने पूछा यह क्या है ?

युवती ने कपड़ा खोल कर एक बनारसी साड़ी निकाली और उसे युवक के सम्मुख रख कर बोली—यह है।

युवक ने साड़ी को उलट-पलट कर देखा और बोला—बड़ी सुन्दर साड़ी है। कितने की होगी?

"ढाई सौ में ख़रीदी गई थी।"

"तब तो सौ रुपए में अवश्य ही बिक जायगी।"—युवक ने प्रसन्न होकर कहा।

"परन्तु मैं इसे बेचूँगी नहीं।"

युवक ने म्लान-मुख होकर पूछा—क्यों?

"यह मेरे सोहाग की साड़ी है।"—युवती ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"ओह! इन भावुकता की बातों में क्या धरा है? तुमने व्यर्थ ही इतना परेशान किया! पहले से बता देतीं तो इतनी चिन्ता क्यों होती?"

"भावुकता नहीं। मैं इसे प्राण रहते कभी न निकालती, पर तुम्हें चिन्तित और दुखी देख कर मैंने इसे निकाला। यह समझ लो कि मैंने अपना कलेजा निकाल कर तुम्हें दे दिया है।"

"ओफ़ ओह! एक साधारण साड़ी का इतना मान!"

"यह साड़ी साधारण नहीं है। इसका मूल्य समझने के लिए इसे मेरी आँखों से देखो तो पता चले।"

युवक हँस कर बोला—अच्छा ! अच्छा ! ईश्वर चाहेगा तो मैं तुम्हें इससे बढ़िया साड़ी ला दूँगा ।

"मुझे यही साड़ी चाहिए—न बढ़िया न घटिया ।"

"ख़ैर, इस समय तो मैं इसे बेचता हूँ, फिर देखा जायगा ।"

"बेचने तो मैं दूँगी नहीं ।"—युवती ने दृढ़तापूर्वक कहा ।

"क्यों ? बिना बेचे काम कैसे चलेगा ?"

"ढाई सौ की साड़ी सौ रुपए में गिरवी भी रक्खी जा सकती है ?"

"अच्छा, तुम्हारा यह मतलब है ! तो यदि ऐसी बात है तो न बेचूँगा । मुझे चीज़ें बेचने का शौक़ तो है नहीं । गहना तो इसलिए बेच दिया कि गिरवी रखने में व्याज की चपत मुफ़्त में पड़ती—ईश्वर देगा तो नया बन जायगा ।"

"उस गहने की मुझे परवा नहीं, उनका तो बेचना ही ठीक था । पर यह साड़ी मत बेचना । यह साड़ी मैं नहीं जाने दूँगी ।"

"अच्छी बात है, न बेचूँगा ।"—यह कह कर युवक ने साड़ी को कपड़े में लपेटा और उठ खड़ा हुआ ।

युवती ने युवक के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—पहले मेरे सिर पर हाथ रख कर कहो कि बेचोगे नहीं ।

युवक मुस्करा कर बोला—क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता ?

"मुझे विश्वास है, पर तुम मेरा कहना करो।"

युवक ने युवती के सिर पर हाथ रख कर कहा—"अच्छा, नहीं बेचूँगा, बस !" यह कह कर युवक चल दिया।

घर से बाहर आकर वह द्रुतगति से एक ओर चला। थोड़ी देर में वह एक बड़े मकान के द्वार पर पहुँचा। द्वार पर एक आदमी बैठा तमाखू पी रहा था। उससे युवक ने पूछा—बाबू जी हैं ?

आदमी ने चिलम भूमि पर रख कर खड़े होते हुए कहा—हाँ, हैं ! नीचे बैठक में बैठे हैं।

युवक भीतर चला गया। सामने ही बैठका था। बैठके में एक अर्द्धवयस्क पुरुष आराम-कुर्सी पर लेटे हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। युवक उनके सामने पड़ी हुई कुर्सी पर जाकर बैठ गया। उसकी आहट पाकर उन्होंने पत्र हटाकर युवक की ओर देखा। युवक को देखते ही उन्होंने पत्र अलग रख दिया और आँखों पर से ऐनक उतारते हुए बोले—कहो भाई बनवारीलाल, अच्छे तो हो ?

बनवारीलाल ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर कहा—हाँ, किसी न किसी प्रकार जीवित हूँ।

उन सज्जन ने पूछा—नौकरी लगी ?

"अभी तो नहीं, पर आशा है।"

"कहाँ ?"

"बैङ्क में एक पचास रुपए की जगह है।"

"तब तो अच्छा है।"

"हाँ, जब मिल जाय तब न—हेड क्लर्क साहब कुछ दक्षिणा चाहते हैं।"

"तो दे डालो। आजकल नौकरी मिलना बड़ा कठिन है।"

"यह तो मुझसे अधिक कदाचित् ही कोई जानता हो। एक वर्ष चेष्टा करते हुए हो गया—पास-पल्ले जो कुछ था, सब बैठे-बैठे खा डाला, कुछ नौकरी के फेर में ख़र्च हो गया—और अभी ठिकाना नहीं है।"

वह सज्जन मुँह बना कर बोले—बड़ा कठिन समय है।

बनवारीलाल ने कहा—इस समय आपसे कुछ सहायता चाहता हूँ। मुझे कुछ रुपए चाहिए। इसके लिए मैं यह वस्तु लाया हूँ, इसे देख लीजिए।

यह कह कर बनवारीलाल ने कपड़ा खोल कर साड़ी उनके सम्मुख रख दी। उन सज्जन ने पुनः ऐनक चढ़ाई और साड़ी को ध्यानपूर्वक देखा। देख कर बोले—कितने रुपए चाहिए ?

बनवारीलाल ने कहा—मैं इसे गिरवी रखना चाहता हूँ। आप इस पर अधिक से अधिक कितने दे सकते हैं ?

उन सज्जन ने पुनः साड़ी को देखा और कुछ क्षणों तक सोच कर बोले—अधिक से अधिक सौ रुपए।

बनवारीलाल ने कहा—ढाई सौ की ख़रीदी थी, कहीं कोई दाग़-धब्बा नहीं है—बिलकुल नई है।

"हाँ, यह ठीक है, पर इस समय कपड़े का भाव गिरा हुआ है।"

"कितना गिरा होगा ?"

"ख़ैर, मैं आपको सौ रुपए दे सकता हूँ, इससे अधिक नहीं।"

"सवा सौ दीजिए !"

"सवा सौ ! सवा सौ उस दशा में दे सकता हूँ, यदि आप इसे बेच डालिए।"

"ख़ैर, बेचूँगा तो मैं इसे हज़ार रुपए में भी नहीं।"

"अच्छा ! ऐसी चीज़ है ?"

"जी हाँ ! आप सवा सौ दे दीजिए। मैं इसे अवश्य छुड़ा लूँगा, यह निश्चय जानिए।"

"तो ब्याज डेढ़ रुपया सैकड़ा लगेगा !"

"डेढ़ रुपया तो बहुत है—एक रुपया लीजिए !"

"इससे कम न होगा।"

"बीस आने लगा लीजिए।"

"ऊँहूँ !"

"अच्छा तो डेढ़ ही सही, अपनी गरज़ है। जो आप माँगेंगे, देना पड़ेगा।"

वह सज्जन बोले—यह बात नहीं, यदि दूसरा डेढ़ ले तो मैं बीस ही आने ले लूँगा।

"मुझे दूसरे के पास जाना होता तो मैं आपके पास क्यों आता?"

उन सज्जन ने घर के अन्दर से सवा सौ रुपए लाकर दे दिए और आवश्यक लिखा-पढ़ी कर ली।

चलते समय बनवारीलाल ने कहा—इसे सुरक्षित रखिएगा, मैं अवसर मिलते ही इसे छुड़ा लूँगा।

"यदि आप व्याज अदा करते रहिएगा तो सुरक्षित रहेगी, अन्यथा मैं बेच डालूँगा। डेढ़ सौ तक का भार इस पर हो सकता है, इससे अधिक नहीं। जिस दिन इस पर डेढ़ सौ हो जायँगे, उसी दिन बिक जायगी, इसे याद रखिएगा।"

"ईश्वर चाहेगा तो ऐसा नहीं होने पाएगा।"—यह कह कर बनवारीलाल चल दिए।

२

उपर्युक्त घटना हुए छः मास व्यतीत हो गए। आज-कल बनवारीलाल बैङ्क में नौकर हैं, पचास रुपए मासिक वेतन मिलता है। शाम का समय था। बनवारीलाल को

आज ही छठे मास का वेतन मिला था। अपनी पत्नी को रुपए देते हुए उन्होंने कहा—लाओ, दो रुपए माधोलाल को व्याज के दे आऊँ! पत्नी ने दो रुपए बनवारीलाल को दे दिए और बोली—इन छः महीनों में साठ रुपए तो जमा हो गए, सत्तर रुपए और हो जायँ तो साड़ी छूट आवे।

बनवारीलाल ने कहा—छूट आवेगी, कौन जल्दी पड़ी है, उसके बिना कुछ काम अटका है?

"काम तो नहीं अटका है, पर छुड़ानी तो पड़ेगी ही।"—उनकी पत्नी ने किञ्चित् मुसकरा कर कहा।

बनवारीलाल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और चल दिए।

माधोलाल ने उन्हें देखते ही कहा—आइए, अच्छे आए, मैं आपको बुलवाने ही वाला था।

बनवारीलाल ने उनके सामने व्याज के रुपए रखते हुए कहा—कहिए, मैं तो स्वयम् हाज़िर हो गया।

"बात यह है कि आपकी साड़ी का एक गाहक लगा है। यदि आप कहें तो साड़ी बेच दी जाय—दाम अच्छे मिल रहे हैं।

"क्या दाम मिल रहे हैं?"—बनवारीलाल ने उत्सुक होकर पूछा।

"दो सौ रुपए!"

"दो सौ रुपए ? तब तो बेच देना ही ठीक है।"

"मेरी भी यही राय है। ७५) रुपए आपको अधिक मिल रहे हैं। इनमें पचीस रुपए मिला कर सौ रुपए की एक साड़ी ले लीजिए—सौ रुपए में अच्छी साड़ी आ जायगी।"

"कहते तो आप ठीक हैं।"

"तो फिर क्या राय है—बेच दूँ ?"

"हाँ बेच दीजिए—परन्तु × × ×।"

बनवारीलाल को ध्यान आगया कि उन्होंने अपनी पत्नी के सिर पर हाथ रख कर शपथ की है कि साड़ी नहीं बेचेंगे।

माधोलाल ने पूछा—परन्तु क्या ?

"बात यह है कि मेरी पत्नी उसे बेचना नहीं चाहती।"—बनवारीलाल ने कुछ सकुचाते हुए कहा।

"क्यों ?"

"पता नहीं क्यों !"

"अजी, यह सब स्त्रियों के झगड़े हैं—स्त्रियाँ हानि-लाभ तो समझतीं नहीं, उन्हें तो अपने काम से काम है। यदि आप इसे नहीं छुड़ाएँगे तो घाटे में रहेंगे। अभी आप शायद छुड़ा न सकेंगे। साल दो साल पश्चात् छुड़ाएँगे तो काफ़ी ब्याज हो जायगा, अब छुड़ाइएगा तो सवा

सौ घर से निकाल के देने पड़ेंगे। इस समय तो ७५) मिल रहे हैं और ब्याज से पिण्ड छुटा जा रहा है।"

बनवारीलाल ने सोचा—बात तो ठीक है। परन्तु शपथ ली है। उसका क्या होगा ?

"एक प्रकार से शपथ का अब कोई प्रभाव नहीं रहा। उस समय बेचने की क़सम खाई थी, सो उस समय नहीं बेची। कुछ जनम भर के लिए क़सम थोड़े ही खाई थी।"—इसी प्रकार कुछ देर तक बैठे, बनवारीलाल विचार करते रहे।

माधोलाल ने मुस्करा कर कहा—कहिए, क्या सोच-विचार है, पत्नी के भय के मारे साहस नहीं होता—क्यों ?

बनवारीलाल कुछ शरमा गए। उन्होंने कहा—नहीं, साहस क्यों नहीं पड़ता, यही सोच रहा था कि कहीं उसे दुख न हो।

"दुख की कौन सी बात है ? उसे तो साड़ी ही चाहिए। मैं सौ रुपए की ऐसी साड़ी दे सकता हूँ, जो देखने में उससे अच्छी जँचे।"

"उससे अच्छी न हो, परन्तु यदि वैसी ही हो तो और भी अच्छा !"

"वैसी ही कैसे हो सकती है—रङ्ग वैसा हो सकता है, पर काम वैसा नहीं होगा।"

बनवारीलाल ने पुनः सोचा—ठीक तो है, इसे बेच कर सौ रुपए की हलकी साड़ी ले लें, उसका मन भी रह जायगा और अपना काम निकल जायगा। ढाई सौ की साड़ी व्यर्थ है। उसके साथ के लिए कुछ गहना-ज़ेवर भी तो होना चाहिए, ख़ाली साड़ी पहनने से तो वह माँगे की जँचेगी। सबसे पहले तो कुछ गहना बनवाना चाहिए—साड़ी इतनी आवश्यक नहीं है, जितना कि गहना।

माधोलाल नैराश्यपूर्ण स्वर में बोले—यदि आपकी इच्छा नहीं है, तो मत बेचिए। मेरा उसमें कोई लाभ नहीं है। मैंने तो केवल आपकी शुभ-कामना करते हुए यह इसलिए कहा कि जिसमें आपको व्यर्थ व्याज की चोट न सहनी पड़े।

बनवारीलाल कुछ सिटपिटा कर बोले—आपका विचार उत्तम है और उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। आप उसे बेच डालिए। मैंने तय कर लिया।

"बेच डालूँ?"—माधोलाल ने निश्चय करने के लिए पूछा।

"हाँ, बेच डालिए।"

"अच्छी बात है। आज मैं उसे बेच दूँगा। कल आप शाम को आकर रुपए ले जाइएगा।"

"बहुत अच्छा!"—कह कर बनवारीलाल उनसे विदा हुए।

३

दूसरे दिन शाम को बनवारीलाल माधोलाल के यहाँ पहुँचे। उन्होंने उन्हें देखते ही ७५) रु० उनके हवाले कर दिए और बोले—सवा सौ मैंने अपने काट लिए—ब्याज इस महीने का आप दे ही गए थे। इस प्रकार ७५) बचे।

बनवारीलाल रुपए लेकर घर की ओर चले। रास्ते में वह सोचते जा रहे थे—७५) ये हैं, ६०) घर में धरे हैं। इस प्रकार कुल १३५) रु० हो गए। इसका कोई गहना बनवा देंगे! साड़ी ससुरी में क्या धरा था; परन्तु घर में इन रुपयों की बाबत क्या कहेंगे। उँह! इसकी क्या चिन्ता है—इसके लिए बीस बहाने हो सकते हैं। कह देंगे, एक का कुछ काम कर दिया था, उसने दिए।

यही सब सोचते-विचारते बनवारीलाल घर पहुँचे। कपड़े-वपड़े उतार कर ज़रा दम लेने के पश्चात् उन्होंने जेब से रुपए निकाल कर पत्नी को दिए। उसने पूछा—यह कहाँ मिले?

बनवारीलाल ने कहा—आज बैङ्क में एक सेठ रुपए जमा करने आया था। उसका एक हज़ार रुपए का नोट गिर गया। उसने बहुत ढूँढ़ा, पर न मिला। अन्त में जब वह निराश हो गया था तो भाग्य से मुझे मिल गया। मैंने उसे दे दिया। उसने प्रसन्न होकर इनाम के तौर पर ये रुपए दिए।

यह सुन कर उनकी पत्नी बहुत प्रसन्न हुई। उसने कहा—तो अब साड़ी छूट आवेगी। कल मैं सवा सौ दे दूँगी, साड़ी छुड़ा लाना।

बनवारीलाल अप्रसन्न होकर बोले—न जाने उस साड़ी में कौन लाल टँके हैं, जो उसकी रट लगा रक्खी है। रुपए आए हैं, धरे रहने दो—न जाने किस समय कैसा काम आ पड़े। साड़ी कौन काम आवेगी? यदि रुपयों का कुछ उपयोग ही करना है, तो कोई गहना बनवा लो।

पत्नी गम्भीर होकर बोली—उस साड़ी की क़दर तुम नहीं जान सकते, उसकी क़दर मैं जानती हूँ। वह, वह साड़ी है, जिसे मेरे पिता मेरे लिए बड़े चाव से लाए थे। वह, वह साड़ी है, जो मैंने केवल एक बार उस समय पहनी थी जब मेरा विवाह हुआ था। इसलिए मेरे लिए उस साड़ी से बढ़ कर दूसरा कपड़ा नहीं हो सकता—वह चाहे जितना मूल्यवान् हो। ख़ैर, यदि इस समय नहीं तो दो-तीन महीने बाद उसे छुड़ाना—पर छुड़ाना अवश्य पड़ेगा। वह साड़ी बड़ी भाग्यवान् है। उसी की बदौलत आज हम-तुम निश्चिन्तापूर्वक बैठे रोटी खा रहे हैं—वह न होती तो यह नौकरी मिलती?

बनवारीलाल मुँह बना कर बोले—बस, रहने दो। तुम तो उस ससुरी को बिलकुल देवी-देवता बनाए दे रही हो। छिः छिः, साड़ी न होती तो नौकरी न लगती; क्या कही

है? साड़ी न होती गहना होता, तब भी नौकरी लग जाती। आवश्यकता तो रुपयों की थी—जिस वस्तु से रुपए प्राप्त हो जाते वही यथेष्ट थी। यह कहना कि साड़ी की बदौलत नौकरी लगी, एक महा पोच और लचर बात है।

"उस समय तो साड़ी ही ने सहायता की थी। साड़ी न होती तो क्या करते?"

"कुछ न कुछ प्रबन्ध तो होता ही, साड़ी न होती तब भी काम निकालना ही पड़ता। साड़ी की बदौलत इतना हुआ कि अधिक परेशानी नहीं उठानी पड़ी—बस!"

"उस समय तो कहीं ठिकाना नहीं था।"

"वह सब हो जाता। संसार में किसी का काम नहीं रुका करता?"

"उस समय तुम्हारे मुख पर जितनी निराशा और घबराहट थी, उसे देख कर तो यही प्रतीत होता था कि इस समय कहीं ठिकाना नहीं है।"

"ऐसा ठिकाना नहीं था, जहाँ से सरलतापूर्वक मिल जाता, यही घबराहट और चिन्ता थी। चेष्टा और प्रयत्न करते तो मिलता—मिलता कैसे न?"

"ख़ैर, इस समय अब तुम चाहे जो कह लो, पर उस समय अवस्था बहुत बुरी थी—उस समय साड़ी ही ने सहायता की थी।"

बनवारीलाल हँस कर बोले—तुम्हारा बस चले तो तुम उस साड़ी के लिए एक मन्दिर बनवा दो।

"मेरा हृदय ही उसका मन्दिर है। मेरा हृदय उसे प्यार करता है। उसे ईंट-पत्थर के मन्दिर की क्या आवश्यकता है। फिर वह कुछ ईश्वर थोड़े ही है, जो मन्दिर बने। मन्दिर ईश्वर और देवता के लिए बनते हैं—साड़ियों के लिए नहीं।"

बनवारीलाल ने कहा—ख़ैर, यह सन्तोष की बात है कि तुम उसे ईश्वर नहीं मानतीं।

"नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है। परन्तु मैं उसे इतना अवश्य मानती हूँ कि वह हमारे ही पास रहे। जब तक वह हमारी है, तब तक हमारा कुछ अनिष्ट नहीं हो सकता। परन्तु जब वह हमारे पास से निकल जायगी, तब के लिए मैं नहीं कह सकती कि क्या होगा।"

"क्या होगा?"—बनवारीलाल ने व्यङ्ग से पूछा।

"यह मैं नहीं बता सकती कि क्या होगा, पर उसका चला जाना हमारे लिए अशुभ अवश्य होगा—यह मैं ज़ोर देकर कह सकती हूँ।"

बनवारीलाल का कलेजा धक् से हुआ। आज ही तो वह साड़ी चली गई। आज तक वह हमारी थी; पर इस समय वह हमारी नहीं रही। यह विचार उनके मन में

अपने आप उठा। कुछ देर तक बनवारीलाल मौन तथा गम्भीर बैठे रहे।

पत्नी ने पूछा—क्या सोच रहे हो?

"तुम्हारी रहस्यपूर्ण बातों पर विचार कर रहा हूँ। मुझे तो ऐसी बातों पर विश्वास नहीं। किसी एक विशेष चीज़ के पास न होने से अनिष्ट हो सकता है, इसे मैं नहीं मानता। और मुझी पर क्या—कोई समझदार आदमी नहीं मानेगा।"

"न माने, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं कि कोई माने या न माने। मैं तो केवल अपने मन की बात तुमसे कह रही हूँ। तुम नहीं मानते तो न मानो—मैं यह कब कहती हूँ कि मानो।"

बनवारीलाल चुप हो रहे—कुछ उत्तर न दिया।

४

"आज लाला माधोलाल के यहाँ से बुलावा आया है।"—बनवारीलाल की पत्नी ने उनसे कहा।

"तो फिर?"

"जाना पड़ेगा।"

"आज क्या है उनके यहाँ?"

"उनकी लड़की के लड़का हुआ था। उसी की बरही है।"

"चली जाना।"

बनवारीलाल ऑफ़िस चले गए। वहाँ से यह समझ-कर कि अभी शायद उनकी पत्नी माधोलाल के यहाँ से न लौटी हो, वह बैङ्क के एक व्यक्ति के साथ, जो उनका सहकारी था और जिससे उनकी घनिष्ट मित्रता हो गई थी, चले गए। वहाँ उन्हें रात के आठ बज गए। आठ बजे जब वह घर लौटे तो देखा कि पत्नी चारपाई पर ओढ़े-लपेटे पड़ी है।

बनवारीलाल ने रज़ाई उठा कर पूछा—क्यों, पड़ी कैसी हो?

"जी अच्छा नहीं है।"—पत्नी ने कराहते हुए कहा।

बनवारीलाल ने पत्नी के माथे पर हाथ धरा तो उन्हें पता लगा कि पत्नी को ज्वर है।

बनवारीलाल ने कहा—बुख़ार है। नाहक़ वहाँ गईं।

पत्नी ने पति का वाक्य सुन कर कहा—हाँ, नाहक़ गई, न जाती तो अच्छा था।

"और क्या—वहाँ गईं, थकावट आगई, इसी से बुख़ार चढ़ आया। ख़ैर, अब तुम चुपचाप पड़ी रहो।"

"तुम्हारे लिए खाने-पीने का × × ×।"

बनवारीलाल बोल उठे—इसकी चिन्ता मत करो, मैं घनश्यामदास के यहाँ खा-पी आया हूँ। बैङ्क से उन्हीं के यहाँ चला गया था—मैंने सोचा, शायद तुम अभी न

लौटी हो। घनश्यामदास न माने—खाना खिला कर ही छोड़ा। तुम निश्चिन्त पड़ी रहो।

बनवारीलाल की पत्नी को चारपाई पर पड़े आज दसवाँ दिन है। बनवारीलाल ने बैङ्क से छुट्टी ले ली है। वे ही उसकी सेवा-शुश्रूषा करते रहते हैं। वैद्य की चिकित्सा होती है।

दसवें दिन उनकी पत्नी ने उनसे कहा—अब मेरे बचने की आशा मत करो। मैं अब बचूँगी नहीं। मेरा अन्त समय आ गया है।

बनवारीलाल व्याकुल होकर बोले—ऐसी बातें मत करो। तुम अच्छी हो जाओगी।

पत्नी ने सिर हिलाया और बोली—अब नहीं अच्छी होऊँगी—अब तो चल-चलाव है। मैं क्यों मर रही हूँ, तुम जानते हो!

"कौन कहता है तुम × × ×?" बनवारीलाल का कण्ठ भर आया और नेत्रों में आँसू छलछला आए। वह आगे कुछ न कह सके।

पत्नी ने कहा—मैं इसलिए मर रही हूँ कि मेरी साड़ी चली गई।

बनवारीलाल का कलेजा धड़कने लगा और चेहरा

फ़क़ हो गया। उन्होंने तुरन्त अपने को सँभाल कर कहा—चली कहाँ गई ?

"मुझे सब मालूम हो गया है, अब कपट करने की आवश्यकता नहीं। जिस दिन मैं माधोलाल के यहाँ गई थी, उस दिन मुझे यह बात मालूम हुई। मैंने माधोलाल की लड़की को वह साड़ी पहने देखा। मैंने समझा, इनके यहाँ गिरों रक्खी ही है, पहन ली होगी। मैंने हँसी में उससे पूछा—यह साड़ी तो बड़ी अच्छी है, कितने की मँगाई है ?

इस पर लड़की ने कहा—'यह हमारे यहाँ गिरों रक्खी थी। मुझे यह पसन्द आ गई। मैंने बाबू जी से कह कर इसे ख़रीद लिया।' मैंने उससे पूछा—'कितने दिन हुए ख़रीदे ?' उसने कहा—'बीस दिन हुए।' फिर मैंने दाम पूछे तो उसने दो सौ बताए। मैंने समझ लिया। बीस दिन हुए तुमने ७५) रु० लाकर मुझे दिए थे। सवा सौ पर साड़ी गिरवी रक्खी थी—सवा सौ और पचहत्तर दो सौ होते हैं। बस उसी समय से मेरा चित्त बिगड़ना आरम्भ हुआ। मैं नहीं जानती कि मैं शाम तक उनके यहाँ कैसे रही और घर कैसे आई। बुख़ार मुझे वहीं चढ़ आया था। यदि वह अपने यहाँ की दासी के साथ सवारी पर न भेजते, तो मैं अपने पैरों घर नहीं आ सकती थी।

बनवारीलाल को तो जैसे काठ मार गया। वह चुपचाप सिर झुकाए मूर्ति की भाँति बैठे रहे।

पत्नी ने पुनः कहना आरम्भ किया—तुमने मेरे सिर पर हाथ रख कर उसे न बेचने की क़सम खाई थी; परन्तु फिर भी तुमने उसे बेच दिया।

"जिस समय मैंने क़सम खाई थी, उस समय तो नहीं बेचा था।"—बनवारीलाल ने भर्राई हुई आवाज़ से यह बात कही, परन्तु वह पत्नी से आँखें नहीं मिला सके।

"जब तुमने क़सम खाई थी तो उसके मैंने जो अर्थ समझे थे, वह यह थे कि कभी नहीं बेचोगे।"

"परन्तु मैंने जो अर्थ लगाए वह यह थे कि उस समय नहीं बेचूँगा—उस समय मैंने नहीं बेची।"

"जो चीज़ बेची जा सकती है वह हर समय बेची जा सकती है, और जो नहीं बेची जा सकती वह किसी समय भी नहीं बेची जा सकती।"

"हाँ, यह ठीक है; परन्तु × × ×।"

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं, तुमने बहुत बुरा किया। मैं उस साड़ी को इतना प्यार करती थी—यह जानते हुए भी तुमने उसे बेच डाला। यदि तुम मुझे प्यार करते होते तो उसे कभी न बेचते—केवल इसीलिए न बेचते कि मैं उसे प्यार करती हूँ। इससे प्रकट है कि तुम मुझे प्यार नहीं करते। दूसरी बात यह है कि तुमने मुझे भुलावे में डाल कर उसे बेचा—मुझसे छल किया। यदि मुझसे कह कर और ज़िद करके बेच देते, तब भी मुझे इतना दुख न होता।"

बनवारीलाल अत्यन्त अधीर होकर बोले—यह तुम क्या कह रही हो। मैं तुम्हें जितना प्यार करता हूँ उतना ईश्वर जानता है; पर मैं उस साड़ी को व्यर्थ समझता था, इसलिए मैंने उसे बेच डाला।

"मेरे इतना कहने-सुनने पर भी तुम उसे व्यर्थ समझते रहे—मेरी प्यारी चीज़ को व्यर्थ समझे—यह क्या कुछ कम दुख की बात है।"

"यदि ऐसी बात है तो मुझे अपने कार्य पर हार्दिक पश्चात्ताप है और मैं तुमसे उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

यह कह कर बनवारीलाल ने अश्रु बहाते हुए पत्नी के वक्षःस्थल पर अपना सिर रख दिया।

पत्नी ने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—मैंने कहा था कि साड़ी चली जाने पर कुछ अनिष्ट होगा। वही हुआ। पर इतना सन्तोष है कि मेरी ही जान पर बीती, तुम पर कुछ आँच न आई। यह बड़ी ही ख़ुशी की बात है। मुझे यही भय था कि कहीं ईश्वर न करे तुम्हें कुछ × × × ख़ैर, मुझे अपने मरने का कुछ भी दुख नहीं।

"यह तुम क्या कहती हो, मेरा अनिष्ट नहीं हुआ? यह तो सोलहो आने मेरा ही अनिष्ट हो रहा है। मेरा सर्वनाश हुआ जा रहा है, इससे अधिक अनिष्ट और क्या होगा।"—बनवारीलाल ने पत्नी के वक्षःस्थल पर से सिर

उठा कर यह वाक्य कहा और रोते हुए पुनः वहीं सिर रख दिया।

"ख़ैर, जो होना था हो गया। अब तुम इतने व्याकुल क्यों होते हो?"—पत्नी ने अत्यन्त प्रेम से कहा।

"तुमने मुझे क्षमा कर दिया या नहीं?"

"तुम्हें तो मैं आरम्भ से ही क्षमा किए हुए थी, मैंने तुम्हें अक्षम्य कभी समझा ही नहीं।"

हठात् बनवारीलाल सिर उठा कर आँसू पोंछते हुए बोले—तो मैं भी तुमसे वादा करता हूँ कि इसी समय जैसे बनता है, जाकर साड़ी लाता हूँ।

यह कह कर वह उठे। उनकी पत्नी बोली—अब कहीं मत जाओ, मेरा चित्त घबरा रहा है—मेरे ही पास बैठे रहो।

"मैं अभी आता, और साड़ी लेकर आता हूँ।"

यह कह कर उन्होंने कुछ दूर पर बैठी हुई एक स्त्री से, जिसे उन्होंने पत्नी की सेवा के लिए रख लिया था, कहा—तुम इनके पास आकर बैठो, मैं अभी आता हूँ।

बनवारीलाल माधोलाल के पास पहुँचे और बोले—बाबू जी, वह साड़ी लौटा दीजिए।

"कौन साड़ी?"—माधोलाल ने आश्चर्य से पूछा।

"वही, जो आपके यहाँ गिरी थी और जिसे आपने बहाना करके अपनी लड़की के लिए ख़रीद लिया था।"

बनवारीलाल ने आवेश से उत्तर दिया—ख़रीद लिया तो दाम भी तो दिए थे।

"हाँ दिए थे; पर मैं साड़ी बेचना नहीं चाहता था, आपने मुझे प्रलोभन में डाल कर उसे ले लिया। उसकी बदौलत आज मेरी पत्नी मृत्यु-शय्या पर पड़ी है। परन्तु इस अन्त समय में मैं उसे उसकी प्यारी वस्तु से वञ्चित नहीं रखना चाहता। लीजिए, यह आपके ७५) रु० रक्खे हैं, साड़ी आप ला दीजिए।"

"बिकी हुई चीज़ कैसे लौटाई जा सकती है?"

"लौटाई जा सकती है। और आपको लौटानी पड़ेगी।"—बनवारीलाल ने कर्कश स्वर में कहा।

"क्यों?"

"इसलिए कि आपने मुझे धोखा देकर इसे ख़रीदा।"

"जब आपको दाम दिए तब उसमें धोखा काहे का?"

बनवारीलाल ने कहा—अच्छा, आप यह बताइए, साड़ी दीजिएगा या नहीं? स्त्री मर ही रही है—मेरी आँखों में संसार शून्य है। यदि आप साड़ी न देंगे तो मैं भी यहीं प्राण त्याग दूँगा।

माधोलाल बनवारीलाल की रक्तवर्ण आँखें और

विक्षिप्तों की सी दशा देख कर घबरा गए। उन्होंने सोचा—ऐसा न हो यह व्यक्ति जान पर खेल कर हमारा कुछ अनिष्ट कर बैठे—इस समय अपने होश में नहीं है। अतएव वह बोले—यदि यह बात है तो साड़ी मैं लाए देता हूँ। प्राण क्यों देते हो? इतनी छोटी सी बात के लिए मैं तुम्हारे प्राण नहीं लेना चाहता।

"लो, साड़ी ले आया।"

यह कहते हुए बनवारीलाल घर में प्रविष्ट हुए। उनकी पत्नी के पास बैठी हुई स्त्री ने रोकर कहा—किससे कहते हो? वह तो चली गई।

बनवारीलाल के मुख से निकला—'हैं!' वह शीघ्रता-पूर्वक शय्या के पास पहुँचे और कपड़ा हटाकर देखा—पत्नी के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। उन्होंने कुछ क्षण तक स्थिर दृष्टि से पत्नी का मुख देखा। इसके पश्चात् उन्होंने साड़ी को खोला और पत्नी के ऊपर ओढ़ा दिया और उसके वक्षःस्थल पर मुँह रख कर बालकों की भाँति फूट-फूट कर रोने लगे।

लोककथा

लालसा

सूर्यास्त हो चुका है। ग्रीष्म-ऋतु की सन्ध्याकालीन शीतल समीर मन्द-मन्द बह रही है। विक्टोरिया पार्क में घास के हरे लॉन पर पाँच व्यक्ति बैठे परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। एक व्यक्ति कह रहा है—कुछ भी हो, परन्तु एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करना बुरा ही है।

एक दूसरा व्यक्ति बोला—परन्तु प्रत्येक दशा में बुरा नहीं हो सकता।

तीसरे व्यक्ति ने कहा—जो बात बुरी है, वह प्रत्येक दशा में बुरी ही रहेगी—भली नहीं हो सकती।

चौथा बोला—अरे भाई, परिस्थिति सब कुछ करा लेती है। मनुष्य स्वयम् कुछ नहीं करता, परिस्थिति जैसा चाहती है, वैसा नाच नचाती है।

पहला व्यक्ति बोला—परिस्थिति-परिस्थिति सब कहने-सुनने की बात है। मनुष्य में आत्मबल होना चाहिए। जिसमें आत्मबल होता है, उसके सामने परिस्थिति की एक नहीं चलती।

पाँचवाँ व्यक्ति, जो अभी तक मौन बैठा था, बड़ी

गम्भीरता से सिर हिला कर बोला—आत्मबल होना कोई खेल नहीं है।

"यह कौन कहता है कि खेल है?"—पहले व्यक्ति ने किञ्चित् मुस्करा कर कहा।

"यदि खेल हो तो सभी आत्मबली हो जायँ।"

"अच्छा सच बताओ, यदि तुम्हें दूसरा विवाह करना पड़े तो करो?"—चौथे व्यक्ति ने पूछा।

"कौन, मैं? अजी राम का नाम लो। मैं और दूसरा विवाह करूँ। ईश्वर न करे, यदि मेरी पत्नी का देहान्त हो जाय तब तो मैं कदाचित् कर भी लूँ। परन्तु पत्नी के रहते तो विवाह होना एक अनहोनी बात है।"

"तब तो तुम आत्मबली हो।"—तीसरे ने मुस्करा कर कहा।

"हाँ, इस सम्बन्ध में तो मुझे विश्वास है कि मैं यथेष्ट आत्मबल रखता हूँ।"

"भई शारदाचरण, यह तो तुम गप हाँकते हो, मैं इसे नहीं मानता। यदि अभी कोई सुन्दरी युवती मिले तो तुम विवाह करने के लिए तुरन्त उद्यत हो जाओ।"

"प्रत्येक आदमी अपने हृदय से दूसरों को जाँच करता है। जैसे तुम हो वैसा संसार को समझते हो।"—शारदा-चरण ने किञ्चित् आवेश के साथ कहा।

"निस्सन्देह, मैं तो तुरन्त तैयार हो जाऊँ।"

"और अपनी पत्नी को क्या उत्तर दो ?"

"अजी पत्नी के सामने उत्तरदाता आप जैसे पत्नी-दास हुआ करते हैं। हम लोग पत्नी को इतना सिर नहीं चढ़ाते कि वह हमारे मामले में कुछ हस्तक्षेप कर सके।"

"जब आप पत्नी की इतनी हैसियत समझते हैं, तब यदि आप दूसरा विवाह करने को तैयार हो जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं है।"

"अजी मैं क्या, बड़े-बड़े तैयार हो जाते हैं। देखिए रघुवीरप्रसाद ही, जो विवाह करने गए हैं—क्या उनके पत्नी नहीं है ?"

"तो कौन बड़ा उत्तम कार्य करने गए हैं ?"

"उनके लिए तो उत्तम ही है।"

"ज़रा उनकी वर्तमान पत्नी के हृदय से पूछिए !"

"यह सब भावुकता है।"

"जी हाँ, यह भावुकता हो गई। यदि यह भावुकता है तो संसार में जितनी अच्छी बातें हैं सब भावुकता हैं। ग़रीबों और दुखियों पर दया करना भी भावुकता है, चोरी न करना भी भावुकता, सत्य बोलना भी भावुकता है।"

"बके जाओ।"—तीसरे व्यक्ति ने शरारत के साथ मुस्करा कर कहा।

इस पर शारदाचरण के अतिरिक्त और सब हँस पड़े।

शारदाचरण उसी प्रकार गम्भीर भाव से कहते गए—आपको मालूम है कि ईसाइयों में एक पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह करना जुर्म समझा जाता है।

"तो यार मालूम होता है तुम पूर्व-जन्म के ईसाई हो।"—दूसरा व्यक्ति हँसता हुआ बोला।

"तो क्या हर्ज है, ईसाई होना कुछ पाप नहीं है। बहुत सी बातों में ईसाई हमारी-आपकी अपेक्षा कहीं अच्छे हैं।"

"विवाह के सम्बन्ध में तो मैं मुसलमानों का मत सर्वोत्तम समझता हूँ।"—तीसरा व्यक्ति गम्भीर होकर बोला—"मुसलमानों में एक पुरुष को चार विवाह तक करने की खुली आज्ञा है। ऐसा क्यों है, जानते हो! पुरुष जितने अधिक विवाह करेगा उतने ही अधिक बाल-बच्चे होंगे और जितने अधिक बाल-बच्चे होंगे, उतनी ही सृष्टि में वृद्धि होगी।"

"क्या दलील पेश की है—वाह भई वाह!"

"आप इसका खण्डन कीजिए। एक पत्नी से एक वर्ष में एक ही सन्तान हो सकती है, परन्तु चार पत्नियों से चार सन्तानें हो सकती हैं।"

"और इस प्रकार दस-पन्द्रह वर्षों में एक फ़ौज तैयार हो सकती है, क्यों न?"

"मुहम्मद साहब बुद्धिमान् आदमी थे। उन्होंने जब

देखा कि इसलाम-धर्म के अनुयायी बहुत कम हैं तो चार विवाह की आज्ञा दे दी। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में मुसलमानों की संख्या में यथेष्ट वृद्धि हो गई।"

"बात तो पते की है।"—चौथे व्यक्ति ने सिर हिलाते हुए कहा।

इसी समय एक अन्य सज्जन आ गए। उन्हें देखते ही सब चिल्ला उठे—आइए-आइए, आप इस समय ख़ूब आए।

वह महाशय बैठते हुए बोले—क्या बातचीत हो रही है?

शारदाचरण बोले—भई राधाकान्त, यहाँ एक बहस छिड़ी हुई है।

"कैसी बहस?"—राधाकान्त ने पूछा।

"बहस यह है कि एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह करना उचित है या अनुचित?"

राधाकान्त कुछ क्षणों तक सोच कर बोले—एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करना तो अनुचित ही है।

शारदाचरण का मुख खिल उठा। उन्होंने अन्य मित्रों की ओर देख कर कहा—अब कहिए?

"यह भी आपके भाई-बन्धु हैं, इनकी गवाही मान्य नहीं हो सकती।"—तीसरा व्यक्ति बोला।

राधाकान्त ने कहा—परन्तु साथ ही यह बात भी है कि कभी-कभी दूसरा विवाह करना उचित भी होता है। जैसी परिस्थिति हो उसके अनुसार होता है।

चौथा व्यक्ति बोला—देखा, वही बात आई न। मैं पहले ही कह चुका कि परिस्थिति सब कुछ करा लेती है।

शारदाचरण ने कहा—अच्छा भई, आप जीते मैं हारा बस—अब कुछ और बातचीत करो।

२

बाबू शारदाचरण जाति के कायस्थ हैं। आप यथेष्ट धनवान् हैं। आपके परिवार में केवल तीन प्राणी हैं—एक तो स्वयम्, दूसरी पत्नी तथा तीसरी माता। शारदाचरण निस्सन्तान हैं। यद्यपि उनका विवाह हुए दस वर्ष के लगभग हो गए, पर अभी तक उनके कोई सन्तान नहीं हुई। इसका कारण यह है कि शारदाचरण की पत्नी वन्ध्या है। शारदाचरण ने स्वयम् पत्नी की डॉक्टरी परीक्षा कराई थी और डॉक्टरों ने उसे वन्ध्या घोषित किया था। जिस दिन से शारदाचरण की माता को पुत्र-वधू के वन्ध्या होने की बात मालूम हुई, उसी दिन से उन्होंने पुत्र को दूसरा विवाह करने के लिए प्रेरित करना आरम्भ किया; परन्तु शारदाचरण सदैव इन्कार करते रहे।

उपर्युक्त घटना के पश्चात् एक दिन शारदाचरण की माता ने अपनी पुत्र-वधू से कहा—बेटी, तेरे तो कोई सन्तान होगी नहीं। अभी तक मैं यह सोच कर सबर किए बैठी रही कि डॉक्टर लोग कुछ ईश्वर तो हैं नहीं, ईश्वर की लीला ईश्वर को छोड़ कर और कोई नहीं जानता। यह हो सकता है कि उन्होंने भूल की हो; परन्तु अब मुझे विश्वास हो गया कि उन्होंने भूल नहीं की। इस कारण अब मेरा खाया-पिया नहीं पचता। तू जानती है कि सन्तान ही बुढ़ापे का सहारा होती है। जो सन्तान न हुई तो कुछ नहीं। हमारे पास भगवान् के दिए चार पैसे हैं, जो सन्तान न हुई तो वे किस काम आवेंगे।

पुत्र-वधू ने उत्तर दिया—तो मैं क्या करूँ माता जी, यह मेरे बस की बात तो है नहीं।

"यह मैं जानती हूँ बेटी! मेरा मतलब यह है कि जो तू चाहे तो शारदा दूसरा विवाह करने को राज़ी हो जावे।"

"तो मैंने उन्हें मना कब किया?"

"तू ने मना न किया होगा; पर इतने ही से काम न चलेगा। जब तक तू भी शारदा के पीछे न पड़ेगी, तब तक वह विवाह न करेगा।"

"मैं पीछे पड़ूँ!"—पुत्र-वधू ने आश्चर्य से कहा।

"हाँ, तू पीछे पड़, तू उन्हें विवाह करने पर राज़ी

कर। मेरा तो कहना वह सुनता नहीं, सायत तेरा ही कहना मान ले।"

"जब तुम्हारा ही कहना नहीं मानते, तो मेरा कहना भला क्यों मानने लगे?"

"नहीं बेटी, मेरा कहना चाहे न माने, तेरा कहना ज़रूर मानेगा। तेरे ही कारण तो वह राज़ी नहीं होता। वह सोचता है कि दूसरा विवाह करने से तुझे दुख होगा, इससे वह राज़ी नहीं होता। परन्तु जब तू कहेगी तो वह तेरी बात सुनेगा।"

"मुझे तो आशा नहीं है माता जी!"

"एक बेर कह कर तो देख।"

"अच्छी बात है, तुम कहती हो तो मैं उनसे कहूँगी।"

अपने वचन के अनुसार शारदाचरण की पत्नी ने रात में एकान्त होने पर पति से कहा—आज मैं तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ।

शारदाचरण ने कहा—कहो!

"मानोगे?"

"मानने योग्य होगी तो अवश्य मानूँगा।"

"मानने योग्य है।"

"तो मान लूँगा।"

"वचन दो।"

"पहले बात तो बताओ।"

"पहले वचन दे दो।"

"जब कह दिया कि मानने योग्य होगी तो मान लूँगा—फिर रह क्या गया?"

"तुम अपना दूसरा विवाह कर लो।"

शारदाचरण पर वज्रपात-सा हुआ। वह कुछ क्षणों तक हतबुद्धि से बैठे रहे। तत्पश्चात् बोले—तुम ऐसा कहती हो!

"हाँ, मैं ऐसा कहती हूँ और खुशी से कहती हूँ।"

"परन्तु मैं इसे मानने के लिए तैयार नहीं।"

"वचन दे चुके हो।"

"हाँ, वचन दे चुका हूँ, परन्तु साथ ही यह भी कहा है कि मानने योग्य होगी तो मानूँगा।"

"तो क्या यह बात मानने योग्य नहीं है?"

"कदापि नहीं। एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करूँ तो संसार मुझे क्या कहेगा।"

"परन्तु जब विवाह करने का कारण है, तब संसार क्या कह सकता है। सन्तान के लिए मनुष्य सब कुछ करता है। तुम्हें भी सब उपाय करना चाहिए।"

"मुझे सन्तान नहीं चाहिए।"

"क्या हृदय से कहते हो?"

शारदाचरण का मुख मलिन हो गया। पत्नी ने कहा—चुप क्यों हो गए? मैं जानती हूँ कि तुम्हारे मन

में सन्तान की इच्छा है, परन्तु मेरे कारण तुम दूसरा विवाह नहीं करते। परन्तु मैं आज भगवान् को साक्षी करके कहती हूँ कि मुझे इससे ज़रा भी दुख न होगा।

शारदाचरण विकल होकर बोले—तुम यह क्या कह रही हो? तुम्हारे होते हुए दूसरा विवाह करूँ, तुम्हारी छाती पर तुम्हारी सौत लाकर बिठाऊँ, यह मुझसे कभी न होगा। हाँ, कोई अन्य उपाय हो तो मैं करने के लिए प्रस्तुत हूँ।

"परन्तु सौत का भय तो मुझे होना चाहिए। मुझे कोई भय नहीं तो तुम क्यों सौत की बात सोचते हो?"

"इसलिए कि मैं तुमसे हार्दिक स्नेह रखता हूँ।"

"तब तो मुझे और भी ख़ुशी है।"

"यह कैसे?"

"ऐसे कि जब तुम्हें मेरे साथ पूरा प्रेम है, तो सौत के आने पर भी मेरी कोई हानि न होगी।"

"यह तुम्हारा भ्रम है।"

"भ्रम क्यों है? क्या तुम समझते हो कि सौत के आने से मेरी कोई न कोई हानि अवश्य होगी? यदि तुम यह सोचते हो तो यह मेरा भ्रम नहीं, तुम्हारा भ्रम है। मेरी हानि केवल एक प्रकार से हो सकती है और वह इस तरह कि सौत के आने से मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम कम हो जाय। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब कि

तुम्हारे हृदय में प्रेम की मात्रा उतनी हो जितनी कि तुम मुख से कहते हो।"

शारदाचरण पत्नी के इस तर्क के सामने निरुत्तर होकर बोले—यह सब ठीक है, परन्तु मैं विवाह तो कदापि न करूँगा।

"तो इसके अर्थ यह हैं कि तुम्हें अपने और अपने प्रेम पर विश्वास नहीं है।"

शारदाचरण विषादयुक्त मन्द मुस्कान के साथ बोले—यह तो मैं कभी नहीं मान सकता।

"यह नहीं मानते तो वह मानो, दो में से एक बात तो मानो।"

"मेरे लिए दोनों बातें निरर्थक हैं।"

"तो इसके अर्थ यह हुए कि उधर माता जी तो दुखी रहती हैं, इधर इस प्रकार मुझे भी सुख न रहेगा।"

"क्यों?"

"जब माता जी दुखी रहेंगी, उधर घर में सन्तान का अभाव रहेगा और जब मुझे यह विश्वास है कि सन्तान न होने से तुम भी पूर्णरूप से सुखी नहीं हो; तो ऐसी दशा में मैं अकेली सुखी कैसे रह सकती हूँ।"

"परन्तु मैं तो सन्तान के लिए दुखी नहीं हूँ।"

"यह बात नहीं है। तुम अपने दुख को मानते नहीं,

उसे प्रकट नहीं करते, अन्यथा ऐसा कौन है जो सन्तान के लिए दुखी न हो।"

"यह सब ढकोसला है। परन्तु मुझे आश्चर्य है कि तुम मुझसे विवाह करने के लिए अनुरोध कर रही हो। स्त्रियाँ तो सौत का नाम तक नहीं सुनना चाहतीं—कहावत भी है कि 'सौत बुरी चून की'।"

"यह ठीक है, पर जब घर में सुख-शान्ति नहीं है तब क्या किया जाय?"

"सुख-शान्ति क्यों नहीं है? सच पूछो तो आजकल सन्तान होने से दुख ही अधिक मिलता है।"

"यह बात मैं नहीं मानती।"

"मैं तो चारों ओर यही देख रहा हूँ। सन्तान वालों के पीछे एक न एक व्याधि लगी ही रहती है। आज किसी को बुखार है, कल किसी को खाँसी है—यही लगा रहता है।"

"जहाँ चार आदमी होते हैं, वहीं यह लगा रहता है। जहाँ आदमी ही न होंगे वहाँ क्या होगा।"

"इसीलिए तो जितने कम आदमी हों उतना ही अच्छा है।"

"बिलकुल अकेला हो तो और भी अच्छा, क्यों न?" पत्नी ने व्यङ्ग से मुस्करा कर कहा।

"नहीं, अकेला होना भी ठीक नहीं—कभी बीमार-बीमार हो तो पानी कौन दे ?"

"तो इसी कारण आदमी की आवश्यकता है और आदमी का इतना ही उपयोग है, अन्यथा अकेला रहे तो बड़ा अच्छा।"

"उँह ! तुम तो न जाने कहाँ का झगड़ा ले बैठीं।"

"तो तुम विवाह नहीं करोगे ?"

"हाँ, विचार तो ऐसा ही है।"

"परन्तु मैं आज कहती हूँ कि तुम्हें विवाह करना पड़ेगा।"

"कोई ज़बरदस्ती है।"

"हाँ, ज़बरदस्ती है।"

"अच्छी बात है—देखा जायगा।"

३

उपर्युक्त वार्तालाप के तीन मास पश्चात् शारदाचरण की पत्नी अपने मायके आई। मायके में उसके छोटे भाई का विवाह था, उसी में सम्मिलित होने के लिए वह आई थी।

विवाह में उसके चाचा और उनके बाल-बच्चे भी आए हुए थे। उसके चाचा की एक षोड़शी कन्या थी। इस कन्या का अभी विवाह नहीं हुआ था। भाई के विवाह

के पश्चात् एक दिन शारदाचरण की पत्नी ने अपने चाचा से पूछा—चाचा जी, राजरानी का विवाह अभी नहीं किया ?

"अभी कहीं बातचीत ही नहीं लगी—लड़के की खोज कर रहा हूँ।"

"अभी तक कोई लड़का नहीं मिला ?"

"नहीं, अभी तो कोई नहीं मिला।"

"तो चाचा जी, राजरानी को मुझे दे दो।"

"चाचा ने विस्मित होकर पूछा—तुझे दे दूँ, इसका क्या अर्थ ?"

"इसका यह अर्थ है कि मैं इसका विवाह अपनी इच्छानुसार जिससे चाहूँ उससे करूँ।"

"यह बात है।"

"हाँ, मेरी इतनी बात मानो। मैंने आपसे कभी कुछ नहीं माँगा। आज पहली बार राजरानी को आपसे माँगती हूँ।"

"दुर पगली—जब वह तेरी छोटी बहिन है तो तेरी तो हई है। तू जिससे उचित समझ, विवाह कर दे। यह तो मेरे लिए अच्छा ही है—मैं लड़के की तलाश करने से बचा।"

"अच्छी बात है—तो अब कहीं इसके विवाह की बात तय न करना, यह मेरी हो चुकी।"

"हाँ तेरी हो चुकी। परन्तु बेटी, मुझे इसके विवाह की ज़रा जल्दी है; क्योंकि काफ़ी सयानी हो गई है।"

"यह मैं जानती हूँ। मैं इसका विवाह जल्दी ही करूँगी। भगवान् चाहेगा तो दो-तीन महीने के अन्दर विवाह हो जावेगा।"

"तो जान पड़ता है, कोई लड़का तेरी निगाह में है, उसी के लिए तू यह सब कर रही है।"

"अब इससे आपको क्या मतलब।"—शारदाचरण की पत्नी ने मुस्करा कर कहा।

"मतलब केवल इतना है कि अच्छे घर जाय, लड़का अच्छा हो—बस।"

"ऐसा ही होगा, आप निश्चिन्त रहिए।"

"यदि कोई लड़का तूने निश्चित कर रक्खा है तो मुझे बता दे।"

"आपको चाची जी से सब मालूम हो जायगा, उन्हीं को सब बता दूँगी।"

"अच्छी बात है।"

रात में चाची ने शारदाचरण की पत्नी से पूछा—मैंने सुना है कि आज तूने राजरानी को अपने चाचा से माँग लिया है।

"हाँ चाची, माँग तो लिया है।"

"तो किसके लिए माँगा है?"

"सच बता दूँ।"—शारदाचरण की पत्नी ने मुस्करा कर कहा।

"तो क्या इसमें भी कुछ झूठ बोलने की इच्छा है?"

"नहीं, झूठ बोल कर रहूँगी कहाँ। राजरानी को मैंने अपने लिए माँगा है।"

"अपने लिए? मैं तेरा मतलब नहीं समझी।"

"इसका मतलब यह है कि मैं राजरानी को अपनी सौत बनाऊँगी।"

यदि चाची पर काला सर्प गिरता तो कदाचित् वह इतना न चौंकतीं, जितना वह इस बात से चौंकीं। उन्होंने आँखें तथा मुख फाड़ कर कहा—ऐं! क्या कहा, सौत बनाएगी?

शारदाचरण की पत्नी ने शान्ति तथा गम्भीरता से उत्तर दिया—हाँ, सौत बनाऊँगी।

"तू बकती क्या है, मुझसे हँसी करती है, मैं तेरी बड़ी हूँ, मेरे साथ।"

चाची की बात काट कर शारदाचरण की पत्नी ने कहा—मैं हँसी नहीं करती चाची, सच्ची बात कहती हूँ।

इतना कह कर शारदाचरण की पत्नी ने सम्पूर्ण वृत्तान्त अपनी चाची को बताया और अन्त में नेत्रों में आँसू भर कर बोली—चाची, राजरानी मेरी छोटी बहिन है, इस कारण मेरी इसकी निभ जायगी। विवाह तो

उनका दूसरा होगा ही। दूसरी कोई आवे तो न जाने कैसी आवे, मेरी उसकी पटे या न पटे। राजरानी की ओर से मैं निश्चिन्त हूँ। मेरा उसका स्नेह है, इसलिए हम दोनों की खूब पटेगी—बस, केवल इस कारण से मैंने चाचा जी से यह भिक्षा माँगी और चाची तुमसे भी माँगती हूँ। तुम दया कर दोगी तो मेरा बेड़ा पार लग जावेगा, अन्यथा जो भाग्य में बदा होगा वह होगा।

यह बात सुन कर चाची चिन्ता में पड़ गईं। चाची को मौन देख कर शारदाचरण की पत्नी पुनः बोली—यह समझ लो चाची कि राजरानी का विवाह करने के साथ ही साथ तुम मेरा भी उद्धार करोगी। तुम्हें एक साथ ही दो पुण्य प्राप्त होंगे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मैं राजरानी को अपनी आँखों की पुतली बना कर रक्खूँगी।

चाची ने कहा—यह तो सब ठीक है बेटी, पर क्या कहूँ, बड़ी टेढ़ी बात है।

"तुम चाहोगी तो सीधी हो जायगी। इसमें कोई हानि तो है नहीं।"

"बेटी, मुझे तो कोई इन्कार है नहीं। यदि राजरानी से तेरा कुछ भला होता हो तो तू ले जा। वह तेरी छोटी बहिन है, परन्तु तेरे चाचा इस बात पर राज़ी होंगे या नहीं, यह मैं नहीं कह सकती।"

"चाचा जी तो मुझे दे ही चुके।"

"पर उन्हें यह बात तो नहीं मालूम थी। अब यह बात मालूम होगी तब वह क्या करेंगे, यही मैं नहीं कह सकती।"

"तुम समझा दोगी तो वह मान लेंगे। चाची, तुम स्त्री हो, स्त्री की बात समझ सकती हो। इसीलिए मैंने उनसे यह बात नहीं बताई। अब मैंने तुमसे सब कच्चा चिट्ठा बता दिया है, तुम उन्हें समझा देना, तुम्हारे समझाए से वह समझ जायँगे।"

"अच्छी बात है, जाती हूँ और अभी उनसे सब हाल कहती हूँ।"

इतना कह कर चाची अपने पति के पास पहुँचीं। पति ने उन्हें देखते ही पूछा—क्यों, कुछ मालूम हुआ—चन्दो से बातचीत हुई?

"हाँ, अभी उसी के पास से तो आ रही हूँ।"

"हाँ, उसने क्या बताया?"—पति ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

राजरानी की माता ने सब वृत्तान्त उनसे कह दिया। सब सुन कर राजरानी के पिता ने कहा—यह तो मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता।

"फिर बिना सोचे-समझे उसे वचन क्यों दे दिया?"

"तो मैं क्या जानता था वह ऐसी वाहियात बात कहेगी।"

"नहीं जानते थे तो अब जो कहा है उसे निभाओ।"

"ज़बरदस्ती निभाऊँ—यह अच्छी रही।"

"तो इसमें हर्ज क्या है? चन्दो भी अपनी बेटी ही है। उसका सङ्कट दूर करना ही चाहिए।"

"इस तरह?"

"हाँ, जब इसी तरह दूर हो सकता है तो इसी तरह दूर करना चाहिए।"

"मेरी समझ में यह बात नहीं आती।"

"मेरी समझ में तो आती है। तुम पुरुष हो तुम इस बात की गहराई को नहीं समझ सकते—मैं समझती हूँ।"

"क्या समझती हो?"

"यही कि चन्दो का सङ्कट इसी तरह टल सकता है। राजरानी उसकी बहिन है—दोनों में स्नेह है। इस कारण दोनों सौत होते भी हिल-मिल कर रहेंगी। यदि कोई दूसरी आई तो चन्दो की दुर्दशा हो जायगी।"

"परन्तु शारदाचरण की उम्र अधिक है।"

"कौन अधिक है, अभी छब्बीस-सत्ताइस बरस का तो हुई है।"

"नौ-दस बरस का अन्तर है!"

"कोई अधिक नहीं है। इतनी उमर में क्या किसी का विवाह नहीं होता।"

"होता क्यों नहीं। परन्तु × × ×"

"अब इस झञ्झट में न पड़ो—अब चन्दो के मन की होने दो। वह बेचारी कितनी दुखिया है। यदि हमारे इस कार्य से उसका दुख दूर हो जाय तो इससे अधिक हमारे लिए और कौन सी बात है। दूसरे तुम वचन भी दे चुके हो।"

"वह तो बिना समझे-बूझे दे दिया था।"

"चाहे जैसे दिया हो—वचन, वचन ही है, उसका पालन करना चाहिए।"

"तुम्हें स्वीकार है, पहले यह बताओ?"

"मुझे स्वीकार न होता तो मैं तुमसे इतना ज़ोर देकर कहती ही क्यों?"

"ऊँच-नीच सब सोच लिया है?"

"हाँ, सब सोच लिया है।"

"अच्छी बात है तो मुझे भी स्वीकार है।"

४

चन्दो अपनी ससुराल लौट आई। ससुराल आकर पहले उसने अपनी सास से सब वृत्तान्त कहा। सास ने उसके कार्य पर उसे साधुवाद देते हुए कहा—परन्तु

बेटी, यह तो जो हुआ सब ठीक ही हुआ ; पर शारदा विवाह करने पर राज़ी होगा ?"

"उन्हें राज़ी तो करना ही पड़ेगा।"—चन्दो ने उत्तर दिया।

"कैसे ?"

"जैसे बनेगा !"

"मेरी समझ में तो वह राज़ी न होगा।"

"उन्हें राज़ी होना पड़ेगा।"

"देखो, तेरे कहने से हो जाय तो हो जाय।"

"हो जायँगे—मुझे विश्वास है।"

"विश्वास है तो ठीक है।"

उसी दिन चन्दो ने शारदाचरण से कहा—मैंने तुम्हारे विवाह के लिए एक लड़की ठीक की है।

शारदाचरण ने भृकुटी चढ़ा कर पूछा—कैसी लड़की !

पति के मुख का भाव देख कर चन्दो का साहस छूटने लगा, परन्तु उसने सँभल कर कहा—विवाह के लिए !

शारदाचरण ने पत्नी को एक बेर सिर से पैर तक देखा, तत्पश्चात् कहा—मुझसे इस प्रकार की हँसी करना अच्छा नहीं—समझीं, मुझे ये बातें नापसन्द हैं।

चन्दो अप्रतिभ होकर चुप हो गई। उसने सोचा जिस समय प्रसन्नचित्त होंगे उस समय कहना ठीक होगा।

दो दिन पश्चात् चन्दो ने रात में पुनः वही चर्चा छेड़ी। उसने कहा—उस दिन मैंने तुमसे जो बात कही थी वह याद है ?

"कौन सी बात ?"

"कुछ कहा था—याद करो। तुम नाराज़ होने लगे तो मैं चुप हो गई।"

"न जाने क्या वाही-तबाही बक रही थीं।"

"मैंने यही कहा था कि तुम्हारे लिए एक लड़की ढूढ़ी है।"

"हाँ-हा, कुछ ऐसी ही बात थी—तो फिर ?"

"फिर क्या—लड़की ढूँढ़ी है।"

"बड़ी दया की।"—शारदाचरण ने व्यङ्गपूर्वक मुस्करा कर कहा।

चन्दो ने पति के व्यङ्ग को समझ कर कहा—मेरी यह दया अभी नहीं—आगे चल कर मालूम होगी।

"क्या बात है, तुम्हारी यह दया चिरस्मरणीय रहेगी।"—शारदाचरण ने उसी प्रकार मुस्कराते हुए कहा।

"हँसी नहीं, मैं सच कहती हूँ कि मैंने तुम्हारे लिए अपने चाचा से अपनी चचेरी बहिन को माँग लिया है। बस, तुम्हारे स्वीकार करने भर की देर है।"

"ओफ़ ओह ! तब तो बड़ा पुण्य कमाया।"

'मैं उनसे कह आई हूँ कि विवाह शीघ्र ही हो जायगा।"

"अच्छा, चट मेरी मँगनी और पट मेरा ब्याह!"

"बिलकुल ऐसी ही बात है। लड़की भी बड़ी सुन्दर है।"

"तुमसे अधिक?"

"मैं बेचारी काहे में हूँ, उसे देखोगे तो कहोगे कि हाँ कुछ है।"

"तुम्हारे सामने तो मुझे कोई जँचेगी नहीं।"

"वह तो ऐसी जँचेगी कि मुझे भी भूल जाओगे।"

"तब तो विवाह होना और भी कठिन है। मैं तुम्हें भूलना नहीं चाहता।"

"अच्छा, अब यह चुहल छोड़ दो—सच-सच बताओ कि विवाह करोगे?"

"कदापि नहीं।"

"तुम्हें करना पड़ेगा।"

"क्यों?"

"मैं अपने चचा जी को वचन दे आई हूँ।"

"तुम्हारे वचन से मुझे क्या मतलब?"

"मेरे वचन की रक्षा न करोगे?"

"मैं ऐसे वचन का कोई मूल्य ही नहीं समझता।"

"यदि तुम्हें मुझसे सच्ची मुहब्बत है तो तुम्हें मेरे

वचन की रक्षा करनी चाहिए। भगवान् भी अपने भक्तों की बात रखते हैं।"

"पर मैं भगवान् नहीं हूँ—एक साधारण मनुष्य हूँ।"

"प्रेम का सम्बन्ध तो सबके लिए एक सा है—चाहे भगवान् हो चाहे मनुष्य।"

"समरथ को नहिं दोष—भगवान् सर्व-शक्तिमान् हैं, वह सब कुछ कर सकते हैं। मनुष्य उनकी बराबरी नहीं कर सकता।"

"यह कोई ऐसी बात तो है नहीं जो तुम्हारी शक्ति के बाहर हो।"

"जो कार्य करने योग्य न हो, वह शक्ति के बाहर ही समझा जाता है।"

"यह तुम्हारी बहानेबाज़ी है।"

"अच्छा बहानेबाज़ी ही सही।"

"तो तुम विवाह नहीं करोगे?"

"हाँ, अभी तो ऐसी ही इच्छा है—आगे भगवान् जाने।"

"अच्छी बात है, जैसी तुम्हारी इच्छा।"—इतना कह कर चन्दो उदास हो गई।

दूसरे दिन जब शारदाचरण की माता ने चन्दो से यह सुना कि शारदाचरण ने साफ़ जवाब दे दिया तो

वह बहुत दुखी हुईं। उन्होंने पुत्र को बहुत समझाया, उसके सामने बहुत रोई-पीटीं; पर शारदाचरण टस से मस न हुए। अन्त में वह भी हार मान कर चुप हो रहीं। परन्तु उसी दिन से शारदाचरण का घर श्मशान तुल्य हो गया। माता भी उदास रहने लगी और पत्नी भी। आवश्यक बातों के अतिरिक्त उनसे कोई अधिक वार्त्तालाप नहीं करती थीं। कुछ दिन तो इस प्रकार व्यतीत हुए, अन्त में शारदाचरण को यह असह्य हो उठा। उन्होंने एक दिन क्रोध में भर कर कहा—तुम लोग यह क्या रोनी सूरत बनाए रहती हो।

माता ने कहा—क्या करें, जब मन ही प्रसन्न नहीं तो हसती सूरत कैसे रह सकती है।

"तो तुम लोग चाहती हो कि मैं विवाह करके दुनिया में अपनी हँसी कराऊँ, ज़लील बनूँ?"

"न बेटा, हँसी मत कराओ, तुम अपना मुँह उजला रक्खो, हमारे ऊपर जो दुख है वह हम झेल लेंगी।"

"तुम पर ऐसा कौन दुख का पहाड़ फट पड़ा है।"

"इसे तुम क्या जानोगे—जिस पर पड़ती है, वही जान सकता है।"

"तो इस प्रकार तो मैं नहीं रह सकता। जब देखो तब मुँह लटका हुआ है।"

"यह अपने बस की बात नहीं है।"

शारदाचरण कुछ क्षणों तक विचार करके कुण्ठित स्वर में बोले—अच्छी बात है, यदि तुमको मुझे ज़लील करने से ही सन्तोष होगा तो जो तुम्हारी इच्छा हो, करो।

"हमारी इच्छा जब तुम्हारे मारे पूरी होने पावे।"

"कह तो रहा हूँ कि जो इच्छा हो करो, मैं तुम्हारी बात मानने के लिए तैयार हूँ।"

शारदाचरण का विवाह ठीक हो गया और विवाह की तिथि भी निश्चित हो गई। विवाह होने के दो मास पूर्व अकस्मात् शारदाचरण की पत्नी को हैज़ा हो गया। शारदाचरण ने बहुत दौड़-धूप की, परन्तु कोई फल न हुआ—चन्दो का अन्त समय आ पहुँचा। मृत्यु के आध घण्टा पूर्व चन्दो ने पति से कहा—तुम एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह करना अपने लिए अपमानजनक समझते थे, सो भगवान् ने मुझे अपने पास बुला कर तुम्हारा मान रख लिया और मैंने जो प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विवाह अवश्य करूँगी सो भगवान् ने मेरी बात भी रख ली। ईश्वर बड़ा दयालु है—सबका मान रखता है।

शारदाचरण व्याकुल होकर बोले—ईश्वर तुम्हें चङ्गा कर दे; मैं तुम्हारे कहने से एक क्या, दस विवाह करने को तैयार हूँ।

चन्दो क्षीण मुस्कान के साथ बोली—इस विवाह की आवश्यकता नहीं, इसलिए मैं चङ्गी नहीं हो सकती।

शारदाचरण पत्नी के वक्षस्थल पर अपना सिर रख कर सिसकियाँ लेते हुए बोले—ऐसा न कहो, मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

चन्दो ने पति के सिर पर हाथ रख कर कहा—इस प्रकार मरने में कितना सुख है, कितना आनन्द है। मेरा मनोरथ पूरा हो गया—मेरा काम समाप्त हो चुका। अब जीकर करना ही क्या है। भगवान् तुम्हें और मेरी प्यारी बहिन राजरानी को चिरञ्जीव रक्खे—तुम दोनों फूलो-फलो। सन्तान का सुख देखो—इससे अधिक और मैं कुछ नहीं चाहती। मुझे इस बात का बड़ा सन्तोष है कि मैंने अपनी प्यारी बहिन तुम्हें समर्पित की और अपनी बहिन को अपना प्यारा समर्पित किया—आह! भगवान् ने मरते समय मुझसे कितना अच्छा कार्य कराया, परन्तु—परन्तु एक लालसा हृदय में रह गई!

शारदाचरण ने सिर उठा कर अश्रुप्लावित नेत्रों से पत्नी की ओर देख कर कहा—वह क्या? बताओ, शीघ्र बताओ, मैं उसे पूरी करूँगा। मैं नहीं चाहता कि तुम कोई लालसा लेकर इस संसार से जाओ।

"वह—लालसा—अब इस जीवन में—पूरी नहीं हो सकती। वह लालसा तुम्हारी सन्तान खिलाने की थी—

चाहे उसका जन्म मुझसे होता या मेरी सौत से। मैं केवल तुम्हारे बालक का—मुख चूमना—चाहती थी...!" चन्दो इससे आगे कुछ न कह सकी !

शारदाचरण 'हाय राम' कह कर भूमि पर लोटने लगे।

अन्तिम भेंट

एक छोटे से मकान के सामने आदमियों की भीड़ लगी हुई थी। मकान के द्वार पर दो कॉन्स-टेबिल खड़े थे और थोड़ी-थोड़ी देर पश्चात् बढ़ती हुई भीड़ को पीछे हटा रहे थे। सहसा मकान के अन्दर से तीन कॉन्सटेबिल तथा-सबइन्सपेक्टर एक आदमी को गिर-फ़्तार किए हुए बाहर निकले। जिस आदमी को गिरफ़्तार किया था, वह भव्याकार, गौर-वर्ण तथा सुदृढ़-शरीर था। उसके नेत्र बड़े-बड़े तथा रक्त-वर्ण थे। वस्त्र से यह व्यक्ति हिन्दू मालूम पड़ता था। साथ में एक कॉन्सटेबिल एक तीन वर्ष की कन्या को गोद में लिए था। कन्या रो रही थी—अभियुक्त बीच-बीच में उसे चुमकार कर चुप करने की चेष्टा कर रहा था।

पुलिस उसे लेकर थाने की ओर चली। तमाशाइयों की भीड़ में एक आदमी ने पूछा—क्यों भाई, क्या मामला है?

एक व्यक्ति बोला—यह डाकू है—बड़ा नामी डाकू है—आज पकड़ा गया।

दूसरा—अच्छा! लेकिन हम तो इसे इस मकान में मुद्दत से देखते हैं।

"हाँ जी, कौन जानता था कि यह डाकू होगा। हम तो इसे भला आदमी समझते थे।"

"भला आदमी मालूम ही पड़ता था, सबसे बड़ी भलमनसाहत से मिलता था, बहुधा ग़रीबों की सहायता भी किया करता था।"

"अरे भाई, यह संसार बड़ा विचित्र है। कौन भला है और कौन बदमाश, इसका पता लगना बड़ा कठिन है।"

"सच कहते हो, आजकल ऐसा ही ज़माना है।"

उसी समय एक वृद्धा बोल उठी—कौन दाढ़ीजार कहता है कि डाकू है। जो कहता है वह ख़ुद डाकू है। ऐसे भले आदमी को डाकू बताते हैं—वाह री दुनिया! जब से उसकी घर वाली मरी, तब से जब कहीं बाहर जाता रहा तो अपनी बिटिया हमें सौंप जाता रहा। हम उसके घर में रहती रहीं। हमने तो कभी कोई बात नहीं देखी।

एक बोला—अब यह बात कही सो कही, पर अब कभी मत कहना, नहीं तुम भी पकड़ी जाओगी।

बुढ़िया उँगलियाँ नचा कर बोली—हम तो हज़ार दफ़े कहेंगे—देखें कौन निगोड़ा पकड़ता है। पकड़ना हँसी-ठट्ठा है। और उसी को पकड़ा है तो क्या कर लेंगे—दो-चार दिन में छूट जायगा। ऐसे कोई अन्धेर है—भले आदमी को डाकू कह देना कोई खेल नहीं है।

एक ने पूछा—क्यों बुढ़िया, तुझे वह कभी कुछ देता था ?

"देता क्यों नहीं था, उसकी बच्ची अच्छी रहे—उसने हमें न जाने कितना दिया।"

"वह लाता कहाँ से था ? कहीं नौकरी करता था ?"

बुढ़िया कुछ क्षण तक सोचकर बोली—नौकरी-चौकरी तो कहीं करता नहीं था।

"फिर इतना रुपया कहाँ से लाता था ?"

बुढ़िया का मुख मलीन हो गया। जान पड़ता था, इस प्रश्न का उसके पास कोई समुचित उत्तर नहीं था, अतएव उसके मन में भी सन्देह उत्पन्न हो गया था। उसने कहा—अब यह तो भगवान् जाने कि कहाँ से लाता था।

"इसीलिए कहते हैं कि अब ऐसी बात मुँह से मत निकालना ; नहीं तुम भी धर ली जाओगी।"

बुढ़िया—"हूँ, दिल्लगी है" कहती हुई वहाँ से चुपचाप खिसक गई।

"क्यों जी, उसे सज़ा लम्बी ही होगी ?"

"हाँ, और क्या।"

"पता नहीं कितने डाके डाले होंगे।"

"मुक़दमे में सब हाल खुलेगा।"

"ऊपर से कितना अच्छा आदमी मालूम पड़ता था।"

"उसकी बिटिया का क्या होगा ?"

"यतीमख़ाने में दे दी जायगी या उसका कोई रिश्ते-दार होगा, वह ले जायगा।"

"बिटिया हमें मिल जाय तो हम पाल लें।"

"डाकू की बिटिया ?"

"क्या हुआ, कोई जुर्म है क्या ?"

"नहीं, जुर्म तो नहीं, पर डाकू की बिटिया तो है।"

"अरे यह सब कहने की बातें हैं। डाकू की बिटिया कुछ डाकू नहीं होगी।"

"आख़िर आप इतने दयालु क्यों हैं ?"

"यार, हमारे साथ उसने दो-एक एहसान ऐसे किए हैं कि हम चाहते हैं कि हमसे भी उसका कुछ उपकार हो जाय।"

"जाओ अपने घर बैठो, ख़ामख़ाह झगड़ा मोल लेते हो।"

"हाँ, यही हम भी डरते हैं, नहीं तो बिटिया को हम ले लेते।"

अदालत सेशन का कमरा तमाशाइयों से ठसाठस भरा था। कटहरे के अन्दर सात आदमी खड़े अपने भाग्य के फ़ैसले का इन्तज़ार कर रहे थे। इनमें हमारा पूर्व-परि-चित डाकू भी था। सेशन जज एक हिन्दुस्तानी सज्जन

थे। इस समय वह फ़ैसला लिखने में जुटे हुए थे। कमरे में इतना सन्नाटा छाया हुआ था कि यदि सुई भी गिरती तो उसके गिरने का शब्द सुनाई पड़ता।

लगभग बीस मिनिट पश्चात् जज साहब ने फ़ैसला समाप्त किया। फ़ैसले की कॉपी को बराबर करते हुए उन्होंने एक बार गम्भीरतापूर्वक अभियुक्तों पर दृष्टि डाली। तत्पश्चात् उन्होंने कॉपी उठा कर कहा—"बुधुआ पासी १० वर्ष की सख़्त क़ैद!"

इसके पश्चात् उन्होंने एक क्षण के लिए अभियुक्तों की ओर देखा 'तदुपरान्त पुनः कहा—"सोहनसिंह चौहान १० वर्ष की सख़्त क़ैद!" इसी प्रकार उन्होंने सातों अभियुक्तों के सम्बन्ध में सुना दिया।

हमारे पूर्व-परिचित अभियुक्त ने पास खड़े हुए कॉन्सटेबिल से कुछ कहा। कॉन्सटेबिल ने कोर्ट-इन्सपेक्टर के कान में जाकर कुछ कहा।

कोर्ट-इन्सपेक्टर ने खड़े होकर बड़े अदब से जज साहब से कहा—हुज़ूर, सोहनसिंह चौहान हुज़ूर से कुछ इस्तदुआ (प्रार्थना) करना चाहता है।

जज साहब ने सोहनसिंह की ओर देख कर पूछा—क्या कहना चाहते हो?

सोहनसिंह बोला—हुज़ूर ने जो कुछ सज़ा दी, वह बिलकुल वाजिब है, उसके बारे में मुझे कुछ नहीं कहना

है। मेरी इलतजा सिर्फ यह है कि मेरी एक तीन साल की लड़की है—हुज़ूर उसकी परवरिश का कुछ इन्तज़ाम कर दें।

जज साहब ने कुछ क्षण तक सोच कर कहा—अच्छा, हम उसे यतीमख़ाने में दाख़िल करा देंगे।

सोहनसिंह व्याकुल होकर बोला—नहीं सरकार, यतीमख़ाने में मत दीजिए। किसी शरीफ़ आदमी को दे दीजिए। मैं उसे यतीमख़ाने में नहीं देना चाहता।

जज साहब ने पूछा—वह लड़की कहाँ है?

कोर्ट-इन्सपेक्टर बोल उठा—वह इस समय पुलिस के क़ब्ज़े में है।

जज साहब—हम उसे देखना चाहते हैं।

एक कॉन्सटेबिल लड़की को लिए अदालत के बाहर बैठा था। उसे तुरन्त बुलाया गया। जज साहब ने देखा—लड़की देखने में सुन्दर है। वह भयभीत नेत्रों से चारों ओर देख रही थी। सहसा उसकी दृष्टि सोहनसिंह पर पड़ी। उसे देखते ही वह चिल्ला उठी—"बापू!" और हाथ फैला कर उसकी ओर गिरने लगी। सोहनसिंह ने भी बाँह फैला दीं। लड़की मचलने लगी। जज साहब ने कॉन्सटेबिल से कहा—इसे उसके बाप के पास ले जाओ।

कॉन्सटेबिल ने आज्ञा का पालन किया। लड़की

सोहन के पास पहुँचते ही उसकी छाती से चिमट गई। सोहनसिंह की आँखों से आँसुओं की धारा फूट निकली। जज साहब ने यह करुणापूर्ण दृश्य देख कर मुँह फेर लिया। सहसा तमाशाइयों की भीड़ में से एक आदमी निकल कर बोला—अगर हुज़ूर का हुक्म हो तो मैं इस लड़की को ले सकता हूँ।

जज साहब ने सिर हिला कर अस्वीकार किया और कॉन्सटेबिल से कहा—इसे हमारे बँगले पर पहुँचा दो।

सोहनसिंह का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उसके मुँह से निकला—हुज़ूर, भगवान् आपके बाल-बच्चों को सुखी रक्खे। अब मैं निश्चिन्त हो गया, अब चाहे हुज़ूर मेरी सज़ा में दो बरस और बढ़ा दें!

२

उपरोक्त घटना हुए ग्यारह वर्ष व्यतीत हो गए। गर्मी के दिन थे। सन्ध्या-समय हमारे पूर्व-परिचित जज साहब अपने बँगले के कम्पाउण्ड में लॉन पर धीरे-धीरे चहल-क़दमी कर रहे थे। दूसरी ओर थोड़ी दूर पर दो बालक तथा दो बालिकाएँ बेडमिण्टन खेल रही थीं। सहसा सामने फाटक से एक व्यक्ति आता हुआ दिखाई पड़ा। चपरासी ने उसे दूर से ललकारा—"कहाँ आता है, इधर रास्ता नहीं है।" परन्तु उस व्यक्ति ने चपरासी

की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और आगे बढ़ता चला आया। यह देख कर चपरासी दौड़ कर उसके पास पहुँचा और बोला—"इधर कहाँ आता है—फाटक बाहर जाओ।" यह व्यक्ति चालीस वर्ष से ऊपर था। मुख पर घनी दाढ़ी तथा लम्बी मूँछें थीं। साधारण कपड़े पहने हुए था। यह व्यक्ति बोला—जज साहब यहीं रहते हैं ?—"कौन जज साहब ?" चपरासी ने उसे सिर से पैर तक देख कर पूछा।

उस व्यक्ति ने जज साहब का नाम बताया। चपरासी बोला—हाँ, यहीं रहते हैं। क्यों ?

"उनसे मुलाक़ात करना है।"

"तो यहीं खड़े रहो—पहले मैं पूछ आऊँ। तुम्हारा क्या नाम है ?"

"नाम-वाम से कोई मतलब नहीं, मुझे उनके पास ले चलो।"

"बिना उनका हुक्म पाए कैसे ले जाऊँ ? तुम अपना नाम बताओ—मैं उनसे जाकर कहूँ—जब वह बुलाने को कहेंगे तो ले चलूँगा।"

"नाम उन्हें भला क्या याद होगा। अच्छा ख़ैर, कह दो कि सोहनसिंह चौहान आया है।"

"अच्छा तो यहीं खड़े रहना—जब तक मैं कहूँ नहीं, आगे मत बढ़ना।"—इतना कह कर चपरासी लपकता

हुआ जज साहब के सम्मुख पहुँचा और बोला—हुज़ूर, एक आदमी हुज़ूर से मिलना चाहता है। अपना नाम सोहनसिंह चौहान बताता है।

जज साहब का चेहरा फ़क़ हो गया, परन्तु उन्होंने तुरन्त ही अपने को सँभाला और मुँह बना कर कहा—कौन सोहनसिंह ?

"अब हुज़ूर यह तो उसने कुछ बताया नहीं—हुक्म हो तो पूछ आऊँ ?"

"हाँ-हाँ, पूछ आओ।"

चपरासी चला। परन्तु वह चार पग ही चला था कि जज साहब बोले—अच्छा मैं बाथरूम (स्नानागार) के बग़ल वाले कमरे में आता हूँ, तुम उसे वहीं ले आओ।

"बहुत अच्छा !"—कह कर चपरासी उधर गया, इधर जज साहब शीघ्रतापूर्वक बँगले की ओर चले।

चपरासी सोहनसिंह के पास पहुँचा और बोला—चलो, बुलाते हैं।

सोहनसिंह चपरासी के साथ चला। कुछ क्षण पश्चात् उसने पूछा—यहाँ जज साहब कितने दिनों से हैं ?

"साल भर हुआ।"—चपरासी ने उत्तर दिया।

"इसके पहले कहाँ थे ?"

चपरासी ने स्थान का नाम बताया। सोहनसिंह ने एक नगर का नाम लेकर पूछा—वहाँ से कब आए ?

"यह तो मैं जानता नहीं।"

"तुम कब से नौकर हुए ?"

"मैं तो बारह बरस से नौकर हूँ।"

"फिर तुम्हें मालूम क्यों नहीं ?"

"मैं कुछ जज साहब का नौकर थोड़ा ही हूँ। मैं तो सरकारी नौकर हूँ। यहाँ ही रहता हूँ, मेरे सामने तीन-चार जज आ चुके हैं।"

"अच्छा !"

बच्चों को खेलते देख कर उसने पूछा—यह किसके बच्चे हैं ?

"जज साहब के !"

"सब ?"

"नहीं, इनमें से जो सबसे बड़ी लड़की है, वह एक ठाकुर की है। इसका पिता मर गया था, सो जज साहब ने इसको पाला है।"

कुछ क्षणों के लिए सोहनसिंह के चेहरे की रङ्गत बदल गई। वह चुपचाप सिर झुकाए अर्द्धोन्मीलित नेत्रों से भूमि की ओर देखता हुआ चपरासी के साथ चलता रहा।

चपरासी ने उसे निश्चित कमरे में ले जाकर एक कुर्सी पर बिठाया। कमरा छोटा था। उसमें तीन कुर्सी तथा एक मेज़ के अतिरिक्त और कोई सामान नहीं था। थोड़ी

देर पश्चात् जज साहब आ गए। सोहनसिंह ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया। चपरासी चला गया।

जज साहब कुर्सी पर बैठते हुए बोले—तुम छूट आए ?

"हाँ सरकार!"—सोहनसिंह ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा।

"परन्तु तुम्हें तो कम से कम तीन वर्ष पहले छूटना चाहिए था ?"

"हाँ, लेकिन बीच में मैंने एक बार जेल से भागने की चेष्टा की थी, उसके कारण मेरी सज़ा एक साल और बढ़ गई और कटौती भी नहीं मिली।"

"क्यों, भागने की चेष्टा क्यों की थी ?"—जज साहब ने मुँह बना कर पूछा।

"चुन्नी बिटिया को देखने के लिए जी बहुत व्याकुल हो उठा था।"—सोहन ने सिर झुका कर कहा।

जज साहब सोहन को दया-दृष्टि से देखते हुए बोले—तुमने ग़लती की थी।

"हाँ, जब बिगड़ती है तो बिगड़ती ही चली जाती है।"

"अब क्या इरादे हैं ?"—जज साहब ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा।

"चुन्नी बिटिया को लेने आया हूँ।"

जज साहब ने किञ्चित मुस्करा कर पूछा—कहाँ ले जाओगे ?

"यह तो अभी निश्चित नहीं है।"

"वह अब तुम्हारे साथ नहीं जा सकती।"

"क्यों ?"—सोहन ने किञ्चित् रोषपूर्वक पूछा।

जज साहब ने इसका कुछ उत्तर न देकर पुकारा—बैरा !

चपरासी तुरन्त हाज़िर हुआ। जज साहब ने कहा—बच्चों को यहाँ ले आओ।

चपरासी के जाने के पश्चात् दोनों मौन बैठे रहे। थोड़ी देर पश्चात् चारों बच्चे आए। इनमें से दो लड़के थे और दो लड़कियाँ। लड़कों में से एक आठ वर्ष का था और दूसरा दस वर्ष का। लड़कियों में से एक बारह वर्ष और दूसरी १४ वर्ष के लगभग थी। चारों के कपड़े समान रूप से अच्छे तथा साफ़-सुथरे थे। चारों जज साहब को घेर कर खड़े हो गए और सोहनसिंह को कौतूहलपूर्ण नेत्रों से देखने लगे।

जज साहब ने सोहनसिंह से कहा—इसका नाम चुन्नी है, इसका विमला, इसका धीरेन्द्र, इसका सुरेन्द्र !

सोहनसिंह की दृष्टि चुन्नी पर ही स्थिर होकर रह गई। चुन्नी यथेष्ट हृष्ट-पुष्ट तथा सुन्दर थी। सुख में जीवन व्यतीत करने के कारण उसके मुख पर आन्तरिक

आनन्द तथा सन्तोष की मधुर कान्ति थी। उसने किशोरावस्था से तरुणावस्था में पदार्पण करना आरम्भ किया था, अतएव उसमें स्त्रियोचित लज्जा का प्रादुर्भाव भी हो चला था। सोहनसिंह को अपनी ओर निर्निमेष दृष्टि से ताकते हुए देख कर उसने सिर झुका लिया। परन्तु कुछ ही क्षण पश्चात् उसने पुनः दृष्टि ऊपर उठाई और सोहनसिंह को उसी प्रकार ताकते हुए पाकर उसने पुनः आँखें नीची कर लीं। इस बार उसके गौर-वर्ण कपोलों पर हलकी लाली दौड़ गई और मुख पर रोष के भाव उत्पन्न हुए। सोहनसिंह कदाचित् उसकी भावना को ताड़ गया, क्योंकि उसने कुछ म्लान-मुख होकर अपनी दृष्टि हटा ली और सिर झुका लिया। सिर झुका कर उसने एक दीर्घ-निश्वास छोड़ी। जज साहब उसके मुख को बड़े ध्यानपूर्वक देख रहे थे। उन्होंने बच्चों से कहा—बस, जाओ खेलो। विस्मयपूर्ण नेत्रों से सोहनसिंह को देखते हुए चारों वहाँ से चले गए।

जज साहब ने पूछा—क्यों सोहन, अब भी तुम चुन्नी को ले जाना चाहते हो?

सोहनसिंह ने सिर ऊपर उठाया। उसके नेत्रों में आँसू भरे हुए थे। उसने गद्गद कण्ठ से कहा—नहीं! चुन्नी सदैव के लिए मुझसे छूट गई। अब वह मेरी नहीं, आप ही की है। मेरे साथ जाकर वह कभी सुखी

न रहेगी! वह कदाचित् मेरे पास खड़ी होना भी पसन्द न करेगी। यह कहते हुए सोहन के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी।

जज साहब ने मन में सोचा—यह वह व्यक्ति है जो रुपए के लिए असहाय मनुष्यों के प्राण ले लेना खेल समझता था और सम्भव है अब भी समझता हो।

हठात् सोहनसिंह उठ खड़ा हुआ और बोला—अब जाऊँगा?

"कहाँ जाओगे?"

"कह नहीं सकता।"

"क्या करोगे?"

"यह भी नहीं कह सकता।"

"डाके तो नहीं डालोगे?"

"इच्छा तो नहीं है, आगे जैसी परिस्थिति आ जाय।"

"यहीं क्यों नहीं रहते?"

"यहाँ, आपके यहाँ?"

"और क्या, लड़की के पास रहोगे—तुम्हें अब करना ही क्या है—रोटी खाओ, कपड़ा पहनो।"

सोहनसिंह सोच में पड़ गया। जज साहब को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह उनके प्रस्ताव को स्वीकार करने ही वाला है; परन्तु अकस्मात् उसका भाव पलट गया। उसने कहा—नहीं आपके यहाँ नहीं रहूँगा।

"क्यों ?"—जज साहब ने आश्चर्य से पूछा।

"आपने मेरी लड़की की रक्षा की, उसे अपने बाल-बच्चों के समान पाला-पोसा। आपका इतना ही एहसान क्या कम है—इसीसे इस जन्म में उऋण नहीं हो सकूँगा। अब और अधिक एहसान नहीं लूँगा। मैं अपना उदर-पोषण कर सकता हूँ।"

"आवारा घूमने से सम्भव है, तुम फिर डाकुओं में मिल जाओ।"

"अपना पेट पालने के लिए अब मैं डाका नहीं डालूँगा—यह विश्वास रखिए। हाँ, एक बात पूछना भूल ही गया—इसका विवाह कब कीजिएगा ?"

"एक जगह बातचीत लग रही है—सम्भव है, इसी साल के अन्दर हो जाय। वर भी कुलीन क्षत्री है।"

"देखिए, जीवित रहा तो विवाह में आऊँगा।"

"मेरी यहाँ से बदली हो गई तो कैसे ढूँढ़ोगे ?"

"जैसे अब ढूँढ़ लिया। दो महीने से आपको ढूँढ़ रहा था। बीच-बीच में चिट्ठी लिख कर आपसे विवाह के सम्बन्ध में पूछता रहूँगा।"

"मेरी समझ में तो तुम यहीं रहते तो अच्छा था।"

"नहीं सरकार, इस समय तो मैं नहीं रह सकता। विवाह पर आऊँगा, उस समय सम्भव है कि मैं फिर

आपके यहाँ से न जाऊँ।"—इतना कह कर सोहनसिंह बिदा हुआ।

३

छः मास और बीत गए। सोहनसिंह आजकल एक छोटे से क़स्बे में कचालू और दही-बड़े का ख़ोम्चा लगा कर अपना उदर-पोषण करता है। उसके साथी डाकुओं ने, जिनमें से कुछ तो उसके साथ ही जेल से छूटे थे और कुछ उससे पूर्व छूट चुके थे, उसे पुनः अपनी टोली में मिलाना चाहा; पर उसने स्वीकार नहीं किया। कुछ दिन तो वह मज़दूरी करता रहा। मज़दूरी करके उसने रुपया जोड़ा—उसी रुपए से वह ख़ोम्चा लगाने लगा।

एक दिन उसे एक पत्र मिला। पत्र में केवल इतना लिखा था—"चुन्नो का ब्याह होने में केवल एक महीना रह गया है।" पत्र पढ़ कर सोहनसिंह के मुख पर चिन्ता का भाव उदय हुआ। उसने अपना छोटा काठ का सन्दूकचा खोला और उसमें से रुपए निकाल कर गिने। उसमें केवल पचास रुपए निकले। सोहनसिंह ने उन रुपयों की ओर देख कर घृणा से मुँह बनाया और अपने ही आप कहा—"केवल पचास रुपए! छः महीने से रात-दिन परिश्रम कर रहा हूँ और अब तक केवल पचास ही हुए। इनमें भला क्या होगा। चुन्नी के लिए एक अच्छा

गहना भी तो न बन सकेगा। ओफ़! मैंने हज़ारों रुपए पानी की तरह बहा दिए। परन्तु आज अपनी इकलौती बेटी को कोई उत्तम भेंट देने के लिए मेरे पास रुपए नहीं। इस पर लोग ईमानदारी की तारीफ़ करते हैं। ईमानदारी ने मुझे केवल यह पचास रुपए दिए। इतने रुपए तो मैं एक दिन में ख़र्च कर देता था।" यह कह कर उसने घृणापूर्वक उन रुपयों को सन्दूक़चे में फेंक दिया।

उस दिन उसने ख़ोम्चा नहीं लगाया। दूसरे दिन भी वह अपनी कोठरी में पड़ा रहा। तीसरे दिन प्रातः-काल उसकी कोठरी का द्वार किसी ने खटखटाया। सोहन ने उठ कर द्वार खोला। द्वार खोल कर उसने एक व्यक्ति को खड़े देखा। उसे देखते ही वह बोल उठा—बुधुवा! तू है!

बुधुवा मुस्करा कर बोला—हाँ, कहो क्या हाल है?

"हाल अच्छे नहीं हैं बुधुवा!"

"अच्छे हो भी कैसे सकते हैं, ख़ोम्चा बेच कर किसी के हाल अच्छे हुए हैं?"

"मेरा पेट पालने के लिए तो ख़ोम्चा बहुत है।"

"पेट तो सुअर भी पाल लेता है।"—बुधुवा ने घृणा से कहा।

"यह तो ठीक है। अच्छा तुम यहाँ कैसे आए?"

"तुम्हें बताने से क्या फ़ायदा?"

"नहीं, फ़ायदा होगा।"

"यह बात है!"

यह कर कह बुधुवा कोठरी के अन्दर आ गया। सोहन ने कोठरी का द्वार बन्द कर लिया और बुधुवा से कहा—बुधुवा सच बताओ, क्या बात है?

"पहले यह बताओ, साथ दोगे?"

"हाँ ज़रूर! अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए नहीं, बल्कि अपनी बिटिया के लिए!"

"इसका क्या मतलब?"

"मेरी बिटिया का ब्याह होने वाला है, उसके ब्याह पर मैं उसे कुछ देना चाहता हूँ।"

"उसका ब्याह तो वह ससुरा जज कर ही देगा।"

"वह लाख करे; पर मैं उसका पिता हूँ बुधुवा, मेरा भी कुछ फ़र्ज़ है। मैंने अभी तक उसे क्या दिया? उसको पाल-पोस भी तो नहीं सका। यह बात मुझे कभी पागल बना देती है। ग़ैरों को हज़ारों रुपए दे दिए, पर आज अपनी बेटी के लिए मेरे पास कुछ नहीं, इससे अधिक रञ्ज की बात और क्या हो सकती है?"

"तो यदि यह बात है तो जो तुम चाहते हो वैसा ही डौल लग रहा है।"

"बोलो।"

"यहाँ के जो × × × हैं उनका लड़का ससुराल से

अपनी जोरू को बिदा कराके लौट रहा है। उसके साथ केवल एक नौकर है और एक बहली। एक स्थान ऐसा है जहाँ वह सन्ध्या के समय आवेंगे। वह बड़ा निर्जन स्थान है—वहाँ लगे रहने से काम बन सकता है।"

"परन्तु सन्ध्या को वह कहीं टिक न रहेंगे ?"

"नहीं, वह स्थान यहाँ से पाँच कोस के फ़ासले पर है। इसलिए वह रुकेंगे नहीं, क्योंकि वहाँ से रात के नौ बजे तक यहाँ आ सकते हैं। और इधर डाके वाले कभी पड़ते नहीं, इसलिए उन्हें खटका भी नहीं है।"

"तो उनके पास क्या बहुत माल है ?"

"औरत पाँच-छः हज़ार का गहना पहने है।"

"यह सब तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"उनका एक नौकर है, उससे मुझे पता लगा है।"

"अच्छी बात है, तो मैं तुम्हारे साथ हूँ। परन्तु मेरी बिटिया का ब्याह है, यह समझ कर मुझे हिस्सा देना।"

"तुम जितना चाहना, ले लेना; जैसी तुम्हारी बिटिया वैसी हमारी !"

सन्ध्या का समय है। सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुँच चुके हैं। इसी समय एक बहली धीरे-धीरे चली आ रही है। बहली पर परदा पड़ा हुआ है। दोनों ओर

दो पुरुष बैठे हैं। सहसा एक व्यक्ति बोला—बढ़ाए चलो बहलवान, अब तो निकट पहुँच गए।

बहलवान बैलों को पड़ लगा कर बोला—बस, अब कौन दूर है—घण्टे भर में पहुँचते हैं।

"यह इतनी जगह बड़ी सुनसान है, इधर कोई गाँव नहीं।"

बहलवान ने कहा—हाँ, लेकिन यहाँ कोई खटका नहीं।

"हाँ खटका तो नहीं है।"

इस समय बहली एक ऐसे स्थान से गुज़री, जहाँ जङ्गली पेड़ों के कारण काफ़ी अँधेरा था। इसी समय कच्ची सड़क के दोनों ओर से पाँच व्यक्ति हाथों में भाले लिए हुए निकले। उन्होंने दौड़ कर बहली को चारों ओर से घेर लिया। एक ने बहलवान को पकड़ कर खींच लिया, अन्य व्यक्तियों ने शेष दोनों पुरुषों को पकड़ लिया।

सोहनसिंह ने बहली का पर्दा उलट दिया और स्त्री को हाथ पकड़ कर बहली पर से खींच लिया। स्त्री नीचे उतर कर खड़ी हो गई और थर-थर काँपने लगी। अपने शृङ्गार से वह नववधू-सी जान पड़ती थी। सन्ध्या के क्षीण आलोक में सोहनसिंह ने उसे देखा। सहसा सोहन-सिंह को ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी कन्या चुन्नी उसके

आगे खड़ी है। वधू का आकार-प्रकार ठीक सोहनसिंह की कन्या चुन्नी के समान था। उसे देखकर सोहनसिंह को अपनी चुन्नी याद आ गई। उसने सोचा—चुन्नी भी एक दिन इसी प्रकार अपनी ससुराल जायगी।

सोहनसिंह को चुप खड़े देखकर बुधुवा बोला—जल्दी करो, खड़े क्या देखते हो?

सोहन बोला—रहने दे बुधुवा, छोड़ दो सबको, आओ चलें।

"तुम पागल हो गए हो क्या, नाम लेकर पुकारते हो?"—यह कहता हुआ बुधुवा आगे बढ़ा और उसने धक्का देकर सोहन को हटा दिया और स्वयं गहना उतारने के लिए हाथ बढ़ाया। सोहन चिल्ला उठा—बुधुवा रहने दे, उसके हाथ लगाया तो अच्छा न होगा।

परन्तु बुधुवा ने सोहन की बात पर ध्यान न दिया। यह देख कर सोहन आगे बढ़ा। उसने भाले की नोक बुधुवा की छाती पर धर दी और बोला—बस, जो मैं कहता हूँ वह करो।

"सोहन, तुम्हें क्या हो गया है? अपने होश में हो या नहीं?"

"मैं इसी समय होश में आया हूँ, अभी तक बेहोश था।"

"तो हम तुम्हें सदा के लिए बेहोश कर देंगे।"—यह

कह कर एक दूसरे डाकू ने पीछे से सोहन की पीठ पर भाला मारा।

भाले का पूरा फल सोहनसिंह की पीठ में उतर गया। वह लड़खड़ा कर गिरा। परन्तु गिरते-गिरते उसने कहा—अब भी ख़ैर है बुधुवा, अपने साथियों को हटा ले जा। मेरी-तेरी पुरानी मित्रता है, अन्त समय मेरी इतनी बात मान ले।

सोहन को गिरते देख बुधुवा घबरा गया। उसने अपने साथियों से कहा—भागो, बे भागो यह तुमने बड़ा ग़ज़ब किया। मेरे दोस्त ही को ख़तम कर दिया। सोहन, क्या तू इसीलिए आया था?

"मित्र, जो भाग्य में लिखा था वह हुआ—अब तुम अपने को बचाओ, मेरी चिन्ता मत करो।"

चुन्नी का विवाह हो चुका, आज बिदा है। बिदा होने के चार घण्टे पूर्व एक सज्जन जज साहब से मिलने आए। उन्होंने एक सहस्र रुपए के मूल्य की एक कड़ों की जोड़ी जज साहब के सम्मुख रख दी।

जज साहब ने विस्मित होकर पूछा—यह किसने भेजी है?

"सोहनसिंह ने।"

"वह कहाँ है?"

"स्वर्ग-लोक में !"

"ऍं ! क्या उसकी मृत्यु हो गई ?"

"हाँ !"

"कैसे ?"

"मेरी और मेरी पत्नी की रक्षा में।"—यह कह कर उस व्यक्ति ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। इसके पश्चात् उसने कहा, सोहन ने अन्त समय जो शब्द कहे थे वह यह हैं—"मेरी बेटी चुन्नी से कह देना, बेटी, तेरे कारण ही मैंने एक अन्तिम पाप करना चाहा था; पर एक वधू में तेरे स्वरूप का आभास पाकर मैंने उसकी रक्षा में अपने प्राण दे दिए। तेरे लिए यही मेरी भेंट है।"

जज साहब के नेत्रों में आँसू छलछला आए। उन्होंने पूछा—फिर यह कड़े किसने दिए ?

"मैं सोहन की ओर से यह उसकी कन्या को देता हूँ।"

जज साहब ने कहा—तो मैं इसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ; क्योंकि सोहन ने इन्हें किसी के प्राण लेकर नहीं, वरन् किसी की रक्षा में अपने प्राण देकर प्राप्त किए हैं।

परन्तु चुन्नी को कुछ पता नहीं। उससे जब कोई उन कड़ों के सम्बन्ध में पूछता है, तो वह केवल इतना बताती है—मेरे पिता ने एक दफ़े किसी के प्राण बचाए थे, उन्होंने ही विवाह पर ये भेजे थे !

सुधार

सुधार

रात के आठ बज चुके हैं। एक सुन्दर तथा विद्युत्-प्रकाशपूर्ण कमरे में एक युवक पलँग पर लेटा हुआ एक अङ्गरेज़ी की पुस्तक पढ़ रहा है। कभी-कभी वह पुस्तक पर से दृष्टि हटा कर कमरे के एक द्वार की ओर देखता है। उसके इस प्रकार दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट-रूप से प्रकट होता है कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। इसी प्रकार वह कुछ देर तक पढ़ता रहा। अन्त में उसने पुस्तक अपने सिरहाने की ओर रख दी और एक अँगड़ाई लेकर वह पलँग से नीचे उतरा। पलँग से उतर कर वह उसी द्वार के पास पहुँचा। द्वार के एक पट को उसने धीरे से खोला और कुछ क्षणों तक दूसरी ओर झाँक कर पुनः पट उसी प्रकार ओढ़का दिया। इसके पश्चात् वह पुनः अपने पलँग पर आकर बैठ गया। उसके माथे पर बल पड़े हुए थे, भवें चढ़ी हुई थीं। थोड़ी देर तक वह कुछ सोचता रहा, इसके पश्चात् वह पुनः उठा। कमरे के एक ओर एक मेज़ रक्खी हुई थी और मेज़ के पास दो कुर्सियाँ रक्खी थीं। युवक इन्हीं कुर्सियों में से एक पर बैठ गया। मेज़ पर एक गुलाबी लिफ़ाफ़ा

पड़ा हुआ था। युवक ने उस लिफ़ाफ़े को उठाया और उसके अन्दर से गुलाबी कागज़ पर छपा हुआ पत्र निकाला। उसे उसने पढ़ा। पढ़ कर उसे पुनः लिफ़ाफ़े में रख दिया और उसे मेज़ पर फेंक दिया। इसके पश्चात् उसने अपने ही आप कहा—"हटाओ भी झगड़ा—चलो चलें।" यह कह कर वह उठा। इधर युवक कुर्सी से उठा, उधर कमरे का पूर्वोक्त द्वार धीरे-धीरे खुला और एक युवती भीतर आई। युवती ने कमरे के भीतर आकर द्वार पुनः बन्द कर दिया और धीरे-धीरे मेज़ के पास आई।

युवती की वयस २५-२६ वर्ष के लगभग होगी। युवती गौर-वर्ण और देखने में यथेष्ट सुन्दर थी। वह एक साधारण श्वेत धोती तथा एक श्वेत सलूका पहने हुए थी। सिर के बाल देखने से पता चलता था कि कई दिनों से सिर नहीं धोया गया है और न उसमें कङ्घी की गई है। युवती आकर मेज़ के पास खड़ी हो गई और बिना युवक की ओर देखे लिफ़ाफ़े को उठा कर और उसमें से पत्र निकाल कर पढ़ने लगी। पत्र पढ़ कर उसने एक ओर फेंक दिया और एक ज़ोर की जँभाई ली, तत्पश्चात् कहा—"हमें तो बड़े ज़ोर से नींद लगी है।" यह कह कर वह पलँग पर जा लेटी। युवक कुर्सी पर हाथ रक्खे युवती के इस हाव-भाव को बड़े ध्यान से देखता

रहा। युवती के पलँग पर जा लेटने से उसके माथे की रेखाएँ अधिक गम्भीर हो गईं। वह इसी प्रकार कुछ देर तक युवती की ओर देखता रहा। तत्पश्चात् एक ओर दीवार में लगी हुई खूँटियों की ओर बढ़ा। इन खूँटियों पर वस्त्र टँगे हुए थे। खूँटी पर से उसने अपने बाहर जाने के वस्त्र उतारे और पहनने लगा। वह वस्त्र पहनता जाता था और युवती की ओर देखता जाता था। हठात् युवती ने करवट ली और युवक की ओर देख कर बोली— कहाँ चले ?

युवक—निमन्त्रण-पत्र नहीं देखा ?

युवती—वहाँ जाना आवश्यक है ?

युवक—हाँ।

युवती—तब तो मैं नाहक ही आई, वहीं पड़ रहती तो अच्छा था।

युवक के ओठों पर घृणायुक्त मुस्कराहट दौड़ गई। उसने कहा—तो अभी क्या हुआ है, अब जा पड़ो।

युवती—जाना ही पड़ेगा, यहाँ अकेली थोड़े ही पड़ूँगी।

यह कह कर युवती उठी और धोती सँभालती हुई बोली—जो जाना था तो पहले ही कह देते। ऐसी मीठो नींद आ रही थी × × ×।

युवक ने कहा—क्षमा करो, भूल हुई। अब जाकर

रातभर आनन्दपूर्वक सोओ—अब तुम्हारी मीठी नींद को व्याघात नहीं पहुँचेगा।

युवती ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप कमरे के बाहर हो गई।

युवक कुछ क्षणों तक द्वार की ओर देखता रहा, इसके उपरान्त एक दीर्घ निश्वास लेकर उसने बटन दबाकर बिजली बुझा दी।

मकान के सदर द्वार से निकल कर युवक एक ओर चला। थोड़ी देर तक इसी प्रकार चलते रहने के पश्चात् वह एक मकान के द्वार पर पहुँचा। द्वार पर खड़े होकर उसने पुकारा—"जगदम्बाप्रसाद!" इसी प्रकार उसने दो-तीन आवाज़ें दीं। एक नौकर ने बाहर आकर कहा—कौन है?

युवक ने कहा—निरञ्जनलाल!

नौकर बोल उठा—ओहो, बाबू जी हैं! आइए, कमरे में आ जाइए; बाबू जी खाना खा रहे हैं, अभी आते हैं।

निरञ्जनलाल कमरे के अन्दर चले गए और एक कुर्सी पर बैठ गए। नौकर ने अन्दर से पानों की तश्तरी लाकर निरञ्जनलाल के सामने रख दी। निरञ्जनलाल ने पान खाया और अपने जेब से सिगरेट-केस निकाल कर एक सिगरेट सुलगाई। थोड़ी देर तक वह चुपचाप बैठे सिगरेट

पीते रहे और न जाने क्या सोचते रहे। उनका मुख-मण्डल विषादयुक्त था और थोड़ी-थोड़ी देर में वह दीर्घ निश्वास छोड़ रहे थे।

आध घण्टे के पश्चात् जगदम्बाप्रसाद कमरे में आए और निरञ्जनलाल की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोले—आज आप बेवक्त कैसे टपक पड़े?

निरञ्जनलाल एक शुष्क हास्य के साथ बोले—घर में जी नहीं लगा, इसलिए इधर चला आया।

जगदम्बाप्रसाद नेत्र विस्फारित करके बोले—यह आप कह क्या रहे हैं—घर में जी नहीं लगा! श्रीमती जी तो आजकल यहीं हैं?

निरञ्जनलाल हँस कर बोले—हाँ, हैं तो यहीं।

जगदम्बा—तो फिर जी क्यों नहीं लगा?

निरञ्जनलाल—यह मेरा दुर्भाग्य है, और क्या कहूँ।

जगदम्बाप्रसाद निरञ्जनलाल के सम्मुख एक कुर्सी पर बैठ गए और तश्तरी में से पान उठाते हुए बोले—आज तो तुम अजब तरह की बातें कर रहे हो। श्रीमती जी से कुछ झगड़ा हो गया क्या?

निरञ्जनलाल विषादपूर्ण स्वर से बोले—नहीं, झगड़ा-बगड़ा तो कुछ नहीं हुआ।

जगदम्बा—नहीं, यह तो मैं न मानूँगा, कोई बात तो

अवश्य है। नौ बजे के बाद तो आप कभी घर से निकलते नहीं थे।

निरञ्जन—कोई क़सम तो खा नहीं रक्खी है। कोई काम नहीं रहता इसलिए नहीं निकलता।

जगदम्बा—यह तो मैं न मानूँगा। अच्छा, आज कौन काम है?

निरञ्जन—आज न जाने क्यों चित्त बड़ा उद्विग्न-सा है, कहीं चित्त नहीं लगता; इसलिए मैंने सोचा तुम्हारे ही पास चलूँ।

जगदम्बा—श्रीमती जी से कुछ लड़ाई-झगड़ा अवश्य हुआ है।

निरञ्जन—बिलकुल नहीं, तुम्हारे सर की क़सम, ऐसी कोई बात नहीं है।

जगदम्बा—तो फिर जी क्यों नहीं लगा?

निरञ्जनलाल—मेरी समझ में स्वयम् नहीं आता—समय ही तो है।

जगदम्बा—अच्छा ख़ैर! अब यह बताओ कि यहीं बैठोगे या कहीं चलोगे?

निरञ्जन—जैसी तुम्हारी इच्छा हो, मैं तो तुम्हारे साथ हूँ।

जगदम्बा—तो यहाँ बैठ कर क्या करोगे, चलो ज़रा घूम आवें।

निरञ्जन—चलो।

थोड़ी देर में जगदम्बाप्रसाद निरञ्जनलाल को साथ लेकर मकान से निकले।

जगदम्बा—किधर चलोगे?

निरञ्जन—जिधर तुम्हारी इच्छा हो—मैं तो तुम्हारे साथ हूँ, जहाँ चलोगे, चला चलूँगा।

जगदम्बा—अच्छा, यह बात है—जहाँ मैं चलूँ वहाँ चलोगे?

निरञ्जन—हाँ, चलूँगा।

जगदम्बा—देखो, कहीं बदल न जाना!

निरञ्जनलाल—क्या कहीं चोरी करने चलोगे या जुआ खेलने?

जगदम्बा—यह अच्छी कही!

निरञ्जन—कह तो तुम इसी ढङ्ग से रहे हो।

जगदम्बा—ऐसी जगह ले चलूँ कि तुम्हारा जी ख़ुश हो जाय।

निरञ्जनलाल—ऐसी जगह तो मैं चलना ही चाहता हूँ।

जगदम्बा—तो फिर आओ, मेरे साथ चुपचाप चले चलो।

२

जगदम्बाप्रसाद निरञ्जनलाल को लेकर चले। कुछ देर तक चलने के पश्चात् दोनों चौक में पहुँचे। चौक में

पहले तो जगदम्बाप्रसाद ने एक तम्बोली की दूकान पर पान खाए, इसके पश्चात् वह आगे बढ़े। निरञ्जनलाल ने पूछा—अब किधर चल रहे हो?

जगदम्बा ने कहा—चले आओ चुपचाप।

थोड़ी दूर बढ़ कर जगदम्बाप्रसाद एक वेश्या के कमरे के नीचे ठिठक गए और एक बार अपने चारों ओर देख कर ज़ीने की ओर बढ़े।

निरञ्जनलाल बोल उठे—अरे कहाँ चल रहे हो यार—कुछ होश में हो?

जगदम्बा—चले आओ चुपचाप।

निरञ्जनलाल—मैं तो नहीं आऊँगा।

जगदम्बाप्रसाद ठिठक गए और निरञ्जनलाल की ओर देख कर बोले—अजीब अहमक़ हो।

निरञ्जन—भाई, मैं वेश्या के कमरे में नहीं जाऊँगा।

जगदम्बा—अरे ज़रा देर तक गाना सुन कर चले आएँगे।

निरञ्जनलाल—मेरा चित्त नहीं चाहता।

जगदम्बा ने निरञ्जनलाल का हाथ पकड़ लिया और यह कहते हुए उन्हें घसीट ले गए—उल्लू हो, इससे तो लड़की ही हुए होते—किसी भले मानस का घर बसता।

निरञ्जनलाल कसर-मसर करते हुए ऊपर पहुँच गए। कमरा ख़ूब सजा हुआ था और बिजली के प्रकाश

से जगमगा रहा था। भूमि पर श्वेत फ़र्श बिछा हुआ था और दो-तीन गाव-तकिए रक्खे हुए थे। इन्हीं तकियों में से एक के सहारे एक युवती वेश्या पीले रङ्ग का दुशाला ओढ़े बैठी थी। उसके पास ही एक वृद्धा स्त्री पानदान सामने रक्खे बैठी थी। यह वृद्धा भी एक लाल रङ्ग का दुशाला ओढ़े थी।

जगदम्बाप्रसाद को देखते ही वेश्या ने मुस्करा कर कहा—आइए! आज तो बहुत दिनों में तशरीफ़ लाए।

जगदम्बाप्रसाद एक तकिए के सहारे निस्सङ्कोच-भाव से बैठ गए और मुस्करा कर बोले—हाँ, इधर ज़रा बाहर चला गया था।

निरञ्जनलाल बेचारे झेंपते हुए जगदम्बाप्रसाद की आड़ में दबक कर बैठ गए। वृद्धा बोल उठी—भगवान् जानता है, मैंने कई दफ़े आपको याद किया।

जगदम्बा—यह सब आपकी कृपा है।

वृद्धा मुस्करा कर बोली—मगर आपकी किरपा तो नहीं होती।

वेश्या बोल उठी—ग़रीबों पर बड़े आदमियों की किरपा कम हुआ करती है।

जगदम्बाप्रसाद ने हँस कर कहा—आप ग़रीब हैं?

वेश्या—आपके सामने तो ग़रीब ही हैं।

वृद्धा बोली—हम तो आपके भिक्षुक हैं, भिक्षुक सदा ग़रीब होते हैं।

वेश्या—बाबू जी के लिए पान बनाओ।

वृद्धा ने पानदान खोल कर पान बनाने आरम्भ किए।

निरञ्जनलाल चुपचाप बैठे कनखियों से वेश्या की ओर ताक रहे थे और उसके नख-शिख को भली-भाँति देख रहे थे। वेश्या ने भी यह ताड़ लिया कि निरञ्जनलाल उसकी ओर ध्यान से देख रहे हैं। अकस्मात् बातें करते-करते वह बोल उठी—"उफ़! आज तो बड़ी गर्मी है।" यह कह कर उसने दुशाला उतार डाला। दुशाला उतारते ही हिना के इत्र की सुगन्ध उड़ी। वेश्या का सिर भी खुल गया, जिससे उसकी लम्बी चोटी तथा परिष्कृत केशों की एक झलक मिल गई। अपनी ऊनी साड़ी से सिर ढँकते हुए वेश्या ने निरञ्जनलाल की ओर सङ्केत करके जगदम्बाप्रसाद से पूछा—आपकी तारीफ़?

जगदम्बा—आप मेरे दोस्त हैं, मेरे साथ चले आए।

वेश्या निरञ्जनलाल की ओर एक कटाक्ष-बाण छोड़ती हुई बोली—आप इतने दबके क्यों बैठे हैं? खुल कर बैठिए, कोई ग़ैर जगह थोड़ी ही है।

निरञ्जनलाल बोले—मैं बहुत अच्छी तरह बैठा हूँ।

जगदम्बा—इन्हें कुछ गाना-बाना सुनाओ तो इनकी तबीयत लगे।

वेश्या—गाना भी सुनाएँगे—जल्दी क्या है, अभी तो आकर बैठे ही हैं।

उसी समय वृद्धा ने तश्तरी में पान रख कर वेश्या की ओर तश्तरी खिसकाई। वेश्या ने उसे जगदम्बाप्रसाद की ओर बढ़ा दिया।

जगदम्बाप्रसाद ने दो पान उठा कर तश्तरी निरञ्जन-लाल की ओर की और कहा—लो, खाओ!

निरञ्जनलाल ने जगदम्बाप्रसाद की ओर एक रहस्य-पूर्ण दृष्टि से देखा। जगदम्बाप्रसाद बोले—कोई हर्ज नहीं—यह भी हिन्दू ही हैं। अभी तक आपको यही पता नहीं चला कि हिन्दू हैं या मुसलमान?

वेश्या बोल उठी—इसके लिए तो सिर्फ़ यही काफ़ी है।

यह कह कर उसने अपने ललाट की ओर उँगली उठाई। निरञ्जनलाल ने देखा—दोनों भृकुटी के मध्य में एक लाल बिन्दी लगी हुई है। निरञ्जनलाल ने चुपचाप पान खा लिए।

वेश्या जगदम्बाप्रसाद से बोली—बहुत सीधे आदमी मालूम होते हैं।

जगदम्बा—बहुत! कहीं जाते-वाते नहीं, मेरे साथ चले आए।

वेश्या—हमारी ख़ुशनसीबी थी, नहीं आपके दर्शन

भला काहे को नसीब होते ? कहिए सरकार, आपकी क्या ख़ातिर करें ?

निरञ्जनलाल ने कुछ उत्तर न दिया—किञ्चित् मुस्करा कर सिर झुका लिया।

जगदम्बाप्रसाद बोल उठे—इन्हें गाना सुनाओ।

वेश्या—आप वकालत मत कीजिए, इन्हीं को कहने दीजिए।

जगदम्बा—अच्छा भाई, तुम्हीं कह दो।

निरञ्जनलाल ने फिर भी कुछ न कहा, केवल मुस्कराते रहे।

वेश्या ने मुस्करा कर कहा—ऐ हुज़ूर, कुछ मुँह से बोलिए—सर से खेलिए। ऐसी शर्म तो औरतों को करनी चाहिए, आप तो ईश्वर की दया से मर्द-बच्चे हैं।

जगदम्बाप्रसाद निरञ्जनलाल का कन्धा झिंझोड़ कर बोले—बोलो यार, अजीब आदमी हो। ऐहै! ज़रा घूँघट की आड़ कर लो—सामने ग़ैर-मर्द बैठे हैं।

इस पर युवती तथा वृद्धा दोनों ने अट्टहास किया। वृद्धा बोल उठी—रहने दीजिए, दिक़ न कीजिए। आज पहला दिन है। धीरे-धीरे शर्म खुल जायगी।

जगदम्बाप्रसाद—क्यों हँसी कराते हो, औरतें तक तुम्हें बना रही हैं—छिः! छिः!

वृद्धा—कौन, हम ? राम! राम! हम बेचारी भला

इन्हें क्या बनाएँगी, आप लड़वाने की बातें करते हैं? बाबू जी, आप इनकी बातों में मत आइएगा—यह चट्टे-बट्टे बहुत लड़ाते रहते हैं।

जगदम्बाप्रसाद ने युवती की ओर आँख से इशारा किया। युवती मुस्करा कर यह कहती हुई उठी—"आप लोग सब बदतमीज़ हैं, आपसे हमारे बाबू जी नहीं बोलेंगे।" यह कहती हुई वह निरञ्जनलाल के पास पहुँची और उनके सामने बैठ कर बोली—क्यों सरकार, कुछ नाराज़ी है क्या?

निरञ्जनलाल सिटपिटा कर बोले—नहीं, नाराज़ी की कौन सी बात है?

युवती—तो फिर आप बात क्यों नहीं करते?

निरञ्जनलाल—क्या बातें करूँ, कोई बात भी तो हो!

युवती—अच्छा, फिर क्या हुक्म है—गाना सुनाऊँ?

निरञ्जनलाल—हाँ-हाँ, क्या हर्ज है?

युवती—बहुत खूब, अभी लीजिए। (जगदम्बा से) देखा, हमने बाबू जी से बात कर ली।

जगदम्बा—तुम्हीं अच्छी रहीं। ख़ैर, किसी तरह से बोले तो।

युवती—अम्माँ, उस्ताद जी को बुलवाओ।

वृद्धा ने आवाज़ दी—अरे दीना, देख ज़रा उस्ताद जी को बुला ला। कहना जल्दी चलो, मुजरा होगा।

इसके पश्चात् थोड़ी देर तक परस्पर हँसी-मज़ाक़ होता रहा। अब निरञ्जनलाल भी कुछ-कुछ बोलने लगे। थोड़ी देर पश्चात् उस्ताद जी अपने दो साथियों सहित आ गए। एक ने तबला सँभाला, दोनों सारङ्गी ठीक कीं और वेश्या ने बीच में बैठ कर गाना आरम्भ किया।

२

उपर्युक्त घटना हुए छः मास व्यतीत हो गए। एक दिन निरञ्जनलाल अपने बाहरी कमरे में बैठे हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे थे, उसी समय उनके सहपाठी तथा घनिष्ठ मित्र सुन्दरलाल आए।

निरञ्जनलाल उन्हें देखते ही मुस्करा कर बोले—ओहो सुन्दरलाल! आओ यार, बहुत दिनों में दिखाई पड़े—आजकल कहाँ रहते हो?

सुन्दरलाल कुर्सी पर बैठते हुए बोले—रहता तो यहीं हूँ; पर इधर आने का अवकाश नहीं मिलता। नौकरी में, तुम जानो, आदमी आदमी नहीं रहता—पशु हो जाता है।

निरञ्जनलाल गम्भीरतापूर्वक बोले—हाँ, यह तो ठीक ही है—घर में सब कुशल है?

सुन्दरलाल—सब ईश्वर की कृपा है। तुम तो आनन्दपूर्वक हो?

निरञ्जनलाल—हाँ, ईश्वर की दया है।

सुन्दरलाल—माता जी अच्छी तरह हैं?

निरञ्जनलाल—हाँ, अच्छी ही हैं। बुढ़ापे में मनुष्य जितना अच्छा रह सकता है, उतनी ही अच्छी वह भी हैं।

सुन्दरलाल—बहुत दिन से उनके दर्शन नहीं हुए।

निरञ्जनलाल—आज दर्शन कर लेना। वह भी कई बेर पूछ चुकी हैं।

सुन्दरलाल—क्या बताऊँ, इस नौकरी ने ऐसी बुरी तरह दबोचा है कि स्वतन्त्रता तो जैसे लोप-सी हो गई। आज भी न जाने कैसे समय निकाल कर आया हूँ—वह भी एक विशेष कारण से।

निरञ्जनलाल उत्सुक होकर बोले—वह क्या?

सुन्दरलाल—बुरा न मानना, मैंने सुना है कि तुम वेश्याओं के यहाँ आने-जाने लगे हो। क्या यह बात ठीक है?

निरञ्जनलाल किञ्चित् मुस्करा कर बोले—यह तुमसे किसने कहा?

सुन्दरलाल—किसी ने कहा हो, पर बात ठीक है या नहीं, यह बताओ?

निरञ्जनलाल—बिलकुल ग़लत।

सुन्दरलाल—इधर मुझसे आँख मिलाकर कहो।

निरञ्जनलाल—क्या ?

सुन्दरलाल—कि जो कुछ मैंने सुना है, वह ग़लत है।

निरञ्जनलाल हँस पड़े, बोले—आज तुम्हें हो क्या गया है ?

सुन्दरलाल—अपने एक प्यारे मित्र के अधःपतन का संवाद सुन कर एक सहृदय आदमी को जो होता है, वह मुझे भी हो गया है। निरञ्जनलाल, मैं फिर पूछता हूँ क्या यह सच है ?

निरञ्जनलाल ने सिर झुका लिया।

सुन्दरलाल—मालूम होता है जो कुछ मैंने सुना वह सच है।

निरञ्जनलाल निरुत्तर रहे।

सुन्दरलाल—उफ़ ! निरञ्जन, मुझे तुम्हारी ओर से यह आशा कभी न थी कि तुम ऐसा नीच कार्य करने का विचार भी करोगे। अभी साल भर हुआ, तुम्हारा विवाह हुआ है। तुम्हारी पत्नी तरुणी तथा सुन्दरी है। रत्न पास रखते हुए तुम काँच के टुकड़ों के लिए अपना जीवन नष्ट कर रहे हो। यदि तुम्हारी पत्नी यह सुनेगी, तो उसके हृदय पर क्या बीतेगी, यह भी तुम सोचते हो ?

इस बार निरञ्जन ने सिर उठाया और उत्तेजित होकर कहा—पत्नी ! पत्नी के हृदय पर क्या बीतेगी ? और यदि बीतेगी तो उसकी परवा कौन करता है।

सुन्दरलाल अवाक् हो गए, कुछ क्षणों तक निरञ्जन का मुख ताकते रहे। तत्पश्चात् बोले—निरञ्जन, यह तुम क्या कह रहे हो?

निरञ्जनलाल—मैं जो कुछ कह रहा हूँ, ठीक कह रहा हूँ।

सुन्दरलाल—मैंने तुम्हारा तात्पर्य नहीं समझा।

निरञ्जन—मेरा तात्पर्य यह है कि मेरी पत्नी इस योग्य नहीं है कि मैं उसकी भावना की चिन्ता करूँ।

सुन्दरलाल और भी अधिक विस्मित होकर बोले—क्यों?

निरञ्जन—जानना चाहते हो?

सुन्दरलाल—हाँ, जानना चाहता हूँ।

निरञ्जन—मेरी बात पर विश्वास करोगे?

सुन्दर—अवश्य!

निरञ्जन—मैं यह मानता हूँ कि मेरी पत्नी जवान है और सुन्दर है, परन्तु वह पति को प्रसन्न रखने की कला से सर्वथा अनभिज्ञ है।

सुन्दर—यह कैसे?

निरञ्जनलाल—तुम यह बात तो मानोगे ही कि कोई भी पुरुष केवल सौन्दर्य तथा तरुणावस्था से ही प्रसन्न नहीं हो सकता—इनके साथ ही साथ इस बात की भी आवश्यकता है कि वह पुरुष को अपनी ओर आकर्षित

करने में, पुरुष की रुचि पहचान कर उसकी रुचि के अनु-सार काम करने में भी प्रवीण हो। पुरुष यह चाहता है कि जिस स्त्री को वह प्यार करता है, वह उससे प्रेम से हँसकर बातचीत करे—इस प्रकार पहने-ओढ़े, जिससे वह उसकी ओर आकर्षित हो। स्त्री के लिए भी यही बात लागू होती है। पत्नी भी अपने पति से ऐसी ही आशा करती है; और करनी ही चाहिए, इसके बिना काम नहीं चलता। मेरी श्रीमती जी का यह हाल है कि न तो उन्हें पहनने-ओढ़ने का सलीक़ा है, न हँसने-बोलने का। गृहस्थों में पति-पत्नी का स्वतन्त्रता-पूर्वक सम्मिलन बहुधा रात ही को होता है। रात में ही वे एक स्थान पर स्वत-न्त्रता-पूर्वक बैठकर बातचीत कर सकते हैं, हँस-बोल सकते हैं, खेल-कूद सकते हैं। मेरी श्रीमती जी का हाल यह है कि जहाँ उन्होंने मेरे कमरे में पैर धरा, वहीं उन्हें नींद आ घेरती है। मेरी इच्छा तो यह होती है कि कुछ देर वार्त्तालाप हो, मैं उनकी बातें सुनूँ, वह मेरी बातें सुनें—हँसी-मज़ाक़ हो, इधर-उधर की गप-शप लड़े, परन्तु श्रीमती जी का हाल यह है कि वह आते ही पलँग पर पड़ रहीं और लगीं ख़र्राटे लेने—अब बताइए, इस बात से जी जले या न जले? इसके अतिरिक्त पहनने-ओढ़ने का सलीक़ा नहीं। मैं चाहता हूँ कि वह अमुक कपड़ा पहनें, अमुक गहना पहनें। श्रीमती जी को इससे कोई मतलब

नहीं—वह अपने मन के अनुसार पहनती-ओढ़ती है। पुरुष को जिस वेष में स्त्री अधिक सुन्दर दिखाई देगी, उसी वेष में वह उसे देखना चाहेगा। इन बातों का उन्हें कुछ ध्यान नहीं।

सुन्दरलाल बोल उठे—इसकी बात तो यह है कि कुछ मनुष्यों का स्वभाव बहुत सीधा-सादा होता है, उन्हें सादेपन के साथ रहना अधिक अच्छा लगता है—वे तड़क-भड़क तथा बनावट को पसन्द नहीं करते। इसके यह अर्थ तो नहीं निकलते कि वह तुम्हें प्रसन्न नहीं करना चाहती या तुमसे प्रेम नहीं करती।

निरञ्जन—यदि प्रेम करती है और मुझे प्रसन्न करना चाहती है, तो केवल मुझे प्रसन्न करने के ही लिए ऐसा करे। प्रेम सन्दूक के अन्दर बन्द करके रखने की वस्तु नहीं है, उसका प्रदर्शन भी होना चाहिए। घड़े के अन्दर धरे हुए जल से किसी की प्यास नहीं बुझती, प्यास तो तभी बुझेगी जब उसमें से पिलाया जायगा।

सुन्दरलाल—तो सम्भव है, उसे ये बातें मालूम न हों। क्षमा कीजिएगा, वह अपने बाप के घर से प्रेम-शास्त्र की परीक्षा पास करके नहीं आई है। यह तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम उसे ये बातें सिखाओ।

निरञ्जन—आप मुझे इतना अन्यायी समझते हैं कि मैं बिना ऐसा किए ही ये बातें कर रहा हूँ। मैंने एक

बार नहीं, पचासों बार कहा। कहने का मतलब यह है कि मैंने उसे सङ्केत द्वारा यह बता दिया कि मैं क्या चाहता हूँ।

सुन्दरलाल—सङ्केत द्वारा कैसे?

निरञ्जन—सङ्केत द्वारा यही है कि मैंने उस पर बातों-बातों में अपना अभिप्राय जता दिया—उदाहरणार्थ जब वह कोई वस्त्र पहनती है तो मैं अपनी रुचि-अनुसार कह देता हूँ कि यह तुम पर नहीं खिलता, तुम पर अमुक वस्त्र अधिक खिलता है। तुम अमुक वस्त्र में मुझे अधिक प्यारी लगती हो—इत्यादि। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है? इन बातों का "रिहर्सल" नहीं कराया जा सकता और न यह कहा जा सकता है कि "ऐसा करो, नहीं तो मैं तुमसे बात न करूँगा।" ऐसा कहने से यह सम्भव है कि वह फिर मेरी इच्छानुसार ही करे, परन्तु उसमें कुछ आनन्द नहीं रहता—उसमें प्रेम का अभाव हो जाता है। वह तो वैसी ही बात हो जाती है कि एक मालिक जो आज्ञा देता है नौकर उसके अनुसार काम कर देता है—बस ख़तम! ऐसे व्यवहार में कुछ जीवन नहीं होता। मेरा हृदय तो इस बात के लिए तरसता है कि वह अपनी प्रेम-शक्ति द्वारा मेरे मन की बात जान ले और वैसा ही करे। मुझे अपने आप किसी भी प्रकार प्रकट करने की आवश्यकता न रहे। तब तो परस्पर के प्रेम का आनन्द है,

अन्यथा फिर वही बात रह जाती है कि 'बाँह गहे की लाज है !'

सुन्दरलाल ने कुछ उत्तर न दिया, वह चुपचाप सिर झुका कर सोचने लगे। उन्हें निरञ्जनलाल की बातों में कुछ सार अवश्य दिखाई पड़ा।

निरञ्जनलाल पुनः बोले—न जाने कितने प्रकार के सुगन्धित तैल मैंने लाकर रख दिए हैं, पर श्रीमती जी को इतना अवकाश नहीं कि वह उनका व्यवहार करें। तैल लगाना तो एक किनारे रहा, दस-दस, बारह-बारह दिन तक सिर ही नहीं धोया जाता।

सुन्दरलाल—तुमने इस पर कुछ कहा नहीं ?

निरञ्जनलाल—मैंने कहा। इसका उत्तर यह मिला कि हम कुछ वेश्या नहीं हैं, जो रोज़ पटियाँ पाड़ें—जहाँ शाम हुई और कङ्घी-चोटी करने बैठ जायँ।

सुन्दरलाल—तुम्हारी पत्नी तो पढ़ी-लिखी है, फिर भी यह दशा ?

निरञ्जनलाल—पढ़ी-लिखी है, परन्तु सुशिक्षित नहीं है। इन बातों के लिए सुशिक्षा की आवश्यकता भी नहीं है—यह तो विद्या ही दूसरी है। सुशिक्षित स्त्रियों में भी यह दोष हो सकता है और होता है। विलायत में प्रतिवर्ष हज़ारों तलाक़ केवल इसीलिए होते हैं कि पत्नियाँ अपने पति को उचित रूप से प्रसन्न नहीं रख सकतीं। जिन

बातों की पुरुष अपनी पत्नी से आशा करता है, उन बातों को पत्नी व्यर्थ तथा निरर्थक समझती है।

सुन्दरलाल—ख़ैर, ये बातें तो मैंने तुम्हारी मान लीं, परन्तु मेरा तो प्रश्न यह है कि तुम वेश्याओं के यहाँ क्यों जाने लगे?

निरञ्जनलाल—इन्हीं बातों की तृष्णा मिटाने के लिए। क्षमा कीजिएगा, मैं कोई देवता नहीं हूँ, इन्द्रियजित नहीं हूँ, निस्पृह नहीं हूँ,—मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। अपने मन की अभिलाषाएँ पूरी करना चाहता हूँ, अपनी तृष्णा मिटाना चाहता हूँ। यह सब मैं चाहता हूँ। और उचित ढङ्ग से। परन्तु जब उचित ढङ्ग से न मिटी तो थोड़ा-सा अनुचित मार्ग ग्रहण करना पड़ा।

सुन्दरलाल—कदाचित् तुम यह नहीं जानते कि वेश्याओं का सब कुछ बनावटी होता है। उनका सौन्दर्य, उनका शृङ्गार, उनका हाव-भाव, उनका प्रेम—सब एक सिरे से बनावटी होता है।

निरञ्जनलाल—जानता हूँ, पर वह मेरी तृष्णा तो बुझा देता है! प्रेम का समुद्र भरा हो, तो वह मेरे किस काम का? जब मेरी तृष्णा बुझाने के लिए मुझे उसमें से एक बूँद भी नहीं मिलता तो मेरे लिए वह बनावटी से भी गया-बीता है। वेश्याएँ पुरुष को प्रसन्न करने की कला —इसी बल पर वह पुरुष को अपने वश में कर

लेती हैं। पुरुष यह जानते हुए भी कि यह सब बनावटी है, उन पर मुग्ध रहता है। क्यों? इसलिए कि उससे उसकी तृष्णा बुझती है। वेश्याएँ जिस बात में पुरुष की रुचि देखती हैं, वही करती हैं। उनका सौन्दर्य तथा प्रेम यद्यपि बनावटी है, परन्तु उसमें जीवन होता है, उसमें मुग्ध कर लेने की शक्ति होती है—वह मुर्दा नहीं होता। जब बनावटी प्रेम तथा सौन्दर्य इतना कर सकता है तो असली सौन्दर्य तथा प्रेम, यदि उसका सदुपयोग किया जाय, क्या कर सकता है—यह आप स्वयम् समझ सकते हैं।

सुन्दरलाल चुप हो गए। वह नहीं सोच सके कि इस समुचित तर्क का उत्तर क्या दिया जाय। अन्त में उन्होंने कहा—चाहे जो कुछ हो, वेश्याराधन बुरा ही है—अच्छा नहीं।

निरञ्जन—ठीक है, मैं मानता हूँ। परन्तु क्या करूँ, विवश हूँ। जब मेरी सन्तुष्टि हो जायगी, तब छोड़ दूँगा।

सुन्दरलाल—अच्छा, अब आज्ञा दो—चलूँगा। इस सम्बन्ध में मैंने कुछ करने के लिए सोचा है। यदि मेरी वह युक्ति काम कर गई तो फिर मैं तुमसे बात करूँगा।

निरञ्जनलाल मुस्करा कर बोले—अच्छी बात है—क्या करोगे?

सुन्दरलाल—इस समय नहीं बताऊँगा।

निरञ्जनलाल—ख़ैर, जाने दो। अब कब मिलोगे?

सुन्दरलाल—जब अवकाश मिलेगा।

यह कह कर सुन्दरलाल बिदा हुए।

४

उपरोक्त घटना के पश्चात् एक मास व्यतीत हो गया। रात के आठ बज चुके थे। निरञ्जनलाल अपने कमरे में बैठे हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। समाचार-पत्र पढ़ते जाते थे और क्लॉक की ओर देखते जाते थे। नौ बजे के लगभग उन्होंने समाचार-पत्र रख दिया और उठ कर कपड़े पहनने लगे। वह कपड़े पहन कर तैयार ही हुए थे कि कमरे का, अन्तःपुर की ओर का, द्वार खुला और उनकी पत्नी अन्दर आई। निरञ्जनलाल ने दृष्टि उठा कर देखा—उनकी पत्नी आज अपूर्व शृङ्गार किए थी। निरञ्जनलाल देख कर स्तब्ध-से होगए। पत्नी उनके सामने आई और मुस्करा कर बोली—कहाँ चले?

निरञ्जन—ज़रा टहलने के लिए जाता हूँ।

पत्नी—आजकल रोज़ टहलने जाते हो!

निरञ्जनलाल—हाँ, ज़रा अपच की शिकायत रहती है, इसलिए घण्टे दो घण्टे टहल आता हूँ।

पत्नी—आज मत जाओ।

निरञ्जन—क्यों ?

पत्नी—मेरी ऐसी ही इच्छा है।

निरञ्जन—थोड़ी देर टहल आऊँ।

पत्नी—मैं तो नहीं जाने दूँगी।

यह कह कर उसने निरञ्जनलाल के गले में बाँहें डाल दीं। इस व्यवहार से निरञ्जनलाल का बाहर जाने का सङ्कल्प निर्बल होगया। उन्होंने मुस्करा कर कहा—क्यों, आज कोई ख़ास बात है ?

पत्नी—हाँ, ख़ास बात है और वह केवल यही है कि मैं नहीं जाने दूँगी।

निरञ्जन—ऐसा नादिरी हुक्म ?

पत्नी—जो समझो—हुक्म समझो या प्रार्थना।

निरञ्जन—अच्छा, नहीं जायँगे।

यह कह कर निरञ्जनलाल वस्त्र उतारने लगे।

अख़्ख़ाह सुन्दरलाल ! बहुत दिनों बाद दर्शन दिए, कहाँ रहे ?

"भई अवकाश नहीं मिला। मुझे तो सारी शिकायत अवकाश की है। सब आनन्द ?"

"सब आपकी दया है।"

"कहो, क्या हाल-चाल है ?"

"हाल-चाल सब अच्छे हैं।"

"कहो, अब भी वेश्याराधन जारी है या नहीं ?"

"बिलकुल नहीं, सब छूट गया।"

सुन्दरलाल विस्मित-से होकर बोले—नाहीं !

निरञ्जनलाल दृढ़तापूर्वक बोले—सच।

सुन्दरलाल किञ्चित् मुस्करा कर बोले—चलो यह बड़ी ख़ुशी की बात सुनाई। जान पड़ता है, तुम्हें उनके बनावटी प्रेम से घृणा हो गई।

निरञ्जनलाल—हाँ, जब स्वच्छ और शीतल जल मिलने लगा तो गन्दे जल का बना हुआ शर्बत त्याग दिया।

सुन्दरलाल—इसका क्या तात्पर्य ?

निरञ्जनलाल—इसका तात्पर्य यह है कि मेरी पत्नी राह पर आ गई और अब जो सुख मुझे उसके पास बैठने में मिलता है, वह वेश्या के यहाँ नहीं मिलता।

सुन्दरलाल—अच्छा ! परन्तु यह परिवर्त्तन कैसे हुआ ?

निरञ्जनलाल—कदाचित् उसकी ओर से मेरी उदासीनता के कारण हुआ है। ख़ैर, किसी भी तरह हुआ हो, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं—हो गया, बस यही मेरे लिए यथेष्ट है।

सुन्दरलाल—अब तो तुम्हें उससे कोई शिकायत नहीं ?

निरञ्जन—कोई नहीं। मेरी उदासीनता ने इतना काम तो अच्छा ही किया।

सुन्दरलाल मुस्करा कर रह गए, कुछ उत्तर न दिया।

निरञ्जनलाल—क्यों भई, मुस्कराए क्यों?

सुन्दरलाल—बता ही दूँ। तुम्हारी उदासीनता से यह नहीं हुआ, तुम्हारी उदासीनता से तो मामला और भी बिगड़ चला था—तुम्हारी पत्नी और भी अधिक तुम्हारे प्रतिकूल हो गई थी।

निरञ्जनलाल—अच्छा!

सुन्दरलाल—जनाब! उस दिन मैंने तुमसे कहा था कि मैंने कुछ सोचा है।

निरञ्जनलाल—हाँ, कहा था।

सुन्दरलाल—जो कुछ मैंने सोचा था वह मैंने किया; और उसी का यह फल है।

निरञ्जनलाल—ओहो! तो यह आपकी कारगुज़ारी है?

सुन्दरलाल—निस्सन्देह!

निरञ्जन—अच्छा तुमने क्या किया, अब तो बता दो?

सुन्दरलाल—मैंने पन्द्रह-बीस दिन तक रोज़ अपनी पत्नी को तुम्हारी पत्नी के पास भेजा। मेरी पत्नी ने उसे ख़ूब समझाया-बुझाया, सब बातें बताईं, तब उसमें यह परिवर्त्तन हुआ है। अब समझे?

निरञ्जन—ख़ूब! तब तो भाई तुमने मेरे साथ बड़ा

उपकार किया। इसके लिए मैं तुम्हारा चिर-ऋणी रहूँगा।

सुन्दरलाल—इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं। जो मेरा कर्त्तव्य था वह मैंने पालन किया।

निरञ्जन—लेकिन ख़ूब सूझी, यह मानता हूँ। क्या कहूँ, मैं बड़ी मजबूरी से वेश्या के यहाँ जाता था।

सुन्दरलाल—इसके लिए मैं तुम्हें ज़रा भी दोष नहीं देता। मैं अब यह बात पूर्णतया मानता हूँ कि वेश्याराधकों में से अधिकांश ऐसे हैं, जो केवल इसलिए वेश्याराधन करने लगते हैं कि उनकी पत्नियाँ उन्हें प्रसन्न रखना और उनका चित्त बहलाना नहीं जानतीं।

निरञ्जन—बिलकुल सत्य है, इसका एक जीता-जागता प्रमाण तुम्हारे सामने मैं हूँ।

सुन्दरलाल—यदि उनके मित्रगण तथा नाते-रिश्तेदार उनकी पत्नियों को यह बतला दें और सिखा दें कि पति को कैसे प्रसन्न रक्खा जाता है, तो उनका वेश्याराधन सदैव के लिए छूट जाय।

निरञ्जनलाल हँस कर बोले—इसका जीता-जागता प्रमाण मेरे सामने तुम हो।

उद्धार

उद्धार

"बाबू जी, दो रुपए दे देते तो बड़ी दया होती।"

बाबू जी ने भृकुटी चढ़ा कर कहा—क्या करेगा दो रुपए—आठ दिन बाद तो तनख़्वाह ही मिलेगी।

"बाबू जी, कल सलोनो है, साल भर का त्योहार है—ख़र्च की ज़रूरत पड़ेगी।"

"तुम तो ब्राह्मण हो महाराज! तुम्हारा कल पैदा का दिन है कि ख़र्च का? ख़र्च का दिन तो हमारा है, पच्चीस-तीस के मत्थे जायगी—सलोनो आती है कि आफ़त। आगे जन्माष्टमी है। फिर दशहरा, फिर दीवाली। नाक में दम है। न जाने हिन्दुओं में इतने त्योहार किस अहमक़ ने बनाए!"

ब्राह्मण देवता बाबू जी की बातों पर ध्यान न देकर बोले—अरे बाबू जी, पैदा कहाँ! जो कुछ आप दे देंगे वही पैदा है। दो-एक जगह से चार-छः आने और मिल जायँगे। और वह तो कहीं शाम तक मिलेंगे—ख़र्च की ज़रूरत तो सवेरे से ही पड़ेगी।

"तो दो रुपए ख़र्च काहे में करोगे?"

"एक रुपया तो घर-गिरस्ती में लग जायगा। सिव-इयाँ बनेंगी—दूध आवेगा, सक्कर (शकर) आवेगी। और एक रुपया बहिन को देना पड़ेगा—वह कल राखी बाँधेगी।"

बाबू जी नाक पर से ऐनक उतार कर उसे धोती के छोर से पोंछते हुए बोले—बहिन? तुम्हारे कोई बहिन भी है क्या?

"हाँ, एक विधवा बहिन है। पारसाल विधवा हुई थी। दो महीने हुए उसकी ससुराल वालों ने यहाँ भेज दिया। अब वह यहीं रहेगी। ससुराल वाले अपने यहाँ रखने को राज़ी नहीं। यह ख़र्चा और बढ़ गया—ग़रीबी में आटा गीला। आपके यहाँ से पन्द्रह रुपए महीना मिलता है। उसमें हम चार प्राणियों का गुज़र ही कठिनता से होता था—अब यह बहिन और बढ़ गई। जब से यह आई तब से बड़ी तङ्गी रहने लगी है।"

बाबू जी पुनः ऐनक चढ़ाते हुए बोले—तो तुम उसे अपने यहाँ क्यों रखते हो, उसकी ससुराल क्यों नहीं भेज देते?

"जब वह अपने यहाँ रखने पर राज़ी ही नहीं होते तो कैसे भेज दूँ?"

"कोई बाल-बच्चा नहीं है क्या?"

"ऊँ-हूँ!"—महाराज ने सिर हिला कर उत्तर दिया।

"तभी ! बाल-बच्चा होता तो ज़रूर रखते।"

"तब तो झख मार कर रखना पड़ता।"

"तो उनसे उसके गुज़ारे के लिए कुछ महीना लेओ।"

"बाबू जी की बातें—कौन ससुरा महीना देता है ?"

"तो उसका विधवा-विवाह क्यों नहीं कर देते—अब तो विधवा-विवाह होने लगे हैं ?"

महाराज नेत्र विस्फारित करके बोले—अरे बाबू जी, ऐसा कहीं हो सकता है ?"

"क्यों ? हो क्यों नहीं सकता ?"

"नाम भी ले लूँ तो भाई-बिरादरी वाले लोटा भर पानी भी देना बन्द कर दें। हमारे यहाँ ऐसा काम कभी हुआ नहीं।"

"अरे यह सब कहने की बातें हैं।"

"कहने की बात नहीं बाबू जी, बिल्कुल सच बात है। हम लोगों में अभी विधवा-विवाह चालू नहीं हुआ है।"

"चालू कैसे हो ? कोई साहस करके आगे बढ़े तो चालू हो।"

"साहस कोई बड़ा आदमी ही कर सकता है। हम ग़रीब आदमी ऐसा साहस करें तो नक्कू बन जायँ।"

"तो उसका गुज़र कैसे चलेगा ?"

"क्या बतावें, भगवान् जाने आजकल ऐसी तङ्गी है कि क्या कहें।"

"अच्छा एक काम करो।"

"बताइए !"

"उसे विधवा-आश्रम में दाखिल करा दो।"

"वहाँ क्या होता है ?"

"वहाँ विधवाओं को बड़े आराम से रक्खा जाता है। उन्हें सीना-पिरोना सिखाया जाता है और खाना-कपड़ा दिया जाता है।"

"अच्छा !"

"हाँ, जब वह इस योग्य हो जाती हैं कि कुछ काम करके स्वयम् अपने लिए कुछ पैदा कर सकें तो उनसे काम लिया जाता है।"

"हाँ, सुना मैंने भी था; पर ठीक हाल मालूम नहीं था—यदि ऐसा हो तो बड़ा अच्छा है। परन्तु कोई खटके की बात न हो।"

"खटके की बात कुछ नहीं है। वहाँ सब तरह की हिफ़ाज़त रहती है। बाहर का कोई आदमी जाने नहीं पाता। औरतें ही औरतें रहती हैं। सब मिल-जुल कर पढ़ती-लिखती हैं। काम सीखती हैं। विधवा-आश्रम केवल विधवाओं के उपकार के लिए खोला गया है।"

"उसका ख़र्च कहाँ से चलता है ?"

"कुछ तो दान और चन्दे से चलता है और कुछ स्त्रियाँ स्वयम् जो काम करती हैं उसकी आमदनी से।"

"ऐसा है तब तो बड़ा अच्छा है।"

"ऐसा ही है। तुम उसमें अपनी बहिन को भर्ती करा दो। वहाँ बड़े आराम से रहेगी और सिलाई-विलाई का काम सीख कर चार पैसे कमाने के लायक़ हो जायगी।"

"तो बाबू जी, मैं तो जानता नहीं कि कैसे क्या होता है।"

"उसका सब प्रबन्ध हम कर देंगे। विधवा-आश्रम के मैनेजर हमारे मिलने वाले हैं, हम उनसे कह देंगे तो सब ठीक हो जायगा।"

"अच्छी बात है, बहिन से पूछूँगा, जो वह राज़ी होगी तो भर्ती करा दूँगा।"

"राज़ी कैसे नहीं होगी, आख़िर तुम उसका पालन-पोषण कहाँ से करोगे?"

"यही तो मैं भी सोचता हूँ बाबू जी, दो-चार महीने की बात होती तो झेल ले जाता, परन्तु सदा के लिए इतना बोझा नहीं उठाया जा सकता।"

"बिल्कुल ठीक बात है। तुम पन्द्रह रुपए में क्या-क्या करोगे। इसीलिए तो कहता हूँ कि उसे विधवा-आश्रम में भेज दो। वह चाहे राज़ी हो, चाहे नाराज़। पहले चाहे नाराज़ भी हो, परन्तु जहाँ दो-चार दिन वहाँ रही और वहाँ उसका जी लग गया, फिर वह तुम्हें आशीर्वाद देगी। वहाँ के जैसा आराम उसे तुम्हारे यहाँ

कहाँ मिल सकता है? खाने का आराम, कपड़े का आराम, खेलने-कूदने को दस हमजोलियाँ। इससे अधिक और क्या चाहिए?"

"अच्छी बात है, बाबू जी, मैं ज़रूर उसे वहाँ भर्ती करा दूँगा।"

"तो जब इच्छा हो मुझसे कहना, मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा।"—यह कह कर बाबू जी उठ कर कमरे के भीतर जाने लगे। ब्राह्मण देवता दाँत निकाल कर बोले—बाबू जी, रुपए मिल जाते तो बड़ी दया होती।

"ओहो! रुपए देना तो भूल ही गया।"—इतना कह कर बाबू जी ठिठक गए। उन्होंने टेंट में से दो रुपए निकाल कर महाराज के हाथ पर धर दिए और भीतर चले गए। महाराज रुपयों को उँगलियों से बजाते हुए दूसरी ओर चले।

२

यज्ञदत्त एक ग़रीब ब्राह्मण हैं। उनके परिवार में इस समय पाँच प्राणी हैं। एक तो वह स्वयम्, उनकी पत्नी, वृद्धा माता, एक अष्ट वर्षीय पुत्र तथा एक उन्नीस-बीस वर्ष की विधवा भगिनी है। यज्ञदत्त बाबू परमेश्वरीदास वकील के यहाँ पन्द्रह रुपए मासिक वेतन पर नौकरी करते हैं—बस यही उनकी जीविका है।

श्रावणी के दो दिन पश्चात् रात में यज्ञदत्त अपनी पत्नी से बोले—क्या कहें, रामदेई के आ जाने से एक आदमी का ख़र्च बढ़ गया।

पत्नी बोली—सो तो बढ़ ही गया है। उसकी ससुराल वाले निगोड़े तो अब उसे बुलावेंगे नहीं।

"वह तो साफ़-साफ़ कह गए हैं कि अब नहीं बुलावेंगे।"

"काहे को बुलावेंगे—अब उन्हें कौन ग़रज़ है।"

"एक सलाह बताओ।"

"पूछो!"

"रामदेई को विधवा-आश्रम में भर्ती करा दें तो कैसा?"

"वहाँ क्या होता है?"

यज्ञदत्त ने जो कुछ वकील साहब से सुना था, वह सब बता दिया। सब सुन कर उनकी पत्नी बोली—ऐसा हो तब तो बड़ा अच्छा है।"

"ऐसा ही है।"

"यह तो बड़ा पुन्न का काम होता है।"

"आजकल लोग विधवाओं के उद्धार का बड़ा ध्यान रखते हैं। इसीलिए ये विधवा-आश्रम खोले गए हैं।"

"तो रामदेई को वहीं भेज दो। वहाँ रहेगी और कुछ काम-काज सीख जायगी।"

"यही तो मैं भी सोचता हूँ। वहाँ रह कर सिलाई-बिलाई का काम सीख गई तो फिर किसी की मोहताज तो न रहेगी।"

"ठीक है।"

"अच्छी बात है, तुमने सलाह दे दी। अब मैं उसे भेज दूँगा।"

"माता जी से भी सलाह ले लो।"

"वह तो यही कह देंगी कि तुम जो ठीक समझो, करो।"

"हाँ, कह तो यही देंगी।"

"तो फिर सलाह लेने की कौन ज़रूरत है?"

"आख़िर उन्हें सूचना तो देनी ही पड़ेगी।"

"हाँ, सो वह सब हो जायगा। अलबत्ता रामदेई से पूछना पड़ेगा कि वह जाने पर राज़ी है या नहीं?"

"उस बेचारी को क्या? जहाँ भेज देओगे, चली जायगी।"

यज्ञदत्त एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोले—क्या कहें, बेचारी पर ऐसी गाज गिरी। भगवान् ही को यह मञ्ज़ूर था।

"हाँ और क्या, यह तो बनी-बनाई बात है।"

"सवेरे रामदेई से पूछ कर देख लेना कि वह क्या कहती है।"

"अच्छी बात है।"

दूसरे दिन यज्ञदत्त ने वकील साहब से कहा—बाबू जी, आपने मेरी बहिन को विधवा-आश्रम भिजवाने के लिए कहा था।

वकील साहब बोले—हाँ-हाँ।

"तो फिर अब उसका इन्तज़ाम करा दीजिए।"

"तुम्हारी बहिन राज़ी हो गई?"

"राज़ी न होगी तो करेगी क्या? यहाँ खाने का ठिकाना भी तो नहीं है।"

वकील साहब ने एक पत्र लिख कर यज्ञदत्त को दिया और कहा—यह पत्र ले जाओ, मैनेजर को दे देना।

"वह कहाँ रहते हैं?"

वकील साहब ने पता बता दिया। यज्ञदत्त पत्र लेकर मैनेजर के पास पहुँचा। एक छोटे से कमरे में एक मेज़ लगी थी—मेज़ के चारों ओर चार-पाँच कुर्सियाँ धरी थीं।

मैनेजर साहब अर्द्धवयस्क आदमी थे। नीचे से ऊपर तक खद्दर धारण किए गम्भीरता की मूर्त्ति बने बैठे थे। यज्ञदत्त ने उन्हें सलाम करके पत्र दिया। मैनेजर साहब ने पत्र पढ़ा। पढ़ कर यज्ञदत्त से बोले—तुम्हारी बहिन है?

यज्ञदत्त दीन-भाव से बोला—हाँ सरकार!

"उम्र क्या होगी ?"

"यही कोई उन्नीस-बीस बरस की है।"

"हूँ। कुछ सिलाई-बिनाई का काम भी जानती है ?"

"सो तो नहीं जानती। वकील साहब कहते थे कि आपके यहाँ सब सिखाया जाता है।"

"हाँ, सिखाया जाता है। मैंने इसलिए पूछा कि यदि सीखी-सिखाई होती तो आश्रम को कुछ सहायता मिलती।"

यज्ञदत्त दाँत निकाल कर बोला—अजी इस योग्य वह कहाँ है।

मैनेजर ने कहा—अच्छी बात है। हम उसे विधवा-आश्रम में ले लेंगे।

"तो मैं कब लाऊँ ?"

"जब तुम्हारी इच्छा हो।"

"तो कल किसी समय ले आऊँगा।"

"कल ले आओ, चाहे आज ले आओ।"

"आज शाम को ले आऊँ ?"

"आज ही ले आओ।"

"अच्छी बात है, आज ही ले आऊँगा।"

शाम को यज्ञदत्त अपनी भगिनी को साथ लेकर मैनेजर के पास पहुँचे। मैनेजर ने एक बार रामदेई को सिर से पैर तक देखा। रामदेई रूपवती थी। मैनेजर के मुख पर सन्तोष तथा प्रसन्नता के चिन्ह प्रस्फुटित हुए। परन्तु

दूसरे ही क्षण वह पुनः गम्भीर हो गया। उसने पहले तो एक छपा हुआ फ़ार्म उठा कर उसमें रामदेई का नाम, पिता का नाम इत्यादि अनेक बातें यज्ञदत्त से पूछ-पूछ कर लिखीं, तत्पश्चात् यज्ञदत्त से उस पर हस्ताक्षर कराए। इसके उपरान्त उसने मेज़ पर रक्खी हुई घण्टी बजाई। कमरे की बग़ल में एक द्वार था। उस द्वार से एक अर्द्ध-वयस्क स्त्री निकल कर कमरे में आई। यह स्त्री भी खद्दर-धारिणी थी और आँखों पर ऐनक चढ़ाए थी।

मैनेजर ने उससे कहा—"इन्हें ले जाओ।" यह कह कर उसने रामदेई की ओर इशारा किया।

उस स्त्री ने रामदेई की ओर देख कर बड़े स्नेहपूर्वक कहा—आओ बेटी, चलो।

रामदेई यज्ञदत्त को अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखती हुई बोली—भइया, मेरी खोज-ख़बर लेते रहना, भूल न जाना।

यज्ञदत्त के नेत्रों में भी आँसू आगए। उसने आँखें पोंछते हुए कहा—हाँ, हाँ, मैं आता रहूँगा।

स्त्री ने बड़े ही मृदु स्वर में कहा—बेटी घबराओ नहीं, यहाँ तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा—बड़े आराम से रहोगी। तुम्हारे भाई जी भी तुमसे मिलते-जुलते रहेंगे।

यज्ञदत्त ने मैनेजर से पूछा—बाबू जी, कभी-कभी यह घर भी जा सकेगी?

मैनेजर साहब भृकुटी चढ़ा कर बोले—नियम तो यह

है कि जो यहाँ एक बार प्रविष्ट हो गई, वह जब तक आश्रम को बिलकुल छोड़ना न चाहे तब तक बाहर नहीं जा सकती, आप लोग यहीं आकर मिल-जुल सकते हैं।

"अच्छा, तो मैं यहीं आ जाया करूँगा। मैंने इसलिए पूछा था कि कभी किसी त्योहार पर एकाध दिन के लिए घर हो आती।"

"इसका वादा हम नहीं कर सकते—जैसा मौक़ा होगा। यदि इनका व्यवहार यहाँ अच्छा रहा और हमको इन पर इतमीनान रहा तो इजाज़त दे दी जायगी।"

"अच्छी बात है।"

रामदेई अश्रुपूर्ण नेत्रों से भाई को देखती हुई स्त्री के साथ चली।

हठात् यज्ञदत्त बोल उठा—अरे यह गठरी तो लेती जा।

मैनेजर ने पूछा—इस गठरी में क्या है?

"इसके कपड़े हैं।"

रामदेई ने गठरी हाथ में ले ली और द्वार के भीतर जाकर अदृश्य हो गई।

३

रामदेई के आश्रम में प्रविष्ट होने के दो दिन पश्चात् रात में नौ बजे के लगभग मैनेजर साहब अपने दफ़्तर में बैठे हुए कुछ चिट्ठी-पत्री देख रहे थे। इसी समय एक

व्यक्ति दफ़्तर में प्रविष्ट हुआ। उसने मुस्कराते हुए मैने-जर से पूछा—कहिए, क्या हो रहा है?

मैनेजर साहब हँस कर बोले—आइए इन्सपेक्टर साहब—मिज़ाज अच्छे हैं?

"आपकी दुआ है"—कहते हुए इन्सपेक्टर साहब एक कुर्सी पर बैठ गए।

"कहिए, कहाँ से आ रहे हैं?"—मैनेजर ने पूछा।

"घर से आ रहा हूँ। खाना खाकर उठा था, जी में आया कि आपकी तरफ़ चलूँ। क्या हाल-चाल है?"

"अच्छे हाल-चाल हैं।"

"कोई नया पञ्छी आया है?"

मैनेजर साहब मुस्करा कर बोले—यह तो चमन है, यहाँ पक्षी आते-जाते रहते ही हैं।"

"तो यह बुलबुले-शैदा भी हाज़िर है—इस पर भी नज़रे-इनायत होजाय।"

मैनेजर साहब ने इन्सपेक्टर की आँखों को देखते हुए कहा—इस समय रङ्ग में हो!

"और क्या, अब इस वक़् भी किसी के बाप का इजारा है?"

"इस वक़् क्या, किसी वक़् भी किसी के बाप का इजारा नहीं है।"

सो बात नहीं है। ड्यूटी पर तो मैं कभी पीता नहीं।

कोई आला अफ़सर ताड़ जाय तो अमालनामा ख़राब हो जायगा।"

"ड्यूटी पर पीने की आवश्यकता ही क्या है?"

"यही तो बात है। इसका लुत्फ़ तो इसी वक़् है। इस वक़् कोई खटका नहीं, फ़िक्र नहीं।"

"इसमें क्या सन्देह है।"

थोड़ी देर तक दोनों चुप बैठे रहे। हठात् इन्सपेक्टर साहब बोल उठे—तो फिर क्या हुक्म है—कुछ इनायत होगी?

"आप भी क्या बातें करते हैं! इनायत आपकी या हमारी?"

"इस वक़् तो आपकी ही इनायत होनी चाहिए।"

"अभी तो आप चले ही आ रहे हैं, ज़रा देर दम ले लीजिए।"

"उम्मीद दिलाओ तो जितनी देर कहो दम ले लूँ। और अगर ख़ाली दम ही देते हो तो सलाम—बन्दा रुख़-सत होता है।"

मैनेजर साहब हँस के बोले—क्या कही है?

"मैंने तो जो कहना था सब कह दिया, अब आप कहिए क्या कहते हैं?"

"अरे यार, बैठो भी—तुम तो घोड़े पर सवार होकर आए हो।"

"ख़ैर अब बैठूँगा—आपकी निगाहों में मेरी उम्मीद पूरी होने की अदा दिखाई पड़ रही है।"

"अच्छा बैठो, अभी आता हूँ।"—यह कह कर मैनेजर साहब भीतर पहुँचे। एक कमरे में वही खद्दरधारिणी स्त्री बैठी हुई थी, उसके हाथ में एक पुस्तक थी। पुस्तक को वह उच्च स्वर में पढ़ रही थी।उसके पास रामदेई तथा अन्य दो युवतियाँ बैठी हुई थीं।

मैनेजर ने उसे अलग बुला कर कहा—वह हरामज़ादा इन्सपेक्टर आया है। शराब पिए हुए है।

"तो फिर?"—स्त्री ने सशङ्कित होकर पूछा।

"रामदेई को छिपा दो—उस पर उसकी नज़र पड़ गई तो ठीक न होगा। और कल जो दो औरतें आई हैं, उन्हें भी छिपा दो।"

"और?"

"अब और क्या—बाक़ी को रहने दो। वे सब तो राह पर लग गई हैं।"—इतना कह कर मैनेजर साहब दफ़्तर में लौट आए। इन्सपेक्टर साहब बोले—कहो दोस्त, क्या ख़बर लाए? यार अच्छी ख़बर सुनाना, कहीं कोई मनहूस बात न बक उठना।

मैनेजर साहब मुस्कराते हुए बोले—ठहरिए, ज़रा छुरी तले दम लीजिए।

"हाँ, मगर गले पर छुरी न फेर देना।"

थोड़ी देर तक इन्सपेक्टर साहब और मैनेजर साहब में इसी प्रकार की बातें होती रहीं। इसके पश्चात् मैनेजर साहब उठे और इन्सपेक्टर से बोले—चलिए, भीतर चलें।

इन्सपेक्टर प्रसन्न-मुख होकर उठ खड़ा हुआ।

४

"शाम के पाँच बज चुके थे। इसी समय एक व्यक्ति मैनेजर के पास आया। मैनेजर ने उसे देखते ही पूछा—कहो, क्या समाचार है?

वह व्यक्ति बोला—एक आदमी एक स्त्री ख़रीदना चाहता है।

"कौन है, कहाँ का रहने वाला है?"

"इधर पञ्जाब की तरफ़ का है।"

"सो तो होगा ही—पञ्जाब तो स्त्रियों का बाज़ार ही है।"

"तो हुक्म हो तो उसे लाऊँ?"

"हाँ-हाँ, ले आओ।"

वह व्यक्ति चला गया और आध घण्टा पश्चात् एक पञ्जाबी को साथ लिए हुए लौटा। मैनेजर ने पहले उससे शिष्टाचार की बातें करके पूछा—कहिए, क्या हुक्म है?

पञ्जाबी ने कहा—एक औरत चाहिए—जवान हो और सूरत-शक्ल की अच्छी हो।

मैनेजर ने कहा—आप देख लीजिए—जो आपको पसन्द हो, वह ले लीजिए।

"अच्छा दिखाइए!"

"दिखाने की फ़ीस तो आपको मालूम होगी?"

वह व्यक्ति, जो पञ्जाबी को लाया था, बोल उठा—मैंने इनसे कह दिया था कि दिखाने की फ़ीस एक रुपया लगती है।

पञ्जाबी ने जेब से एक रुपया निकाल कर मैनेजर के सामने रख दिया। मैनेजर ने कहा—माफ़ कीजिएगा, यह क़ायदा इसलिए रक्खा गया है कि बहुत से आदमी सिर्फ़ औरतें देखने के लिए आते हैं और कहते यह हैं कि हमें विवाह करना है—वह करना है, यह करना है।

पञ्जाबी बोल उठा—ठीक है, ऐसा क़ायदा होना ही चाहिए।

मैनेजर पञ्जाबी को भीतर एक कमरे में ले गया। पञ्जाबी को कमरे में बैठा कर मैनेजर थोड़ी देर के लिए एक ओर चला गया और फिर लौट आया। लगभग पन्द्रह मिनिट के पश्चात् वही खद्दरधारिणी स्त्री छः-सात युवतियों को साथ में लिए हुए उस कमरे में आई। युवतियाँ सब क़तार बाँध कर खड़ी हो गईं। पञ्जाबी ने

सबको ध्यानपूर्वक देखा। देख कर उसने एक युवती की ओर उँगली उठाई। मैनेजर ने कहा—"अच्छा, अब दफ़्तर में चलिए!" दोनों दफ़्तर में आगए। मैनेजर ने कहा—अब बताइए, आप क्या देंगे?

पञ्जाबी बोला—आप बताइए, आपका माल है।

मैनेजर कुछ क्षणों तक सोच कर बोला—तीन सौ रुपए होंगे और पच्चीस रुपए दान के।

"तीन सौ रुपए बहुत हैं—और यह दान के पच्चीस कैसे?"

"बात यह है कि हम अपने रजिस्टर में यह दिखाएँगे कि उसका विवाह कर दिया गया और विवाह में आश्रम को पच्चीस रुपए दान-स्वरूप मिले।"

पञ्जाबी मुस्करा कर बोला—अच्छा, यह बात है!

"और क्या, ऐसा न करें तो भण्डाफोड़ न हो जाय।"

"मैं समझ गया। ख़ैर, वह पच्चीस तो मैं दे दूँगा—मगर तीन सौ बहुत हैं।"

"आप बताइए, आप क्या देंगे?"

"मैं तो डेढ़ सौ दूँगा।"

"डेढ़ सौ में तो नहीं होगा।"

इसी प्रकार दोनों में बड़ी देर तक बातचीत होती रही। अन्त में दो सौ पर मामला तय हुआ।

मैनेजर ने कहा—अच्छा, आप रात में आकर ले जाइएगा—रुपए लेते आइएगा।

पञ्जाबी स्वीकार करके चला गया।

पञ्जाबी के चले जाने के पश्चात् वह व्यक्ति, जो पञ्जाबी को साथ लाया था, बोला—लाइए, मेरा कमीशन दिलवाइए।

"पहले रुपए तो मिल जाने दो।"

"वह तो मिल ही जायँगे।"

"यह बात ग़लत है। जब रुपए हमारे हाथ में आ जायँ और वह औरत सकुशल चली जाय तब ले लेना।"

"अच्छी बात है—तभी सही।"

मैनेजर ने कहा—इधर तुम कोई औरत नहीं लाए।

"तलाश में हूँ, मिल गई तो ले आऊँगा।"

"स्टेशन पर जाया करो, वहाँ बहुधा भूली-भटकी आ जाती हैं। अच्छा जाओ, कल मिलना।"

उस व्यक्ति को विदा करके मैनेजर भीतर पहुँचा और अपनी परिचारिका से बोला—उसे तैयार रखना।

"वह तो अभी से तैयार बैठी है।"

"तब ठीक है। हाँ, वह रामदेई रास्ते पर आई कि नहीं?"

"अभी तो नहीं आई। कल मैंने उससे पूछा था कि यदि तुम विवाह करना चाहो तो तुम्हारा विवाह करा दें,

पर वह राज़ी नहीं होती। जान पड़ता है, अपने भाई के भय से राज़ी नहीं होती।"

"यदि वह राज़ी हो जाय तो अच्छी रक़म मिले।"

"हाँ, यह बात तो पक्की है।"

"चेष्टा किए जाओ।"

"सो तो कर रही हूँ।"

"अभी वह 'पास' तक तो हुई नहीं।"

"पास हो जाय तब तो सब काम ही न बन जाय।"

"वैसे तो वह ज़बरदस्ती पास हो जाती, परन्तु वह इसी शहर की रहने वाली है—उसका भाई उससे मिलने-जुलने आता रहेगा, और वह वकील साहब की मार्फ़त आई है—यही खटके की बात है।"

"हाँ और क्या। परन्तु यदि राह पर न आई तो?"

"तो दो-एक महीने में कोई तोहमत लगा कर निकाल बाहर करेंगे। यहाँ मुफ़्त की रोटियाँ तोड़ने के लिए थोड़े ही रक्खी हैं। परन्तु राह पर आवेगी क्यों नहीं? अपनी दो-एक चेलियों को लगा दो, वे उसे पढ़ा-पढ़ा कर ठीक करें।"

"सो तो कर रही हूँ। दो चेलियों को उसके साथ कर दिया है। वे उसी के पास रहती हैं। रात में भी उसी के कमरे में सोती हैं।"

"तो बस ठीक है!"

५

रात के दस बज चुके हैं। रामदेई अपने कमरे में चारपाई पर लेटी है। उसके पास ही दूसरी चारपाई पर एक अन्य स्त्री लेटी है। दोनों में परस्पर वार्त्तालाप हो रहा है। दूसरी स्त्री रामदेई से कह रही है—बहिन, तुम यहाँ नाहक़ आईं। जब तुम्हारा भाई मौजूद है, तब तुम्हें यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी?

रामदेई ने कहा—यहाँ काम सीखने आई थी।

"यहाँ काम सीखोगी? यहाँ जो काम सिखाया जाता है, वह तुम कर सकोगी?"

"यहाँ ऐसा कौन काम सिखाया जाता है, जिसे मैं न कर सकूँगी?

"यहाँ! बताऊँ? यहाँ सिखाया जाता है व्यभिचार, दग़ाबाज़ी। यह जो भगवती है न—यह तीन दफ़े बेची जा चुकी है। जहाँ जाती है वहाँ से महीने दो महीने के पश्चात् भाग आती है। इस प्रकार यह तीन दफ़े बेची जा चुकी है और तीनों दफ़े भाग आई है। इसी वास्ते इसका इतना मान है।"

"जब ऐसी बात है तो तुम यहाँ क्यों रहती हो?"

"रहूँ न तो जाऊँ कहाँ? कहीं ठिकाना भी है। तुम्हारा ठिकाना है इससे तुमसे कहती हूँ। मेरा कहीं ठिकाना हो

तो मैं एक छिन भी यहाँ न रहूँ। यहाँ सब कर्म होते हैं। पुलिस वाले यहाँ आते हैं; मैनेजर के दोस्त लोग अलग आते हैं, और जो लोग मैनेजर को रुपए दे सकते हैं, वे अलग आते हैं।"

"तो आते हैं तो क्या हुआ?"—रामदेई ने भोलेपन के साथ कहा।

वह स्त्री हँस कर बोली—तुम इतनी भोली हो! यहाँ वे आते हैं बुरा काम करने के लिए।

"अच्छा!"

"हाँ! दो-तीन आदमी और दो-तीन स्त्रियाँ ऐसी हैं जो इधर-उधर से स्त्रियों को बहका कर लाती हैं। यहाँ आने पर पहले उन्हें पास किया जाता है, फिर गाहक लगने पर बेच दिया जाता है और कहा यह जाता है कि ब्याह कर दिया गया।"

"पास करना किसे कहते हैं।"

"जो स्त्री पर-पुरुष से व्यभिचार करने पर राज़ी हो जाती है, वह स्त्री पास हो जाती है, फिर उसकी ओर से कोई खटका नहीं रहता।"

रामदेई ने अत्यन्त भयभीत होकर कहा—क्या यह बात है?

"हाँ, यह बात है। मुझे तुमसे प्रेम होगया है, इससे

ये बातें बताती हूँ। जो मैनेजर या देवी जी सुन पावें तो मेरी खाल उड़ा दें।"

"यह देवी जी मैनेजर साहब की कौन हैं?"

"यह उनकी सब कुछ हैं। नाम की देवी जी हैं—नहीं तो इनसे कोई कर्म बचा नहीं है।"

"तब तो यहाँ बड़ा पाप होता है। बाहर वाले तो समझते हैं कि यहाँ बड़ा उपकार का काम होता है।"

"दूर के ढोल सुहावने होते ही हैं, भीतर का हाल कौन जानता है?"

"परन्तु मुझसे तो ये लोग बड़ा अच्छा व्यवहार करते हैं।"

"तुम इसी शहर की हो, तुम्हारा भाई है। इससे डरते हैं कि कहीं भेद न खुल जाय। तुमसे जो कराया जायगा, तुम्हारी राज़ी से—तुमसे ज़बरदस्ती कोई काम नहीं करा सकते।"

"तो क्या ज़बरदस्ती भी की जाती है?"

"ज़बरदस्ती! लावारिस औरतों को यहाँ बेतों से मार-मार कर ठीक किया जाता है।"

"हे भगवान्!"—रामदेई ने काँप कर कहा।

"यह जो भगवती है न, जब यह आई थी तो पहले इसने भी बड़े नख़रे किए थे, परन्तु जब इस पर मार पड़ने लगी तब ठीक हो गई। और अब तो यह यहाँ की

मुखिया सी बनी बैठी है। नई औरतें जो आती हैं उन्हें यही ठीक करती है।"

"और तुम? तुम अपना हाल तो कहो!"

उसने एक दीर्घ-निश्वास छोड़ कर कहा—मैं भी वैसी ही हूँ। मुझ पर भी सब बीत चुकी है। अब मैं भी पक्की हो गई। मैनेजर और देवी जी का मुझ पर बड़ा विश्वास है। भगवती और मैं तुम्हें ठीक करने पर तैनात की गई हैं।"

"अच्छा!"

"हाँ, इसीलिए तो हम तुम्हारे कमरे में रक्खी गई हैं।"

"ओहो, अब मैं समझी—तभी भगवती मुझे विवाह करने के लिए कहा करती है। और न जाने किन-किन पुरुषों की तारीफ़ करती रहती है कि वह बड़ा सुन्दर है, बड़ा मालदार है। और भगवान् जाने क्या-क्या कहा करती है। जब ऐसी बात है तो तुम्हें यहाँ न रहना चाहिए।"

"रहें न तो जायँ कहाँ? और अब तो बहिन, हमारे सब कर्म हो चुके—अब हमारे लिए तो यहीं स्वर्ग-नरक है।"

"तुम्हें और भगवती को अभी तक क्यों नहीं बेचा?"

"मैंने बताया न कि भगवती को तीन बेर बेचा, पर वह तीनों बेर भाग कर यहीं आगई।"

"क्यों ?"

"उसको सिखाया यही गया है। इसीलिए तो उसका इतना विश्वास और आदर है।"

"और तुम्हें नहीं बेचा ?"

"एक विश्वास की स्त्री यहाँ भी तो चाहिए, इसी-लिए नहीं बेचते। मैं तो भगवान् से चाहती हूँ कि मुझे बेच दें—यहाँ से पिण्ड तो छुटे।"

"और यहाँ क्या-क्या होता है ?"

"अब सब तो बता चुकी। हाँ, गर्भ यहाँ गिराए जाते हैं। कुछ रुपए देकर यहाँ कोई भी स्त्री आकर गर्भ गिरवा सकती है।"

"राम! राम!! यहाँ तो बड़ा पाप होता है। मैं तो बहिन, चाहे भीख माँग खाऊँ; पर यहाँ न रहूँगी।"

इसी समय भगवती आगई। अतएव उनका वार्त्तालाप समाप्त हो गया।

रामदेई विधवा-आश्रम से विदा हो रही थी। उसका भाई उससे मिलने आया था। उससे उसने सब वृत्तान्त कह कर आश्रम में रहना अस्वीकार किया। यज्ञदत्त ने भी उसे वहाँ रखना अनुचित समझा।

चलते समय रामदेई शिवदुलारी को, जिसने उसे सब बातें बताई थीं, अलग ले जाकर बोली—बहिन, तुमने मेरा

बड़ा उपकार किया, मैं तुम्हारा यह एहसान जन्म भर न भूलूँगी। और यदि भगवान् ने मुझे कभी इस योग्य बनाया तो मैं तुम्हें यहाँ से निकाल लूँगी।

वह बोली—मुझे भी इस बात की बड़ी ख़ुशी है कि कम से कम एक काम तो मैंने अच्छा किया—मेरे जीवन में केवल एक यही बात ऐसी है जिससे यह आशा होती है कि कदाचित् भगवान् मेरे पापों को क्षमा कर दें।

रामदेई उससे गले मिल कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से बिदा हुई।

यज्ञदत्त ने वकील साहब से यह सब हाल कहा। वकील साहब बोले—ओफ़ ओह! किसका विश्वास करें। शहर के लोग इस आश्रम को आदर्श समझते हैं। यज्ञदत्त! अब तुम मेरा कहना मानो—अपनी बहिन का विवाह कर दो। इन बातों को जान-बूझ कर भी यदि तुम ऐसा न करो तो बड़े ग़ज़ब की बात है।

"क्या कहूँ बाबू जी, अब मेरी भी यही इच्छा है। परन्तु नाते-रिश्तेदारों से डरता हूँ।"

"व्यर्थ डरते हो, नाते-रिश्तेदार इस समय कुछ काम आते हैं? उनमें से कोई ऐसा है जो तुम्हारी बहिन का पालन-पोषण करे?"

"बाबू जी की बातें, कोई बात तक तो पूछता नहीं—पालन-पोषण करना तो बहुत दूर की बात है।"

"तो बस तुम भी उनकी परवा मत करो—अब वह समय नहीं रहा कि यदि वह तुम्हारा बहिष्कार कर देंगे तो तुम्हें कहीं ठिकाना न रहेगा।"

"अच्छी बात है, सोचूँगा।"

छः महीने के पश्चात् वकील साहब के उद्योग से रामदेई का विवाह कर दिया गया। रामदेई ने सबसे पहला कार्य यह किया कि अपने पति से कह कर शिवदुलारी को आश्रम से निकाल लिया। अब वह शिवदुलारी को अपने पास रख कर उसका भरण-पोषण करती है। शिवदुलारी उसका गृहस्थी का सब काम करती है।

रामदेई बहुधा कह उठती है—शिवदुलारी, तेरे कारण मेरा जीवन सुधर गया।

शिवदुलारी उत्तर देती है—बहिन, उसी कारण तो भगवान् ने मेरा भी उद्धार कर दिया—नहीं तो उसी नरक में पड़ी रहती।

देवरानी-जेठानी

देवरानी-जेठानी

रात के आठ बज चुके हैं। एक साफ़-सुथरे कमरे के एक कोने में एक २५-२६ वर्ष का युवक बैठा हुआ भोजन कर रहा है। उसके पास एक २०-२२ वर्ष की स्त्री, जो साधारणतया सुन्दर है, हाथ में पङ्खा लिए बैठी है और युवक से बातें कर रही है। वह कह रही है—"जैसा जेठानी जी के लिए जेठ जी ने बनवाया है, वैसा ही मुझे भी बनवा दो।"

युवक पानी का घूँट पीकर बोला—क्या यह आवश्यक है कि वैसा ही हो?

"हाँ, वैसा ही हो।"

"जो उससे अच्छा हो तो?"

"तो फिर क्या कहना है। और भी अच्छी बात है।"

युवक हँस कर बोला—तुम स्त्रियों का स्वभाव भी बड़ा विचित्र होता है। जो एक करे उसी की नक़ल सब करती हैं।

"नक़ल काहे को करती हैं।"

"यह नक़ल नहीं तो और क्या है?"

"नक़ल काहे को, चलन की बात है। जो चीज़ अच्छी

होती है, उसी का चलन चल जाता है, इस वास्ते सबको वैसी ही बनवानी पड़ती है।"

"ख़ूब, मैं तो समझता था कि फ़ैशन का रोग केवल यूरोप-अमेरिका ही में है, परन्तु अब देखता हूँ कि हम लोगों में भी यही रोग है।"

"यह रोग है?"

"रोग नहीं तो क्या है?"

"तुम्हें तो सभी रोग दिखाई पड़ता है। खाना-पहनना भी रोग होने लगा तो बस फिर हो चुका।"

"साधारणतया खाना-पहनना रोग नहीं है। परन्तु किसी विशेष प्रकार के खाने-पहनने की लत हो जाना तो रोग ही है।"

"तो फिर तुम क्यों नित नई तरह की टाइयाँ, कॉलर और कोट बनवाते हो? अभी उस दिन मैंने वह कोट तुम्हारे पहनने के लिए निकाला था—तुमने उसे नहीं पहना, बोले—आजकल इसका फ़ैशन नहीं रहा!"

"हमारी बात दूसरी है। हम कुछ शौक़ से ऐसा नहीं करते। हम लोगों को अङ्गरेज़ों से मिलना-जुलना पड़ता है, इसलिए ऐसा करते हैं।"

"अपने हिन्दुस्तानी कपड़े पहनो तो क्या अङ्गरेज़ मना करते हैं?"

"मना तो कोई नहीं कर सकता; परन्तु फ़ैशन के

अनुसार कपड़े पहनने से वे अधिक आदर-सम्मान करते हैं।"

"तो बस ऐसा ही हम औरतों का भी हाल है। जिस चीज़ का चलन है, वैसी चीज़ पहनने-ओढ़ने से स्त्रियाँ कुछ नहीं कहतीं, नहीं तो मुँह बिचकाती हैं। हँसती हैं, तरह-तरह के बोल बोलती हैं।"

पत्नी की इस बात से युवक निरुत्तर होकर बोला—अच्छी बात है, पहनो-ओढ़ो—अब मना कौन करता है?

"तो नेकलेस कब तक बन जायगा?"

"यह तो सुनार ही बता सकता है; मैं क्या बताऊँ।"

"तुम जल्दी करोगे तो जल्दी बन जायगा, ढील डालोगे तो देर लगेगी।"

"भाभी का नेकलेस कितने का है?"

"दस तोले का है और पचास रुपए बनवाई।"

"बनवाई बहुत है!"

"चीज़ भी तो है!"

युवक ने इसका उत्तर कुछ न दिया। भोजन करके उठा और हाथ-मुँह धोकर तौलिए से हाथ पोंछता हुआ कुर्स पर आ बैठा। पत्नी ने पान लगा कर दिए। पान लेकर युवक बोला—तो कल नेकलेस बनने दे दूँगा, आठ-दस दिनों में बन जायगा।

"रामू की वर्ष-गाँठ के आज से पन्द्रह दिन हैं, तब तक बन जाय !"

"हाँ, तब तो बन जाना चाहिए।"

इतना कह कर युवक ने मेज़ पर रक्खी हुई एक पुस्तक उठा ली और पढ़ने लगा। पत्नी दूसरे कमरे में चली गई।

इस युवक का नाम ज्योतिशङ्कर है। ये तीन भाई हैं। ज्योतिशङ्कर के परिवार में इनकी पत्नी तथा एक पञ्च-वर्षीय पुत्र है। ज्योतिशङ्कर भाइयों में सबसे छोटे हैं। मँझले भाई के परिवार में भी तीन ही प्राणी हैं— वह, उनकी पत्नी तथा एक सप्तवर्षीया कन्या। सबसे बड़े भाई के परिवार में पति-पत्नी के अतिरिक्त एक अष्टवर्षीय पुत्र तथा एक पञ्चवर्षीया कन्या है। जिस मकान में यह रहते हैं, वह इनकी पैतृक सम्पत्ति है। अतएव इसमें तीनों भाइयों का समान अधिकार है। मकान तीन बरा-बर भागों में बँटा हुआ है। एक में ज्योतिशङ्कर रहते हैं, दूसरे में उनके मँझले भाई रविशङ्कर। तीसरा भाग उनके बड़े भाई मणिशङ्कर के अधिकार में है, परन्तु वे जीविका-वश सपरिवार परदेश में रहते हैं, अतएव वह बन्द पड़ा रहता है।

ज्योतिशङ्कर अपने मँझले भाई के साझे में कपड़े की अङ्गरेज़ी ढङ्ग की दूकान किए हुए हैं। ज्योतिशङ्कर तथा

रविशङ्कर में परस्पर यथेष्ट स्नेह है। परन्तु जितना ही दोनों में स्नेह है, उतना ही दोनों की पत्नियों में वैमनस्य ! इसके फल-स्वरूप यदा-कदा दोनों भाइयों में भी दो-दो चोंचें हो जाया करती हैं। यद्यपि दोनों भाई इस बात का प्रयत्न करते रहते हैं कि देवरानी-जेठानी में परस्पर प्रीति-भाव रहे, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती।

पन्द्रह दिन पश्चात् ज्योतिशङ्कर के पुत्र रामशङ्कर की वर्ष-गाँठ हुई। दोपहर में इष्ट-मित्रों के घरों की स्त्रियाँ जमा हुईं, नाच-गाने का समाँ बँधा। देवरानी अर्थात् ज्योतिशङ्कर की पत्नी का नया नेकलेस बन कर आ गया था। अतएव वह उसे पहने हुए थी, और इस अभिप्राय से कि नेकलेस पर सबकी दृष्टि पड़े, उसे बार-बार सँभा-लती थी ! कई बार यह चेष्टा करने पर भी जब किसी ने नेकलेस के सम्बन्ध में कोई प्रश्न न किया तो एक बार वह नाक-भौं चढ़ाकर अपने ही आप बोली—"दाढ़ीजार सुनार ने न जाने कैसा काँटा बनाया है—गर्दन घायल किए डाल रहा है।"

उसके इतना कहते ही उसके पास बैठी हुई स्त्रियों ने नेकलेस को ध्यानपूर्वक देखा। एक उनमें से बोली—"अरे यह कब बनवाया ?" देवरानी प्रसन्नमुख होकर बोली—आज ही बन कर आया है।

अब क्या था, अब तो प्रत्येक स्त्री ने पारी-पारी से

नेकलेस का निरीक्षण किया। जो देखती थी वह उसकी प्रशंसा करती थी। थोड़ी दूर पर जेठानी भी बैठी थी। यद्यपि उसने सबसे पहले नेकलेस को ताड़ लिया था; परन्तु वह इस प्रकार बैठी हुई थी मानों उसने देखा ही नहीं। अब भी, जब अन्य स्त्रियाँ उसे देख रही थीं, जेठानी दूसरी ओर मुँह किए एक स्त्री से बात कर रही थी।

नेकलेस को सबने पसन्द किया। एक स्त्री ने जेठानी को पुकारा—कलावती की माँ, यह नेकलेस देखा?

जेठानी अनजान बन कर बोली—कैसा नेकलेस?

"यह जो तेरी देवरानी ने बनवाया है। ज़रा देख तो, तेरे से बढ़िया है।"

जेठानी ने एक बार वहीं से बैठे हुए नेकलेस पर दृष्टि डाली और लापरवाई से बोली—डिज़ाइन का फ़रक़ है—और क्या बढ़िया है?

"डिज़ाइन ही तो सारी चीज़ है।"—एक स्त्री ने कहा।

"अपनी-अपनी पसन्द है।"—कह कर जेठानी पुनः बातों में लग गई।

देवरानी का अभिप्राय पूरा हो गया। वह हँस-हँस कर स्त्रियों से बातें करने लगी।

२

उसी दिन रात में जेठानी अपने पति से बोली—जोती

(ज्योतिशङ्कर) ने अपनी बहू के लिए कितना सुन्दर नेक-लेस बनवाया है—एक तुम बनवा के लाए ?

"तो तुम्हारा क्या कुछ बुरा है। जब बन के आया था, तब तो तुमने पसन्द किया था।"

"बुरा ना हो ; पर वैसा नहीं है।"

"तो इसके लिए क्या किया जाय—अनेक प्रकार की डिज़ाइनें चल गई हैं; मेरी निगाह में वह न पड़ी होगी।"

"तुम्हारी निगाह में काहे को पड़ने लगी—कुछ परवा हो तो पड़े। जैसा सुनार ने बना दिया, लेकर चले आए। आदमी दस जगह देख-सुन कर बनवाता है।"

"ख़ैर, अब तो बन गया; मजबूरी है।"

"मजबूरी-वजबूरी नहीं, मेरे लिए भी वैसा ही बन-वाओ—चाहे इसी को तुड़वा कर बनवाओ, चाहे दूसरा बनवाओ। आज औरतों के सामने मुझे ऐसा लज्जित होना पड़ा कि क्या कहूँ ?"

"लज्जित होने की कौन-सी बात थी ?"

"बात क्यों नहीं थी—सब उसी के नेकलेस को देखती रहीं।"

"नई चीज़ थी, इसलिए देखती रहीं। इसमें तुम्हें लज्जित होने की क्या बात थी ?"

"बात यह थी कि सब सोचती होंगी कि कलावती के पिता को चीज़ें बनवाने का सहूर भी नहीं है।"

पत्नी की इस बात पर रविशङ्कर बहुत कुढ़े। बोले—। स्त्रियाँ चाहे कहती हों या न कहती हों; पर तुम अवश्य कहोगी। चीज़ ख़राब हो तो यह बात कही जा सकती है—जब चीज़ ख़राब नहीं, तब कोई कैसे कह सकता है?

"कहने वाले कहते ही हैं—किसी की जीभ नहीं पकड़ी जा सकती।"

रविशङ्कर भृकुटी चढ़ाकर बोले—तो कोई कारण भी तो हो, या ख़ामख़ाह कहेंगे?

"जोती ने जो बनवाया है वह तुम्हारे से अच्छा है—यही कारण है।"

"इतने ही से मैं बेशऊर हो गया?"

"अच्छा हुए या न हुए—इससे अब क्या मतलब, मुझे वैसा ही बनवा दो।"

"बस तुमने तो कह दिया बनवा दो, बनवाने में कुछ लगता थोड़ा ही है।"

"लगेगा तो कहीं चला जायगा?"

"बनवाई तो सब बट्टेखाते जाती है और सोना भी टाँके लगने से रुपए की जगह बारह आने का रह जाता है—यह सब नुक़सान ही होता है।"

पत्नी चिबुक पर उँगली रख कर बोली—हे भगवान्, जो सब तुम्हारी तरह नुक़सान देखने लगें तो फिर काहे को कोई चीज़ बनवावे। कपड़े काहे को सिलवाते हो?

उसमें भी तो सिलाई बेकार जाती है। कपड़ा लाकर वैसे लपेट लिया करो।

"कपड़े की और इसकी क्या समता? एक सूट की सिलाई अधिक से अधिक दस रुपए। पर एक नेकलेस की बनवाई में तो पचास-साठ के माथे जाती है।"

"तो गहना धरा भी तो रहता है! अटके-सिटके काम देता है—कपड़ा तो जहाँ फटा, बस गया।"

"तुम्हें कौन समझावे"—कह कर रविशङ्कर चुप हो गए।

दूसरे दिन दूकान पर उन्होंने ज्योतिशङ्कर से पूछा—वह तुमने कैसा नेकलेस बनवाया है?

"है तो भाभी के जैसा ही, पर डिज़ाइन में कुछ अन्तर है।"

"तो यह अन्तर काहे को रक्खा—वैसा ही बनवाते।"

"सुनार ने बना दिया, मैं तो कुछ जानता नहीं।"

"बस तुम तो यह कह कर अलग हो गए। यहाँ नाक में दम हो रहा है। कल से तुम्हारी भाभी मेरे पीछे पड़ी है कि मुझे भी वैसा ही बनवा दो।"

"उनका क्या कुछ बुरा थोड़ा ही है।"

"तो यह उसे समझावे कौन?"

ज्योतिशङ्कर मन में बोले—आप समझावें, और किसी

को क्या ग़रज़ है। यदि आप नहीं समझा सकते तो यह आपका दोष है।

रविशङ्कर बोले—पहले भी मैं कई बार समझा चुका हूँ और आज फिर कहता हूँ कि जो ज़ेवर या कपड़ा बनवाओ, वह दोनों का एक तरह का हो। यदि बड़ी का पहले बने तो तुम ठीक वैसा ही बनवाओ और छोटी का पहले बने तो मैं वैसा ही बनवाऊँ।

"अच्छी बात है, ऐसा ही होगा। सुनार ने डिज़ाइन बदल दिया, मैंने तो वैसा ही बनाने को कहा था।"

"सुनार ससुरे का क्या गया और तुम्हारा क्या गया। परन्तु मुझ पर तो ढाई-तीन सौ की चपत पड़ गई। अब जब दूसरा बनेगा तब प्राण बचेंगे।"

उपरोक्त घटना के आठ-दस दिन पश्चात् रविशङ्कर के पिता के एक मित्र आए। दोनों भाइयों के दूकान पर चले जाने के कुछ ही देर पश्चात् वह आए। नौकर ने बाहरी कमरे में उन्हें ठहरा दिया। वह बेचारे स्नान इत्यादि करके इस प्रतीक्षा में बैठे कि कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध होता होगा। परन्तु यहाँ दोनों देवरानी-जेठानी सोंठ बनी बैठी थीं। नौकर ने जाकर जेठानी से कहा—"वह बाबू आए हैं, उनके लिए कुछ खाने-वाने को...।"

नौकर की बात पूरी होने के पूर्व ही जेठानी बोल उठी—"छोटी से कह जाकर वही करेगी, मेरा जो अच्छा

नहीं है।" नौकर ने छोटी से जाकर कहा। वह बोली—"मैं क्या जानूँ, कौन हैं कौन नहीं। जेठानी जी से कह।"

नौकर बोला—पहले तो उन्हीं से कहा था—वह बोलीं छोटी से कहो।

"हाँ, छोटी ही तो फ़ालतू है। बड़ी वह हैं या मैं? यह काम उन्हीं का है। मैं इस झगड़े में नहीं पड़ती।"

नौकर चुप होकर बैठ रहा। उसने सोचा, मुझे क्या पड़ी है—"मैंने दोनों से कह दिया, अब वे जानें उनका काम।" मेहमान साहब बड़ी देर तक प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु जब भोजन क्या, भोजन की गन्ध तक न आई और पेट बग़ावत करने पर कटिबद्ध हो गया तो उन्होंने नौकर द्वारा बाज़ार से खाना मँगा कर खाया। छोटी बहू ने दो बीड़े पान भेज कर मेहमान साहब का खोपड़ी पर एहसान का टोकरा लाद दिया और निश्चिन्त हो गई। बड़ी बहू एहसान का लेन-देन ज़रा कम अच्छा समझती थी, इसलिए वह पहले ही से निश्चिन्त बैठी थी।

सन्ध्या-समय जब दोनों भाई घर आए तो मेहमान साहब को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। पिता के मित्र थे, अतएव दोनों को उनके आने की प्रसन्नता हुई। बड़े भाई ने पूछा—कब आए थे?

"सवेरे दस बजे की गाड़ी से आया था।"

"अच्छा! भोजन ठीक तरह से मिल गया था?"

"हाँ, मँगा लिया था ?"

"मँगा कहाँ से लिया था ?"—रविशङ्कर ने पूछा।

"बाज़ार से मँगा लिया था।"

"बाज़ार से! क्यों, बाज़ार से क्यों मँगाया ? क्या घर में नहीं बन सकता था ? यह आपने बड़ा बेजा काम किया।

मेहमान साहब मन में बोले—यह अच्छे मिले। प्रतीक्षा करते-करते भूखों मर गया, किसी ने बात तक न पूछी, उलटे मुझी को डाँट रहे हैं—ख़ूब! परन्तु आदमी भलेमानस थे, बोले—मैंने सोचा कि क्यों दिक़्क़त पहुँचाऊँ।

"वाह, इसमें दिक़्क़त की कौन-सी बात थी ?"—छोटे साहब अर्थात् ज्योतिशङ्कर बोले।

रविशङ्कर ने पुकारा—लछमन!

लछमन नौकर का नाम था—वह आया।

रविशङ्कर बोले—क्यों जी, तुम बाज़ार से खाना क्यों लाए, घर में क्यों न कहा ?

नौकर मौन खड़ा रहा।

रविशङ्कर कड़क कर बोले—जवाब क्यों नहीं देता, बदमाश कहीं का।

अब नौकर को भी तेहा आ गया। उसने कहा—कहा तो था। बड़ी बहू से कहा, वह बोलीं कि छोटी से

कहो । छोटी से कहा तो वह बोलीं—बड़ी जानें, मैं इस झगड़े में नहीं पड़ती । तब बताइए मैं क्या करता—आख़िर नौकर ही ठहरा ।

इतना सुनते ही दोनों भाई सन्नाटे में आ गए—काटो तो ख़ून नहीं । मेहमान साहब मुँह फेर कर मुस्कराए । उन्हें जो कुछ देर तक भूख की यन्त्रणा सहनी पड़ी थी, उसका उचित प्रतिशोध उन्हें मिल गया । वह लछमन पर बड़े प्रसन्न हुए ।

कुछ क्षणों पश्चात् रविशङ्कर हवास ठीक करके बोले—इसमें कोई कारण हो गया होगा, अन्यथा ऐसा तो नहीं हो सकता था ।

"कदाचित् तबीयत-वबीयत ख़राब हो गई हो !"—ज्योतिशङ्कर बोले ।

मेहमान साहब मन में बोले—क्या दोनों की तबीयत साथ-साथ ख़राब हुआ करती है ?

"कुछ बेवक़ भी तो हो गया था । हम लोग तो नौ बजे ही खा-पी लेते हैं । ख़ैर ! जो हुआ सो हुआ, परन्तु अकारण ऐसा नहीं हो सकता, कुछ कारण अवश्य होगा । मैं इसकी जाँच करूँगा ।"

मेहमान साहब हँसी को रोक कर बोले—जाने भी दो, जाँच क्या करोगे ? ऐसा हो ही जाता है ।

दोनों भाई भीतर पहुँचे । रविशङ्कर ने जाते ही पत्नी

से प्रश्न किया—वह मेहमान जो आए हैं, उन्हें भोजन क्यों नहीं दिया गया ?

"मेरा जी ज़रा ख़राब था, इसलिए मैंने छोटी से कहला दिया था।"

"परन्तु उसने तो प्रबन्ध नहीं किया।"

"तो इसे मैं क्या करूँ ?"

"बस तुम तो यह कह कर अलग हो गईं, यहाँ आबरू मिट्टी हो गई। उस हरामज़ादे लछमन ने भी तोते की तरह उन्हीं के सामने सब पढ़ दिया। उसे इतनी भी तमीज़ नहीं कि इनके सामने यह बात नहीं कहनी चाहिए। तुम देवरानी-जेठानी की लाग-डाँट में हमारी मिट्टी पलीद होती है। तुम्हारा जी ख़राब था तो छोटी का कर्तव्य था कि उनकी ख़ातिर करती।"

"यह बात समझता ही कौन है ! जो इतना ही समझने लगे तो सारा झगड़ा ही मिट जाय।"

ज्योतिशङ्कर ने भी जाकर छोटी से पूछा—वह मेहमान जो आए हैं, उन्हें खाना तक नहीं मिला—बड़े अफ़सोस की बात है।

छोटी बोली—लछमन ने बड़ी से कहा था, पर उन्होंने कुछ सुना ही नहीं।

"तुमसे भी तो कहा था ?"

"बड़ी ने कहलाया था कि छोटी से कहो जाकर। तो पकेसी की लौंडी-बाँदी तो हूँ नहीं, जो हुकुम बजाऊँ।"

"तो क्या हर्ज था, तुम्हीं प्रबन्ध कर देतीं।"

"हूँ, कर देती। फिर सदा के लिए यही चलन हो जाता। जब कोई मेहमान आता तो वह मुझी पर डाल देतीं। सो मैं ऐसी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हूँ—वह डाल-डाल तो मैं पात-पात।"

ज्योतिशङ्कर कुढ़ कर बोले—वह डाल-डाल तुम पात-पात, हम रहे अधर में, सो हमारी ख़राबी है। आज जड़ से कट गई।

इसी प्रकार दोनों भाई रो-झींक कर बैठ रहे; परन्तु देवरानी-जेठानी के कानों पर जूँ तक न रेंगी। उन्होंने यही समझा कि जो कुछ उन्होंने किया वही उचित था।

३

देवरानी-जेठानी के मारे दोनों भाइयों की नाक में दम था, कोई दिन ऐसा न जाता था जिस दिन दोनों में किसी न किसी बात पर कुछ झगड़ा अथवा कहा-सुनी न होती हो। यद्यपि दोनों की रसोई पृथक्-पृथक् बनती थी, तथापि इसमें भी कभी-कभी कोई न कोई बात ऐसी निकल आती थी कि कहा-सुनी हो ही जाती थी।

एक दिन कलावती बैठी खा रही थी। रामू भी खेलता

हुआ वहाँ जा पहुँचा और बोला—"हम भी खाएँगे" क्यों बड़ी बहू ने उसे भी थोड़ा सा दे दिया। रामू खाने लगा। हठात् साग के साथ उसके मुँह में हरी मिर्च का एक टुकड़ा चला गया। उसने एक चीख़ मारी और उठ कर भागा। उसकी माता ने जो उसकी चीत्कार सुनी तो दौड़ी और पूछा—क्या हुआ?

रामू बोला—"ताई ने मिर्चा खिला दिया।" बस उसका इतना कहना था कि छोटी बहू आग हो गई। बोली—वाह भई वाह, लड़के के आगे मिर्चें ही मिर्चें भर कर रख दीं। इतनी बड़ी हो गईं, सहूर न आया कि बच्चों को बिना मिर्चों की चीज़ दी जाती है। इनका बस चले तो जहर खिला दें—देखे जली जाती हैं। और तू वहाँ मरने क्यों जाता है? क्या तेरे घर में खाने को नहीं, जो वहाँ माँगने गया? भिखमङ्गा कहीं का!

जेठानी बोली—भिखमङ्गों के भिखमङ्गे ही होते हैं। हमारी कलावती भी कभी तुम्हारे यहाँ जाती है। हमारे यहाँ जैसा था वैसा दे दिया—तुम उसे जहर कहो, चाहे बिस कहो।

इसी बात को लेकर दोनों में कुछ देर कहा-सुनी होती रही।

दोनों ने अपने-अपने पति से इस बात की शिकायत की। बड़ी ने कहा—छोटी बहू मुझे किसी दिन किसी

इल्लत में फँसा देगी। लड़के के मुँह में मिर्च चली गई, उस पर कहती है कि किसी दिन जहर दे दूँगी—यह बात तो देखो। एक ही छत्तीसी है, इसके काटे का मन्त्र नहीं है।

रविशङ्कर बोले—बकने दो, तुम ऐसी बातों पर ध्यान न दिया करो।

"ध्यान कैसे न दूँ। तुम तो दूकान पर रहते हो। उनका लड़का ठहरा लाड़ला। किसी दिन कोई बात हो गई तो तुम भी मुझी को दोष दोगे।"

"बात कैसे हो जायगी—कोई मज़ाक़ है?"

"अभी उस दिन की बात है—कलावती और रामू दोनों खेल रहे थे। रामू ने कलावती के ईंट फेंक मारी, भाग्य की बात वह कलावती के लगी नहीं। कलावती ने एक थप्पड़ मार दिया। इस पर छोटी ने सैकड़ों बातें कहीं। कोई कहाँ तक सहे—कलेजा पक गया।"

रविशङ्कर ने कहा—बच्चों की लड़ाई में तुम मत बोला करो।

"मैं न बोलूँ; पर वह तो महनामथ मचाने लगती है, तब मेरे से भी चुप नहीं रहा जाता। उनका लड़का बड़ा दुलारा है—हमारी लड़की फ़ालतू है।"

"इसमें ज्योतिशङ्कर का दोष है, यदि वह उसे दाबे रहे तो उसका ऐसा व्यवहार करने का साहस न हो; पर वह तो पूरा जोरू का गुलाम है—चूँ तक नहीं करता।"

इधर इन दोनों में यह वार्त्तालाप हो रहा था, उधर छोटी बहू पति से कह रही थी—जेठानी जी किसी दिन लड़के के प्राण ले लेंगी। कल उसे तमाम मिर्चें ही मिर्चें खिला दीं—लड़का ऐसा बिलबिलाया कि क्या कहूँ।

"तो तुमने उसे जाने क्यों दिया?"

"मैंने देखा कब था। वह नासमझ ठहरा, चला गया। ख़ैर चला गया था तो क्या हुआ। उन्हें ऐसा मुनासिब था?"

"तो उन्होंने जान-बूझ कर मिर्चें थोड़ा ही खिला दी होंगी।"

"जान-बूझ कर नहीं खिलाईं तो वह क्या अपने आप खा गया। खाने को दिया था तो देख लेतीं कि मिर्चें तो नहीं हैं। और एक यही बात थोड़ी है। लड़की से लड़के को पिटवाया करती हैं। उस दिन कलावती ने रामू को धुन के धर दिया। पहले तो चुड़ैल खेलने को बुलाती है फिर मारती है। तो वह क्या मारती है—जेठानी जी उसे सिखाती हैं।"

"तुम भी क्या बातें करती हो, वह ऐसा नहीं कर सकतीं।"

"हाँ, वह तो बड़ी धर्मात्मा हैं। ऐसा नहीं कर सकतीं। कर सकने को तो वह न जाने क्या-क्या कर सकती हैं, पर बस नहीं चलता।"

"बड़े भइया उन पर थोड़ा अङ्कुश रक्खा करें तो वह ठीक रहें; परन्तु वह कुछ बोलते नहीं, इसीसे वह और भी मनमानी करती हैं।"

"वह क्या बोलेंगे? वह तो जितना पानी जेठानी जी पिलाती हैं उतना ही पीते हैं। जोरुएँ सबके होती हैं, पर कोई जोरू की इतनी गुलामी नहीं करता जितनी जेठ जी करते हैं।"

"यही तो भइया में थोड़ा ऐब है।"

"यह थोड़ा ऐब है? यह बड़ा भारी ऐब है।"

"ख़ैर, तुम छोटी हो तुम्हें ग़म खाना चाहिए।"

"मैं ग़म न खाऊँ तो रोज़ महाभारत हो; परन्तु कोई कहाँ तक ग़म खावे। हर बात की एक सीमा होती है।"

ज्योतिशङ्कर ने पत्नी को समझा-बुझा कर शान्त किया है।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन मणिशङ्कर का पत्र आया कि वह आ रहे हैं—"उनकी बदली हो गई है। उनका मकान साफ़ करा दिया जावे।" मणिशङ्कर की प्रतीक्षा होने लगी। उनके स्वागत के उत्साह में देवरानी-जेठानी में अस्थायी सन्धि हो गई। निश्चित समय पर मणिशङ्कर अपने बाल-बच्चों सहित आ गए और उन्होंने मकान के एक भाग में डेरा जमाया।

४

मणिशङ्कर के आने के कुछ दिनों पश्चात् एक दिन रविशङ्कर तथा ज्योतिशङ्कर की पत्नी में पुनः वाक्-युद्ध हुआ। बड़ी बहू को (मणिशङ्कर की पत्नी को, रविशङ्कर की पत्नी अब मँझली बहू कहलाने लगीं) यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। बड़ी बहू एक तो स्वभाव की सज्जन थीं, दूसरे सुशिक्षित थीं, तीसरे वह सदा अकेली रही थीं, इस कारण किसी से लड़ने-झगड़ने का उनका अभ्यास नहीं था। अतएव उनको आश्चर्य होना स्वाभाविक बात थी। उन्होंने दोनों को समझा-बुझा कर शान्त किया।

रविशङ्कर से उन्होंने कहा—आज दोनों बहुएँ लड़ मरीं, मैं तो देख कर हैरान रह गई। इन्होंने तो भठियारियों को भी मात कर दिया। तुम इन्हें मना नहीं करते?

"मैं तो मँझली को बहुत दाबे रहता हूँ; परन्तु छोटी का स्वभाव ही लड़ाका है—आखिर मँझली भी आदमी ही है—पत्थर नहीं, उसे भी क्रोध आ जाता है।"

ज्योतिशङ्कर से भी उन्होंने यही बात कही। रविशङ्कर की तरह उन्होंने भी कहा—"क्या कहूँ भाभी, मैं तो छोटी को समझा-बुझा कर क़ाबू में किए रहता हूँ; परन्तु भइया ने मझली को इतना सिर चढ़ा रक्खा है कि वह किसी को कुछ समझती ही नहीं—आख़िर छोटी भी आदमी ही है—कहाँ तक सहन करे।" बड़ी बहू ने मणिशङ्कर से सारा

वृत्तान्त कहा। वह बोले—लड़ने-कटने दो, तुम्हें क्या करना है। वे जाने और उनका काम—तुम इस झगड़े में मत पड़ो।

"एक घर में रह कर मुझसे यह नहीं देखा जायगा।"

"तो तुम कर ही क्या सकती हो?"

"मुझसे जो होगा वह तो करूँगी ही।"

"क्या करोगी?"

"इनकी लड़ाई का अन्त करूँगी।"

"कर चुकीं, अपने को अलग रक्खो, यही ग़नीमत है। मुझे तो यह भय है कि कहीं तुम भी उन्हीं की जैसी न हो जाओ।"

"कौन, मैं?"

"हाँ, तुम।"

"अजी राम भजो!"

एक दिन जब पुनः छोटी तथा मँझली बहू में झगड़ा हुआ तो बड़ी बहू ने दोनों को बुला कर झगड़े के कारण की जाँच-पड़ताल की। जाँच करने से उन्हें पता लगा कि इसमें दोष मँझली बहू का है। उन्होंने मँझली से कहा—बहू, दोष तुम्हारा है। इसलिए तुम छोटी से क्षमा माँगो।

मँझली तुनक कर बोली—मैं क्यों क्षमा माँगूँ—मुझे क्या गरज है?"

"तुम्हें क्षमा माँगनी पड़ेगी।"

"मैं कदापि क्षमा नहीं माँगती। और तुम्हें पञ्च बनाया किसने है? मान न मान मैं तेरा मेहमान!"

"तो क्या मुझसे भी लड़ोगी?"

"मैं न किसी से लड़ूँ न भिड़ूँ, पर साथ ही किसी की दबैल भी नहीं हूँ—कोई एक कहेगा तो दस कहूँगी।"

"अच्छी बात है, ख़ूब कहो।"

दूसरे दिन बड़ी बहू ने अड़ोस-पड़ोस तथा नाते-रिश्ते की स्त्रियों को निमन्त्रण भेज कर बुलवाया। सबके जमा हो जाने पर उन्होंने कहना आरम्भ किया—"बहिनो, आज मैं तुम्हारे सम्मुख एक बहुत ही आवश्यक प्रश्न उपस्थित करती हूँ। वह प्रश्न यह है कि हम लोगों में कदाचित् ही कोई घर ऐसा हो जिसमें देवरानियों-जेठानियों तथा सास-बहुओं में वैमनस्य न रहता हो। इस वैमनस्य का परिणाम यह होता है कि घर में फूट हो जाती है और पारिवारिक सुख नष्ट हो जाता है। स्त्रियों के लड़ाई-झगड़ों के कारण भाई से भाई और बाप से बेटा अलग हो जाता है। यह कितने दुःख की बात है। इस कार्य के लिए हम स्त्रियों की जाति की जाति बदनाम है। स्त्री-जाति पर से इस कलङ्क को हटाना प्रत्येक स्त्री का कर्त्तव्य है। यदि आप सब सहमत हों तो मैं आपके सम्मुख एक प्रस्ताव रक्खूँ, जिसके अनुसार कार्य करने से हम लोगों

का यह रोग दूर हो सकता है। बोलिए, आप सब इसके लिए तैयार हैं?"

सब स्त्रियों ने एक स्वर से कहा—हाँ, तैयार हैं।

"अच्छा तो सुनिए—मेरा प्रस्ताव यह है कि हम सब मिल कर एक ऐसा सङ्घ, जिसे गुट्ट कह सकते हैं—बनावें जो कलहकारिणी स्त्रियों का सुधार करे। वह सुधार इस प्रकार हो सकता है कि अपने जातीय समुदाय, नाते-रिश्तेदार तथा इष्ट-मित्रों में जो कलहकारिणी स्त्री हो, उसका बायकाट किया जावे! कोई उसे किसी अवसर पर भी अपने यहाँ निमन्त्रित न करे और न उसका निमन्त्रण स्वीकार करे।"

"परन्तु इसका पता कैसे चलेगा कि अमुक स्त्री कलहकारिणी है?"—एक पढ़ी-लिखी स्त्री ने प्रश्न किया।

"इसका पता घर वालों से चलेगा। जब लोगों को हमारे सङ्घ और उसके उद्देशों का यथेष्ट ज्ञान हो जायगा तो वे स्वयम् सङ्घ को सूचना देंगे। परन्तु सङ्घ का यह कर्त्तव्य होगा कि पहले प्रकट या गुप्त रूप से, जैसा उचित समझा जावे, इस बात की जाँच कर ले कि जिस पर दोषारोपण किया जाता है, वह सत्य ही दोषी है या नहीं। केवल घर वालों के कथन पर निर्भर न रहे।"

सब स्त्रियों ने कहा—हाँ, यह ठीक है। ऐसा अवश्य होना चाहिए।

"तुम्हें क्षमा माँगनी पड़ेगी।"

"मैं कदापि क्षमा नहीं माँगती। और तुम्हें पञ्च बनाया किसने है? मान न मान मैं तेरा मेहमान!"

"तो क्या मुझसे भी लड़ोगी?"

"मैं न किसी से लड़ूँ न भिड़ूँ, पर साथ ही किसी की दबैल भी नहीं हूँ—कोई एक कहेगा तो दस कहूँगी।"

"अच्छी बात है, ख़ूब कहो।"

दूसरे दिन बड़ी बहू ने अड़ोस-पड़ोस तथा नाते-रिश्ते की स्त्रियों को निमन्त्रण भेज कर बुलवाया। सबके जमा हो जाने पर उन्होंने कहना आरम्भ किया—"बहिनो, आज मैं तुम्हारे सम्मुख एक बहुत ही आवश्यक प्रश्न उपस्थित करती हूँ। वह प्रश्न यह है कि हम लोगों में कदाचित् ही कोई घर ऐसा हो जिसमें देवरानियों-जेठानियों तथा सास-बहुओं में वैमनस्य न रहता हो। इस वैमनस्य का परिणाम यह होता है कि घर में फूट हो जाती है और पारिवारिक सुख नष्ट हो जाता है। स्त्रियों के लड़ाई-झगड़ों के कारण भाई से भाई और बाप से बेटा अलग हो जाता है। यह कितने दुःख की बात है। इस कार्य के लिए हम स्त्रियों की जाति की जाति बदनाम है। स्त्री-जाति पर से इस कलङ्क को हटाना प्रत्येक स्त्री का कर्त्तव्य है। यदि आप सब सहमत हों तो मैं आपके सम्मुख एक प्रस्ताव रक्खूँ, जिसके अनुसार कार्य करने से हम लोगों

का यह रोग दूर हो सकता है। बोलिए, आप सब इसके लिए तैयार हैं ?"

सब स्त्रियों ने एक स्वर से कहा—हाँ, तैयार हैं ।

"अच्छा तो सुनिए—मेरा प्रस्ताव यह है कि हम सब मिल कर एक ऐसा सङ्घ, जिसे गुट्ट कह सकते हैं—बनावें जो कलहकारिणी स्त्रियों का सुधार करे। वह सुधार इस प्रकार हो सकता है कि अपने जातीय समुदाय, नाते-रिश्तेदार तथा इष्ट-मित्रों में जो कलहकारिणी स्त्री हो, उसका बायकाट किया जावे ! कोई उसे किसी अवसर पर भी अपने यहाँ निमन्त्रित न करे और न उसका निमन्त्रण स्वीकार करे।"

"परन्तु इसका पता कैसे चलेगा कि अमुक स्त्री कलहकारिणी है ?"—एक पढ़ी-लिखी स्त्री ने प्रश्न किया।

"इसका पता घर वालों से चलेगा। जब लोगों को हमारे सङ्घ और इसके उद्देशों का यथेष्ट ज्ञान हो जायगा तो वे स्वयम् सङ्घ को सूचना देंगे। परन्तु सङ्घ का यह कर्त्तव्य होगा कि पहले प्रकट या गुप्त रूप से, जैसा उचित समझा जावे, इस बात की जाँच कर ले कि जिस पर दोषारोपण किया जाता है, वह सत्य ही दोषी है या नहीं। केवल घर वालों के कथन पर निर्भर न रहे।"

सब स्त्रियों ने कहा—हाँ, यह ठीक है। ऐसा अवश्य होना चाहिए।

"मुझे आप लोगों के सम्मुख यह प्रस्ताव रखने की आवश्यकता क्यों पड़ी—यह भी मैं बताए देती हूँ।"

मँझली बहू चुपचाप यह सब लीला देख रही थी। बड़ी बहू के उपरोक्त वाक्य कहते ही वह समझ गई कि बड़ी बहू मेरी बात कहेंगी। अतएव वह शीघ्रतापूर्वक उठी और बड़ी बहू के पास आकर बोली—ज़रा मेरी एक बात सुन लो।

बड़ी बहू समझ गई की मँझली बहू के होश ठिकाने आए हैं। वह बोली—ज़रा ठहर जाओ।

"नहीं, मेरी बात सुन लो, फिर कुछ कहना।"

बड़ी बहू तो यह चाहती ही थीं। वह अलग गईं। मझली बहू ने हाथ जोड़ कर कहा—बहू, मेरा नाम मत लेना, मैं तुम्हारे आगे हाथ जोड़ती हूँ। अब जैसा तुम कहोगी, वैसा ही करूँगी।

"छोटी बहू से क्षमा माँगने को तैयार हो?"

"तुम जिससे कहो उससे क्षमा माँग लूँगी; पर मुझे बदनाम न करो।"

"अच्छी बात है"—यह कह कर बड़ी बहू अपने स्थान पर आकर बोली—"हाँ, तो मैं यह कह रही थी कि मुझे यह प्रस्ताव रखने की आवश्यकता क्यों पड़ी। मुझे इस लिए आवश्यकता पड़ी कि मैं ऐसे अनेक घरों की दशा जानती हूँ जिनमें कलहकारिणी स्त्रियाँ विद्यमान हैं और

उनके कारण उनका घर नरक-तुल्य हो रहा है। आप में से भी अनेक ऐसी स्त्रियों को जानती होंगी।"

इस पर अनेक स्त्रियों ने कहा—हाँ, हम जानती हैं।

"तो पहले उन्हीं का बॉयकाट आरम्भ किया जावे।"

"परन्तु सङ्घ का सञ्चालन किस प्रकार होगा?"—एक स्त्री ने प्रश्न किया।

"इसके लिए चार-पाँच पढ़ी-लिखी स्त्रियों की कमेटी बना ली जावे। उनमें से एक या दो सङ्घ की मन्त्रिणी बना दी जावें। मन्त्रिणियों के पास जब किसी स्त्री की शिकायत पहुँचे तो वे कमेटी बुलाकर उसके सम्मुख उस शिकायत को पेश करें। कमेटी उसकी जाँच करे और भाई-बिरादरी की सब स्त्रियों को जमा करके उस स्त्री के बॉयकाट का प्रस्ताव पेश करे। यदि कमेटी अपने प्रमाणों से सबको सन्तुष्ट कर दे तो बॉयकाट कर दिया जावे।" सब स्त्रियों ने कहा—ठीक है, हमें स्वीकार है।

बड़ी बहू के उद्योग से छोटी बहू तथा मँझली बहू का लड़ाई-झगड़ा सदैव के लिए समाप्त हो गया। अब दोनों में परस्पर स्नेहपूर्ण व्यवहार होता है। और बड़ी बहू ने जो सङ्घ बनाया है, उसके कारण अनेक घरों की स्त्रियों का सुधार होता जा रहा है।

॥ समाप्त ॥